जैनागम सारांश

भाग ४

तत्त्व ज्ञान
खण्ड–2
प्रज्ञापना, भगवती

वरिष्ठ स्वाध्यायी तत्त्व चिंतक
"जिन शासन रत्न"
विमल कुमार नवलखा

जैनागम सारांश

32 जैन आगमों का हिन्दी में (चित्र एवं चार्ट सहित)

(भाग-4) तत्त्वज्ञान विभाग खण्ड-2, प्रज्ञापना एवं भगवती सूत्र

प्रेरणा पुंज

गणाधिपति महास्थविर विद्धद्वर्य ***श्री शान्तिमुनिजी म.सा.***

शासन गौरव, प्रज्ञानिधि, ***आचार्यप्रवर श्री विजयराजजी म.सा.***

की 50वीं दीक्षा जयंति (स्वर्ण जयंति) वर्ष के पावन शुभअवसर पर

मार्गदर्शक

आगम ज्ञाता विद्धद्वर्या बहिन साध्वी युगल

महासती ***श्री शीलप्रभाजी म.सा.*** **की 31वें दीक्षा वर्ष उपलब्धि एवं**

महासती श्री ***सत्यप्रभाजी म.सा.*** **की 25वीं दीक्षा जयंति (रजत जयंति) वर्ष के शुभअवसर पर**

लेखक एवं संपादक

विमल कुमार नवलखा (जगपुरावाला)

29-30-31, चिराग रेसिडेन्सी, कीम (पूर्व)

जिला-सूरत (गुज.)

मो. : 9426883605 e-mail : vimalnavlakha54@gmail.com

प्रकाशक

नवकार इन्टरनेशनल (नवलखा ग्रुप)

एक्सपोर्ट हाउस, अहमदाबाद (गुज.)

पुस्तक	-	जैन आगम सारांश (भाग-4) तत्त्वज्ञान विभाग खण्ड-2
संप्रेरक	-	गणाधिपति महास्थविर विद्वद्वर्य **श्री शान्तिमुनिजी म.सा.** शासन गौरव, प्रज्ञानिधि, **आचार्यप्रवर श्री विजयराजजी म.सा.**
प्रेरणा एवं मार्गदर्शक	-	बहिन साध्वी युगल **श्री शीलप्रभाजी म.सा. एवं श्री सत्यप्रभाजी म.सा.**
लेखक	-	विमल कुमार नवलखा
प्रकाशक	-	नवकार इन्टरनेशनल (नवलखा ग्रुप)
पुस्तक प्राप्ति	-	विमल कुमार नवलखा 29-30-31, चिराग रेसीडेंसी, कीम (पूर्व), सूरत (गुज.)
मुद्रक	-	स्वदेशी ऑफसेट, उदयपुर (राज.)-313001 E-mail : swadeshioffset@gmail.com Mo. : 09784845675
मूल्य	-	ज्ञानार्जन

शुभ–आशंषा

– आचार्य श्री विजय गुरूदेव

वचनों का सार प्रवचन है, प्रवचनों का सार आगम है, आगमों का सार क्या है ? इस सवाल के जवाब में गुरू फरमाते हैं–अनुभव सम्मत आचरण ही आगमों का सार है, आगम दूध की तरह होते हैं, दूध के हर अंश में मलाई है मगर वह दूध के अंश जितनी ही है। जब सम्पूर्ण दूध को मथते है तो दूध के सारे अंशों से मलाई का हिस्सा निकलता है मगर जितना दूध है उतनी मलाई नहीं होती, उस मलाई में दूध का सारा भाग आ जाता है वैसे आगमों का सार आचरण है। उस आचरण में आगम का सम्पूर्ण सार आ जाता है, बस अपना आचरण आगम सम्मत हो और अनुभव सम्मत हो, उस आचरण को आगम सम्मत बनाने के लिए विद्वान्, श्रुत आराधक भाई विमल जी नवलखा वर्षों से प्रयत्नशील है। समय–समय पर आप अपनी प्रतिभा से आगमों के सारांश को प्रस्तुत करते रहे हैं। आप हमारे संघ की साध्वीरत्ना महासती श्री शीलप्रभा जी म.सा., महासती श्री सत्यप्रभा जी म.सा. के सांसारिक अग्रज भ्राता है। महासतीद्वय भी प्रतिभाशाली है और प्रवचनों व लेखन के माध्यम से साहित्यश्री की अभिवृद्धि में सतत पुरूषार्थरत रहती है।

श्रीमान् नवलखा सा. अपनी योग्यता व प्रतिभा से शासन सेवा में समर्पित रहे यही अंतरंग आशा व अभिलाषा है।

अनुमोदना

अनन्तकाल से जीव जड़ के संयोग को अपनत्व समझकर मोहपाश में बंधकर, चार गति चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कर रहा है। पुण्य से बंधन में वह देव एवं मनुष्य गति में तथा पापाचरण के कारण तिर्यंच एवं नरकायु को भोगता है। अज्ञान, मोह, कषाय, मिथ्यात्व के कारण यह परिभ्रमण अनवरत चला आ रहा है।

आत्म तत्त्व के बारे में चिंतन हुआ ही नहीं क्योंकि इतने पुण्यायु बंधी पुण्य का संग्रह भी शायद हुआ नहीं कि मनो भावनाएं उस ओर प्रगति कर सके। मनुष्य भव अति दुर्लभ है और ''चतुरंगाणि परमंगाणि'' के न्याय स्वरूप आत्म तत्त्व की ओर हो गया, वह मानो भव सागर तिरने की कगार पर आ गया।

आगम बत्तीसी के 32 आगमों में सम्यग ज्ञान, दर्शन चरित्र एवं तप का विशद विश्लेषण किया गया है, निगोद से मोक्ष तक की जीवन यात्रा का स्वरुप तात्त्विक रुप से समझाया गया है, चतुर्विध संघ के आचार-विचार, व्यवहार को दिग्दर्शित किया गया है, इनको आचार शास्त्र विभाग, उपदेश एवं धर्म कथा शास्त्र विभाग एवं तत्त्वज्ञान शास्त्र विभाग में संयोजन करके गंभीर विषय को सरलता से संक्षिप्त सारांश रुप देकर उत्कृष्ट कार्य किया है।

हमारे सांसारिक अग्रज भ्राता श्री विमल कुमारजी नवलखा वरिष्ठ स्वाध्यायी हैं और आगम आदि पठन-पाठन में गाढ़ रूचि रखते हैं, पूर्व में आगम बत्तीसी सारांश (हिन्दी संस्करण), पर्युषण में प्रवचनोपयोगी 'अन्तर्मन के मोती' थोकड़ों के लिए जैन तत्त्व दर्शन, जैन आगमों में मध्यलोक, संलेखना संथारा जैनागमों में लोकस्वरूप आदि का विशिष्ट संकलन कर समाज को लाभान्वित कर स्वयं की आत्मा को भावित करते आ रहे हैं, यह हमारे लिए भी गौरवपूर्ण है। प्रस्तुत ग्रंथ ''जैनागम सारांश'' चार भागों में प्रकाशित कराया है, बहुत मनोहर है, चित्र एवं चार्ट आदि से वस्तु तत्त्व को अच्छी तरह से समझाया गया है, हमने भी इनका अवलोकन किया कार्य स्तुत्य है, हम अनुमोदना प्रेषित कर भावी जीवन की आध्यात्मिक मंगल कामना करते हैं।

बहिन साध्वी द्वय

दिनांक : 1 जून, 2024 **शीलप्रभा एवं सत्यप्रभा**

आचार्य शिवमुनि

मंगल संदेश

समस्त जिनवाणी का सार एक शब्द में कहे तो 'मैं जीवात्मा हूँ।' आत्मा को केन्द्रिभूत रखकर समस्त तीर्थकर जिनवाणी प्रदान करते है। जीव मात्र के कल्याण के लिए तीर्थकर देशना प्रदान करते है।

जीव का मिथ्या दर्शन है की वह अपने को छोड़कर अजीव तत्व को, पर तत्व को, देह को अपना मानकर, देह के लिए विभाव में जाता है और अपना स्वभाव छोड़कर कर्त्ता-भोक्ता बनता है, क्रिया-प्रतिक्रिया करता है, कषाय की उत्पत्ति करता है और चार गति चौरासी लाख जीवायोनि में यात्रा कर रहा है।

जीव में अष्ठ गुणों की सम्पदा होते हुए भी प्रकट नहीं रही, उसका मूल कारण है मिथ्या दर्शन। जो सब पापों का मूल है, आस्रव का मूल कारण है। सभी तीर्थकरों ने सम्यक्त्व का, सत्य का बोध करवाया, जीव को उसके स्वरूप का बोध करवाया और उसमें स्थित होने की विधि प्रदान की।

अस्तित्व का बोध, उस पर श्रद्धा, भेद-विज्ञान व आत्म स्थिरता ये मोक्ष मार्ग की सीढ़िया है। आत्मार्थी साधकों को इस विधि का प्रयोग करते हुए आत्म ध्यान के प्रयोग सीखकर भेद-विज्ञान प्राप्त कर क्षायिक सम्यक्त्व का पुरूषार्थ करते हुए केवल ज्ञान की ओर बढ़ना चाहिए। मिथ्यात्व व मोह का त्याग, वैराग्य के द्वारा वीतरागता की ओर बढ़ते जाए।

जिनवाणी का पारायण करते हुए 32 आगमों के नवनीत को वरिष्ठ स्वाध्यायी जिनशासन रत्न श्री विमलकुमार जी नवलखा द्वारा जैनागम सारांश चार भागों में प्रकाशित होने जा रहा है। आपका उत्तम पुरूषार्थ अनुमोदनीय है, प्रशंसनीय है। जिनवाणी रसिक चतुर्विध संघ से अनुरोध है आगम सारांश का स्वाध्याय कर हेय, ज्ञेय, उपादेय को ध्यान में रखकर आत्म कल्याण के क्षेत्र में आगे बढ़े।

सहमंगल मैत्री,

दिनांक -: 11-04-2024
स्थान -: आत्म भवन, अवध संगरीला, सूरत (गुजरात)

शिवमुनि
(आचार्य शिवमुनि)

www.jainacharya.org
shivacharyaji@yahoo.co.in
09350111542
http://www.facebook.com/shivmuni
http://www.twitter.com/jainacharya
http://acharyashivmuni.blogspot.in/
http://www.youtube.com/jainacharyaji
JAINACHARYA

लेखक के दो शब्द

परम पूज्य, परम कृपालु, देवाधिदेव, चरम तीर्थंकर, भगवान महावीर स्वामी ने केवलज्ञान प्राप्त कर सतत् परोपकार में रहकर धर्मदेशना रूपी अमृत का दान जगत के जीवों के लिए किया।

केवलज्ञान से सर्व अर्थों को जानकर उसमें जो प्रज्ञापनीय अर्थ हैं, उन्हें प्रभु फरमाते हैं। गणधर भगवंत उस ''आगम वाणी'' को झेलकर सूत्र रूप गुंथित करते हैं, यह सूत्र रूप रचित पदार्थ यानि श्रुतज्ञान।

जगत में दो प्रकार के पदार्थ हैं, (1) अनभिलाप्य (नहीं कह सकने वाले) (2) अभिलाप्य (कह सकने वाले)। जो कहे जा सकें उनके भी दो विभाग हैं (1)अप्रज्ञापनीय (जो समझाये (बताये) न जा सके) (2) प्रज्ञापनीय (बताये या समझाये जा सके)।

अभिलाप्य पदार्थों से अनभिलाप्य पदार्थ अनंत हैं, अभिलाप्य कम हैं, थोड़े हैं, अप्रज्ञापनीय उनसे भी कम हैं, प्रज्ञापनीय पदार्थ अल्प हैं, फिर भी यह अल्पता अत्यन्त विशाल है। ऐसे अभिलाप्य-प्रज्ञापनीय पदार्थों का संग्रह यानि ''आगम ग्रंथ''।

आगम यानि समुद्र का मंथन जिनका अवगाहन दुष्कर, अति दुष्कर है। सामायिक से लेकर बिन्दुसार नामक 14वें पूर्व तक श्रुतज्ञान है। श्रुतज्ञान का सार चारित्र है, और चारित्र का सार मुक्ति (मोक्ष) सुख है।

अगाध जलराशि से परिपूरित समुद्र में से रत्न खोजना अति कठिन, दुष्कर कृत्य है, फिर भी उस महाभयावह वारिधि में से भी रत्न जिज्ञासु खोजने के लिए तत्पर होकर रत्नों की प्राप्ति कर ही लेते हैं। तलस्पर्शी अभ्यास करने वाले महान् आत्मार्थी मनीषियों ने ''आगम भंडार'' वाचकों के समक्ष रखकर महान् उपकार किया है।

तत्त्वरूपी ''रत्न'' ये आगम ग्रंथ हमारे समक्ष विद्यमान हैं, उपकारियों ने शास्त्रों के माध्यम से ''अदृष्ट जगत'' के दर्शन कराकर हम पर उपकार किया है।

जैन शासन के चारों अनुयोग द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, कथानुयोग, चरणकरणानुयोग का एक महान् संकलन आगम सारांश में कर दिया है। इस ज्ञानार्णव को विषय प्रतिपादन कौशल्य से 4 विभागों में विभक्त कर, समस्त विषय का सम्पूर्ण विवेचन पूर्वक वर्णन इस में किया है।

तत्त्वज्ञान अत्यंत जटिल विषय है, फिर भी चार्ट आदि एवं चित्रादि के माध्यम से सरल पठनीय शैली से सम्पादन करने की कोशिश की है।

सम्पूर्ण लोक के समस्त पदार्थों का समुचित दिग्दर्शन जीव, अजीव, लोक, अलोक आदि जगत के तत्त्वों, पदार्थों को एक ग्रंथ में समाकर ''गागर में सागर'' की युक्ति को कृतार्थ की है।

विषय वस्तु- जैनागमों में विस्तृत एवं यत्र तत्र बिखरे पुष्पों को एकत्रित कर विषयानुकूल सम्पादन करने की चेष्टा करते हुए आचार, संस्कार, उपदेश, कथाशास्त्र एवं तत्त्वज्ञान को इस ग्रंथ में यथास्थान प्रस्तुत किया है। सभी का पारस्परिक

संयोजन होने से एक दूसरे की वक्तव्यता में एक दूसरे का संदर्भ भी आवश्यकतानुसार दिया है। पाठकों को संदर्भ की उचित जानकारी हो सके यही मंतव्य रहा है।

32 जैनागमों का विस्तृत वर्णन पढ़कर, उनमें से सार रूप ग्रहण कर पाठकों के समक्ष रखना, और उसे सुरुचि, पूर्व बनाना यह अत्यन्त दुष्कर था. परन्तु ''जहाँ चाह वहां राह'' की उचित को चरितार्थ करते हुए यह कदम उठाया और वर्षों तक रही हुई लालसा को पूर्ण किया।

सन् 1987 से 1992 तक के पांच वर्षों में श्रद्धेय त्रिलोक मुनि ने अति परिश्रम करके मेरे इस भगीरथ कार्य को पूर्ण किया था, उनेक स्वर्गवास के पश्चात पुनः इसकी जरूरत महसूस हुई, और इस कार्य को नवीनतम रूप देकर चित्रों एवं सारणियों, चार्टो का समावेश करके इस आगम सारांश लेखन को पुनः गतिमान किया, इस ज्ञान गंगा को सर्वत्र पहुंचाने एवं इस आगम रस से आप्लावित करने के इस पुण्योपार्जन में मेरी सुज्ञा बहिन साध्वि द्वय परम् विदुषी श्रद्धेय शील प्रभाजी म.सा. एवं आगम ज्ञाता पंडित रत्न श्री सत्य प्रभाजी म.सा. विशेष योगदान रहा, चित्र, सारणियों, चार्ट ये सभी उन्हीं की आगम ज्ञान पिपासा की झलक है।

महास्थविर गणाधिपति, प्रकांड पंडित, आगम मर्मज्ञ, विद्वदवर्य श्री शांति मुनि जी म.सा. एवं शासन गौरव, प्रज्ञानिधि, जिन शासन के अनमोल रत्न आचार्य प्रवर श्री विजयराज जी म.सा. के आशीर्वाद एवं प्रेरणा से आगम सारांश का लेखन, सम्पादन का कार्य बड़ी ही उमंग, उत्साह से प्रारंभ किया और सभी गुरूजनों के ज्ञान प्रकाश तले यह कार्य उत्तरोत्तर करता रहा।

32 आगमों की विषय वस्तु को मैंने 3 भागों में विभक्त करने का प्रयास किया **यथा–** 1.आचार शास्त्र विभाग, 2. उपदेश एवं कथा शास्त्र विभाग 3. तत्त्व ज्ञान विभाग। तत्त्वज्ञान विभाग अत्यन्त विस्तृत होने से इसे दो भागों में विभक्त किया। इस प्रकार 4 भाग बनाये गये। यथा-

1. आचार शास्त्र विभाग– आचारांग सूत्र आवश्यक सूत्र एवं चार छेद सूत्रों के साथ दशवैकालिक सूत्र तथा चूलिकाएं एवं सूत्रकृतांग सूत्र का समावेश कर इनके परिशिष्टों के साथ संयोजन करके लेखन सम्पादन किया, इससे साधु-साध्वियों के आचार आदि का विस्तृत प्रथम भाग में नियोजन किया गया है। पासत्थादि का विवेचन देकर प्रथम भाग को सुरुचि पूर्ण बनाया है। सर्वप्रथम आचारांग सूत्र एवं उसके परिशिष्ट, आवश्यक सूत्र एवं उसके परिशिष्ट तथा 4 छेद सूत्र उनके परिशिष्ट और साथ में पासत्थादि, नियंठा स्वरूप आदि का समावेश कर विस्तृत एवं रोचक तथा शास्त्रीय प्रमाणादि देकर सुरूचिपूर्ण बनाया।

2. उपदेश एवं कथा शास्त्र विभाग– यह विस्तृत सूत्रों का विभाग है, इसमें, अंग, उपांग एवं मूल सूत्रों का संयोजन करके नंदी सूत्र की कथाएं, परिशिष्ट आदि देकर अत्यंत रोचक पठनीय, मननीय, उपदेशात्मक बनाया है। उपासक दशा अन्तकृत दशा जैसे उपदेशी सूत्रों का संकलन चतुर्दिध संघ के लिए अप्रतिम भेंट स्वरूप विभाग प्रदान करने की भरपूर कोशीश की है। इस भाग में नन्दी सूत्र इसकी कथाएं अनुयोग द्वार सूत्र आदि मूल सूत्रों के साथ औपपातिक सूत्र, राजप्रश्नीय एवं 5 उपांग सूत्रों के साथ, ज्ञाता धर्म कथा, उपासकदशा, अन्तकृतदशा, प्रश्न व्याकरण, विपाक सूत्र, अनुत्तरोपपातिक आदि अंग सूत्रों का महा समायोजन करके 15 सूत्रों का सारांश लिखकर, पर्युषण सम्बन्धी रोचक व्याख्यान सामग्री अन्तकृत सूत्र के साथ देकर इस ग्रंथ भाग को जिज्ञासा मय बनाया है।

3. तत्त्वज्ञान विभाग खण्ड-1 इसमें उत्तराध्ययन सूत्र, अंग सूत्रों में से ठाणांग एवं समवायांग आदि गणितीय सूत्रों का समावेश करके उपांग सूत्रों में से जम्बूद्वीप प्रज्ञाप्ति, ज्योतिषगण राज प्रज्ञप्ति (चन्द्र प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति) एवं जीवाजीवाभिगम सूत्र का विवेचन विस्तृत करके चार्ट एवं चित्रादि देकर अति रोचक पठनीय बनाया है। भ्रान्तियां निवारण करने, द्विअर्थी शब्दों, नक्षत्र भोजन आदि के बारे में निराकरण करके स्वमत स्थपित किया है। गुणस्थान प्रकरण देकर इस भाग को अति रोचक बनाया है।

4. तत्त्वज्ञान विभाग खण्ड-2- इस विभाग में प्रज्ञापना सूत्र, भगवती (व्याख्या प्रज्ञप्ति) सूत्र जैसे अति विशाल सूत्र शास्त्रों का दोहन करके तत्त्वज्ञान जैसे अपार ज्ञान भंडार को श्री संघ के सम्मुख पठनीय, मननीय, ज्ञेय बनाकर प्रस्तुत करना महान् चुनौति भरा कार्य था, इसलिए इस चौथे खण्ड को पूर्णतः अलग करके अलग ग्रंथ रूप देने का विचार करके, इसे अति भव्य बनाने के लिए चार्ट एवं चित्रादि देकर इसे साधु-साध्वी एवं अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों, पी.एच.डी. तथा डॉक्टरेट (D.Lit.) करने वाले भव्य जनों के लिए अति सरल एवं सरस पाठ्य सामग्री के रूप में प्रस्तुत किया है। इसका श्रेय मेरी अत्यन्त आदरणीय सुज्ञ आगम मर्मज्ञ विदुषी साध्वी रत्ना बहिन द्वय श्री शीलप्रभाजी म.सा. एवं सत्यप्रभाजी म.सा. को देता हूँ, जिनके अथक परिश्रम, मार्गदर्शन एवं सत्प्रेरणा से अत्यंत सुलभ हो गया, जिससे सागर को गागर में भरकर विद्वान पाठकों के समक्ष रख सका।

आगम सूत्रों की विषय वस्तु की गहनता, अनेकार्थता को सुगम्य बनाने हेतु आवश्यकतानुसार परिशिष्ट देकर रोचकता और अर्थ ग्रहण को सुरुचि पूर्ण बनाने एवं द्वि अर्थ सूचक और अन्य मतावलम्बियों के प्रक्षिप्त संदेहात्मक शब्द रचनाओं को भी पारदर्शक और स्वमतानुसार बनाने का भी श्रम किया। विवादास्पद शब्द रचनाओं के प्रति सजग रहते हुए कहीं कहीं कठोर शब्दों का प्रयोग करना पड़ा, उसके लिए मैं विद्वदवर्य पाठक गण से क्षमा प्रार्थी हूं। स्वमत रखने के लिए अन्य मत का या द्विअर्थी शब्द रचनाओं का खण्डन आवश्यक होता है। इसी को ध्यान में रखते हुए, स्वमत प्रतिष्ठित करने का प्रयास मात्र है।

विशालतम आगम साहित्य को संक्षिप्त और सरल हिन्दी भाषा में समस्त जन समुदाय के लिए उपयोगी बने, ऐसा विचार करके ये सारांश प्रस्तुत कर रहा हूँ। इससे पूर्व भी कई रचनाएं प्रस्तुत की पर्युषण पर्वराधना में स्वाध्यायियों के लिए उपयोगी 'अन्तर्मन के मोती' थोकड़ो के लिए उपयोगी 'जैन तत्त्व दर्शन' भाग 1 एवं 2, 'जैनागमो में मध्यलोक' भूगोल संबंधी, 'जैनागमों में लोक स्वरूप' भाग 1 एवं 2 लोक द्रव्य क्षेत्र काल भाव का दिग्दर्शन करने हेतु, जैनागमों में उत्कृष्ट एवं संलेखना संथारा ये रचनाएं समाज के समक्ष रखते हुए अत्यधिक आनन्द का अनुभव हुआ।

उक्त नवीन रचना जैनागम सारांश 4 खण्डों में प्रस्तुत कर आप सभी के समक्ष रखते हुए अपार आनन्द और हर्ष की अनुभूति हो रही है, मानो वत्स अपने अभिभावकों के श्री चरणों में पुष्प अर्पित कर रहा है।

इस आगम सारांश रचना को अध्ययन करते समय इसमें कोई त्रुटि नजर आये तो उसे सुधार कर पढ़ने का अनुनय करता हूँ और अल्पज्ञ समझ कर मेरी भूलों के लिए मुझे क्षमा करने का वृहद् हृदय रखें। जिनाज्ञा के विपरीत या विरूद्ध एक शब्द भी लिखने में आया हो तो अरिहन्त सिद्ध भगवन्तों की साक्षी से सभी से करबद्ध क्षमा याचना।

विमल कुमार नवलखा (जगपुरा)

कीम, पीपोदरा सूरत

प्रकाशन सहयोगी दान दाता

21000/- श्रीमान् रमेशचन्द्रजी सा. ओमप्रकाशजी सा. हीरालालजी सा. मांडोत, खमनोर, अंकलेश्वर

21000/- श्रीमान् गणपतलालजी सा. विशाल कुमारजी सा. भलावत, रायपुर (भीलवाड़ा) टिम्बा
श्रीमान् मनोहरलालजी सा. दिनेश कुमारजी सा. पंकज कुमारजी सा. आंचलिया, रायपुर, धोरण पारड़ी
श्रीमान् राजेन्द्र कुमारजी सा. संजय कुमारजी सा. चेतन कुमारजी सा. बोल्या, रायपुर, लाड़वी-मुम्बई, नेरोल

15000/- श्रीमान् सुरेश चन्दजी सा. दीपक कुमारजी सा. नाहर, लाम्बिया, ब्यावर, अंकलेश्वर

11000/- श्रीमान् जीवनसिंहजी सा. चण्डालिया, महाराणा परिवार, घासा, बारडोली

11000/- श्रीमान् सुरेश कुमारजी सा. जीवन सिंहजी सा. दिलीप कुमारजी सा. बाबेल, राशमी, कामरेज

11000/- श्रीमान् चन्द्रसिंहजी सा. प्रशांत कुमारजी सा. मयंक कुमारजी सा. बाबेल डूंगला, कामरेज

11000/- श्रीमान् गौतम कुमारजी सा.अर्पित कुमारजी सा. बोहरा, बर (ब्यावर), कोयम्बटूर

11000/- श्रीमती मदनबाई श्रीमान् मांगीलालजी सा. सौ. कल्पनाजी श्री कांतिलालजी सा. रांका, पूना

11000/- आगममर्मज्ञा डॉ. चेतनाजी म.सा. के पास अध्ययन रत विरक्ता कु. पूजा की ओर से

11000/- श्रीमान् धनराजजी सा. राजकुमारजी सा. समर्थ कुमारजी सा. भंडारी, अरेठ, बारडोली, ब्यावर

6000/- श्रीमान् अंकित कुमारजी सा. निशांत कुमारजी सा. कोठारी, रायपुर, भीलवाड़ा

5100/- श्रीमान् प्रकाशचन्दजी सा. पल्केशजी नमनजी सा. कटारिया, पाली मारवाड़

3000/- श्रीमान् प्रेमसिंहजी सा. शर्मिष्ठ कुमारजी सा. प्रशांत कुमारजी सा. बुरड़, बारडोली

2100/- श्रीमान् पारसमलजी सा. सचिन कुमारजी सा. मेहता, पाली मारवाड़

2100/- श्रीमती कंचन बाई स्व. श्री शांतिलालजी सा. कोठारी, देवगढ़, कामरेज

7500/- श्री जैन दिवाकर महिला परिषद्, चित्तौड़गढ़ (महासती जय श्रीजी म.सा. की प्रेरणा)
श्रीमती अंगूरबालाजी प्रेम कुमारजी सा. भड़क्त्या, अध्यक्ष, चित्तौड़गढ़
श्रीमती नगीनाजी राकेशजी मेहता महामंत्री, चित्तौड़गढ़
श्रीमती नीलमजी संदीपजी तरावत, उपाध्यक्ष, चित्तौड़गढ़
श्रीमती सीमाजी सुनीलजी सिपाणी कोषाध्यक्ष, चित्तौड़गढ़
श्रीमती पुष्पाजी छीतरमलजी चण्डालिया, चित्तौड़गढ

1500/- श्रीमान् ललित कुमारजी सा. स्व. श्री लक्ष्मीलालजी सा. भलावत, रायपुर, कीम

1500/- श्रीमती रेखाजी श्रीमान् मुकेश कुमारजी सा. अम्बालालजी सा. रांका, राजाजी का करेड़ा, अहमदाबाद

1500/- श्रीमती कंचनदेवीश्री किशनलालजी सा. विपिन कुमारजी सा. तातेड़, डिंडोली, चित्तौड़गढ़, थाणे, मुम्बई

1500/- श्रीमान् दिनेश कुमारजी सा. जैन, 8-वीर नगर, दिल्ली रोड मेरठ (यू.पी.)

1500/- श्रीमती मधुजी श्री प्रदीप कुमारजी सा. मठ्ठा, सेंती, चित्तौड़गढ़

1500/- श्रीमान् राजेन्द्रजी सा. पुखराजजी सा. कटारिया, बेलगाम (कर्नाटक)

1500/- श्रीमान् प्रकाशजी, पिंटू कुमारजी, प्रिंस कुमारजी कोठारी, देवगढ़, कामरेज

1500/- श्रीमती प्रेमलताजी श्रीमान् भोपालसिंहजी सा. सांखला, आरणी, कामरेज

1500/- श्रीमान् विनोद कुमारजी सा. नमन कुमारजी सा. दर्शन कुमारजी सा. बोरदिया, चेनपुरा, कीम

अनुक्रमणिका

I प्रज्ञापना सूत्र	1
प्रस्तावना	1
विषयसूचि	1
प्रथम पद-प्रज्ञापना	3
जीव के भेद	3
अजीव के भेद	6
सूक्ष्मबादर-साधारण प्रत्येक	7
वनस्पति काय	8
योनिभूत बीज	9
सम्मुर्च्छिम मनुष्य	10
आर्य देश नगरी	11
दूसरा पद-स्थान	11
सब जीवों के 3 स्थान चार्ट	14
तीसरा पद अल्पबहुत्व	16
दिशा से जीवों का अल्पबहुत्व	16
क्षेत्र लोक में जीवों का अल्पबहुत्व	19
98 बोलों का महादंडक	20
चौथा पद-स्थिति	22
नारक-देवों की स्थिति	23
पांचवां पद-पर्याय जीवपर्यव	25
6 बोलों की विचारणा	25
अजीव पर्यव	31
छठा पद-व्युत्क्रांति	35
चार गति में विग्रह	35
आयुबंध	36
विग्रह एवं उत्पात	37
गतागत विवरण	38
सातवां पद-श्वासोच्छवास	39
देवलोक	39
कालमान है या विरह एक विचारण	40
आठवां पद-संज्ञा	41
चार गति में संज्ञा	42
नवमां पद-योनिपद	43
संसारी जीवों में योनियां	43
अल्पबहुत्व	44
दसवां पद-चरम	44
द्रव्या प्रेक्षया, विभाग प्रेक्षया	44
लोक एवं अलोक में	45
चरम अचरम अल्पाबहुत्व	46
6 भंगों की परमाणु आदि में उपलब्धि	48
26 भंग स्वरूप	48
परमाणु आदि में भंग	51
ग्यारहवां पद भाषा	52
भाषा के प्रकार	53
16 प्रकार के वचन	55
बारहवां पद-बद्ध-मुक्त शरीर	56
शरीर के प्रकार	56
चौवीस दंडक में शरीर	57
पांच शरीरों की संख्या	57
24 दंडक के बद्धमुक्त शरीर	58
यमल पद वर्ग	59
विशिष्ट राशि ज्ञान	60
तेरहवां पद परिणाम	61
जीव परिणाम	61
24 दंडक में परिणाम	61
अजीव परिणाम	62
चैदहवां पद-कषाय	63
4 कषाय	63
पन्द्रहवां पद-इन्द्रिय	64
संस्थान आदि अल्पबहुत्व	64
द्रव्येन्द्रिय विस्तार	67
24 दंडक में त्रैकालिक, इन्द्रियां (एक वचन)	68
24 दंडक में अनेक जीवों की भावेन्द्रियां	68
परस्पर-त्रैकालिक भावेन्द्रियां	69

24 दंडक में त्रैकालिक इन्द्रियां (बहुवचन) 69
सभी दंडक में इन्द्रियां (एक-एक जीव) 70
अनेक जीवों की सभी दंडक में द्रव्येन्द्रियां 71
भावेन्द्रियां विस्तार 72
सौलाहवां पद-प्रयोग 73
प्रयोग 15 73
24 दंडक में प्रयोग 74
जीवों में शाश्वत-अशाश्वत प्रयोग 75
गति प्रवाह 75
सत्रहवां पद-लेश्या 76
प्रथम उद्देशक 76
सलेशी में आहार कर्म 76
दूसरा उद्देशक 77
लेश्याओं का अल्पबहुत्व (चार्ट) 78
तीसरा उद्देशक 82
लेश्या में जन्म मरण 82
चौथा उद्देशक 83
परिणामांतर 83
पांचवां उद्देशक-अपेक्षा 84
छठा उद्देशक लेश्या कहां कितनी 84
अठारहवां पद कायस्थिति 84
जघन्य उत्कृष्ट (चार्ट द्वारा) 22 द्वार से 85
अन्तर चार्ट 89
उन्नीसवां पद सम्यक्त्व 92
24 दंडक में दृष्टि 92
बीसवां पद अन्तक्रिया 93
मोक्षाधिकार 93
उत्पत्ति एवं उपलब्धि 94
देवोत्पत्ति के 14 बोल 95
इक्कीसवां पद अवगाहना संस्थान 96
जघन्य उत्कृष्ट अवगाहना 97
15 द्वार से 5 शरीर 98
शरीर में पुद्गलों का चयन 98
शरीर में शरीर नियमा-भजना 99
अल्पाबहुत्व 99
बावीसवां पद क्रिया 100
स्वरूप 100
कायिकी आदि पांच क्रियाएं 100
24 दंडक में क्रिया 101
पापस्थानों की विरत्ति एवं कर्मबंध 104
तेवीसवां पद कर्म प्रकृति 105
प्रथम उद्देशक 105
कर्मबंध परंपरा एवं मुक्ति 106
8 कर्मों का विपाक 109
दूसरा उद्देशक 109
कर्मों की उत्तर प्रकृतियां 109
50 बोलों की बंधी 110
148 कर्म प्रकृतियों की बंध स्थिति चार्ट 111
बंधकाल जघन्य-उत्कृष्ट 112
चैवीसवां पद कर्म बंध 116
बांध तो बांधे 116
पच्चीसवां पद कर्म बंध वेद 117
बांध तो वेदे 117
छब्बीसवां पद कर्म वेद बंध 117
वेदतो बांधे 117
सत्ताईसवां पद कर्मवेद वेदक 118
वेदतो वेदे 118
अट्ठाइसवां पद आहार 121
प्रथम उद्देशक 121
आहारक अनाहारक 122
आहार संबंधी 11 द्वार 123
द्वितीय उद्देशक 124
13 द्वारों से अहारक अनहारक चार्ट 127
उन्तीसवा पद उपयोग 128
12 उपयोग 128
तीसवां पद पश्यता 128
स्वरूप 128
केवली का उपयोग 129
इकतीसवां पद सन्नी 130
24 दंडक में सन्नी असन्नी 130

बत्तीसवां पद संयत 130
24 दंडक में संयतादि 131
तेतीसवां पद अवधि 131
नारद-देवों में अवधिज्ञान 132
चौतीसवां पद परिचारणा 132
देवलोक में परिचारणा 132
पैंतीसवां पद वेदना 133
तीन प्रकार की वेदना
छत्तीसवां पद समुद्घात 134
7 समुद्घात 134
समुद्घात का समय 136
24 दंडकों में समुद्घातें 138
कषाय समुद्घात 140
छाद्मास्थिक समुद्घात 141
समुद्घातों का क्षेत्रकाल एवं पांच क्रिया 143
समुद्घातों का हार्द 144
केवली समुद्घात आयोजीकरण 145
योग निरोध प्रक्रिया 145
II व्याख्या प्रज्ञप्ति (भगवती) सूत्र 147
प्रस्तावना 147
विशेष विषय सूची (भलावणं निर्देश) 149
प्रथम शतक 162
प्रथम उद्देशक 162
किया जाता कार्य किया 162
कर्म पुद्गल ग्रहण 162
दूसरा उद्देशक 163
कर्मबंध, उदय, शून्यकाल 164
तीसरा उद्देशक 165
सर्व से सर्व बंध 165
कांक्षा मोहनीय 166
संदह की उत्पत्ति 166
चौथा उद्देशक 167
कर्म बंधक निमित्तक 167
पांचवां उद्देशक 168
24 दंडक के आवास 168
नारक-देव, स्थिति स्थान 169
अवगाहना- 170
लेश्या आदि चार्ट 171
छठा उद्देशक 172
रोहा अणगार के प्रश्न 172
सातवां उद्देशक 173
आहार परिणमन 173
विग्रह-अविग्रह गति 173
आठवां उद्देशक 174
आयु बंध 174
वीर्य के 2 प्रकार 174
नवमां उद्देशक 175
जीव हल्का भारी 175
अगुरूलघु 175
कालस्यवेशी अणगार के प्रश्न 175
दसवां उद्देशक 178
मिथ्या मान्यताएं 178
दूसरा शतक 178
उद्देशक 1 से 4 178
श्वासोच्छ्वास 179
स्कंधक अणगार पिंगल श्रावक प्रश्नोत्तर 179
उद्देशक 5 से 7 179
गर्भकाल 181
तुंगियापुरी के श्रावक 182
उद्देशक 8-9 184
चमरेन्द्र 184
उत्पात पर्वत 184
उद्देशक 10 184
पंचास्तिकाय 184
तीसरा शतक 185
प्रथम उद्देशक 185
देवों की वैक्रिय शक्ति 185
ईशानेन्द्र-तामली तापस 187

दूसरा उद्देशक 188
असुरकुमार चमरेन्द्र 190
तीसरा उद्देशक-क्रिया 191
4-5 उद्देशक 191
भवितात्मा अणगार 192
छठा उद्देशक 192
विभंगज्ञानी 193
उद्देशक 7 से 10 193
लोकपाल 194
चौथा शतक 194
उद्देशक 1 से 10 194
ईशानेन्द्र के लोकपाल 194
पांचवां शतक 195
प्रथम उद्देशक 195
सूर्य उदय अस्त काल विभाग 195
दूसरा उद्देशक 195
वायु 195
उद्देशक 3-4 196
आयुबंध-भंग
सहस्त्रार के देव गौतम स्वामी 197
प्रमाण 4
उत्करिका भेद लब्धि 1 घट से हजार घट
उद्देशक 5 198
कुलकर चक्रवर्ती तीर्थंकर वर्णन 198
उद्देशक 6 198
अल्पायु दीर्घायु 198
क्रियाएं 198
ठसाठस नारक क्षेत्र 198
आधा कर्मी के दोष 198
आचार्य उपाध्याय की आराधना 199
सातवां उद्देशक 199
कंपमान अकंपमान पुद्गल 199
पुद्गल स्पर्शना 200
आठवां उद्देशक 201
सप्रदेश अप्रदेश नियमा भजना 201
सोवचय-सावचय 202
नवमां उद्देशक 202
शुभ पुद्गल, अशुभ पुद्गल 202
तीर्थंकर परीक्षा स्थविरों द्वारा 203
दसवां उद्देशक
सूर्य चन्द्र संबंधी विचरणा
छठा शतक 203
उद्देशक 1-2 203
वेदना निर्जरा
उद्देशक 3 204
आहार
50 बोल कर्मबंध की नियमा भजना 204
15 द्वारों से अल्पबहुत्व चार्ट 206
उद्देशक 4 206
कालादेश-सप्रदेशी अप्रदेशी भंग
पांचवां उद्देशक 209
तमस्काय, कृष्णराजी, लोकांतिक देव
छठा उद्देशक 212
समुद्घात
सातवां उद्देशक 212
धान्य की उम्र
आठवां उद्देशक 213
देवों का नरक में गमन
क्षुभित जल
नौवां उद्देशक 213
कर्मबंध वर्णन 213
अविशुद्धालेशी देव 213
दसवां उद्देशक 214
सुख दुःख का ज्ञाता जीव
सातवां शतक 214
प्रथम उद्देशक-लोक संस्थान, अनाहारक का समय 214
क्रियाएं किसे लगती है, इंगालदोष, मांडलदोष
दूसरा उद्देशक 216
10 पच्चक्खाण 216
उद्देशक 3-4-5

वनस्पति अल्पाहारी बहुआहारी	
वेदन-निर्जरा कर्म की अकर्म की	
उद्देशक-6	217
वेदना-अल्याधिक	
छठा आरा	
उद्देशक-7-संवृत्त अणगार, कामीभोगी	217
उद्देशक-8	218
नरक वेदना	
नवमां उद्देशक	219
महाशिला रथमूसल संग्राम	
दसवां उद्देशक	219
कालोदाई की प्रव्रज्या	
आठवां शतक	220
प्रथम उद्देशक	
पुद्गल के प्रकार, भंग	221
दूसरा उद्देशक	225
आशिविष	225
छद्मस्थ 10 स्थान नहीं देखे जाने	226
ज्ञान-अज्ञान वर्णन	228
ज्ञान की स्थिति लब्धि	229
उद्देशक 3-4	231
वृक्ष संख्यात जीवी	
उद्देशक-5	232
सामायिक में त्याग	
49 भंग	
गोशालक 12 श्रावक	
उद्देशक-6	233
आहार दान का फल	
उद्देशक-7	234
देते हुए दी, जाते हुए गया	
चल माण चलिए	
गतिप्रपात	
उद्देशक-8	234
प्रत्यनीक-विरोधी	
ईर्यावही बंध, सम्परायबंध	235
22 परिषह	
अन्तराय	
उद्देशक-9	236
बंध के प्रकार	237
5 शरीर से देशबंध-सर्वबंध	238
उद्देशक-10	
कर्म की नियमा भजना	240
नवमां शतक	241
उद्देशक 1 से 30	241
जम्बू द्वीप वर्णन	
ज्योतिषगणराज वर्णन	
अन्तद्वीपों का वर्णन	
उद्देशक 31	241
असोच्चा केवली	241
सोच्चा केवली	242
उद्देशक-32	242
गांगेय अणगार विस्तृत प्रवेशनक भंग	242
पदविकल्प, पद निकालने का तरीका	
विकल्प निकालने का तरीका	248
सात नरक के पदों का स्पष्टीकरण	252
संख्यात, असंख्यात, उत्कृष्ट जीव भंग	265
उद्देशक 33	271
भगवान महावीर के माता पिता	271
जमाली, जमाली का दीक्षा संवाद	272
जमाली की दीक्षा, मिथ्यात्वोदय, भगवान से अलगाव	275
किल्वषि देव	276
उद्देशक-34	276
हिंसक को 5 पांच क्रियाएं	276
दसवां शतक	277
उद्देशक-1-10 दिशाएं, अवगाहना संस्थान	
उद्देशक-2	278
विची पथ, तीन योनि	
आराधक विराधक	

उद्देशक-3 278
देव देवी गमनशक्ति, उल्लंघन शक्ति
उद्देशक-4 278
त्रांयत्रिशक देव, पूर्व भव
उद्देशक-5 279
देव-देवी परिवार अग्र महिषियां
उद्देशक-6 280
शक्रेन्द्र
उद्देशक-7 से 34
उत्तर दिशाएं 28 अन्तद्वीपों का वर्णन
ग्यारहवां शतक 281
उद्देशक 1 से 8 283
उत्पल, शालुक आदि
उद्देशक-9 285
नामि राजर्षि 285
गंगा किनारे के वानप्रस्थ सन्यासी 284
उद्देशक 10-लोक के 5 प्रकार, वर्णादि 20 बोल,
नर्त्तकी का दृष्टान्त
उद्देशक-11
सुदर्शन श्रमणोपासक 286
उद्देशक-12 287
ऋषि भद्रपुत्र, पुद्गल परिव्राजक
बारहवां शतक 288
उद्देशक-1 288
शंख पुष्कपली श्रमणोपासक
खाते पीते पौषध, पौषध पर चिंतन
धर्म जागरणा 4 भेद 289
कषाय का फल
उद्देशक-2 290
जयंती श्रमणोपासिका के 15 प्रश्न
उद्देशक-3 292
नरक पृथ्वियां 292
उद्देशक-4 292
पुद्गल विभाग भंग
पुद्गल परावर्तन
उद्देशक-5 294
रूपी-अरूपी चार्ट
उद्देशक-6 296
राहु, विमान
उद्देशक-7 296
आकाश प्रदेश स्पर्शन
उद्देशक-8 297
देव की गति, तिर्यंच की गति 297
उद्देशक-9
5 देव-चार्ट 10 द्वार 297
उद्देशक-10 298
आठ आत्मा
तेरहवां शतक 300
उद्देशक-1 300
जीवों उपजना, मरना, 38 बोलों की विचारणा
दस बोल, दृष्टि
उद्देशक-2 301
उपयोग की गतागत
उद्देशक-3-4 302
परिचारणा
नरक संबंधी वर्णन
लोकमध्य
पंचास्तिकाय के गुण 303
अस्तिकाय स्पर्श, अस्तिकाय अवगाह 304
उद्देशक-5-6 307
आहार वर्णन,
चमरचंचा आवास
उदायन राजा, अभिचि कुमार, विराधक 308
उद्देशक-7 309
मन और भाषा के पुद्गल, मरण बाल पंडित
उद्देशक 8 से 10 310
कर्म प्रकृति वर्णन
भवितात्मा अणगार
छाद्मस्थिक समुद्घात
चौदहवां शतक 310

उद्देशक-1 310
दो देवस्थान के बीच आयुबंध
वाटेवहता समय
उद्देशक-2 310
यक्षावेश उन्माद
तीर्थंकर जन्माभिषेक देवागमन
देव तमस्काय कब करे
उद्देशक-3 311
चार गतियों में शिष्टाचार
उद्देशक-4 311
पुद्गलों में वर्णादि शाश्वत, अशाश्वत
उद्देशक-5 311
विग्रह अविग्रह गति अग्नि से निकलना
शब्द रूप आदि इष्ट अनिष्ट कब ?
उद्देशक-6 312
शक्रेन्द्र, ईशानेन्द्र की परिचारणा
उद्देशक-7 312
भगवान महावीर और गौतम स्वामी का साथ
उद्देशक-8 313
पृथ्वी और विमानों में अन्तर
अव्याबाध देव
जृम्भक देव
उद्देशक-9 314
लेश्या पुद्गल
अणगार सुख
उद्देशक-10 314
केवली एवं सिद्ध अन्तर
पन्द्रहवां शतक
गौशालक का वर्णन 315
वैश्यायन तपस्या, तिलका पौधा अलगाव
श्रावस्ती में भगवान और गौशालक
तेजोलश्या प्रहार, गौशालक की दुर्दशा
सम्यक्त्व प्राप्ति, देवगति,रेवती का सुपात्रदान
गौशालक की मुक्ति, विशेष ज्ञातव्य
सौलहवां शतक 327
उद्देशक-1 327
वायु उत्पत्ति, अग्नि, क्रिया
उद्देशक-2 327
जरा, शोक, अवग्रह पांच
उद्देशक-3 327
कर्म प्रकृति
वैद्य द्वारा छेदन से क्रिया
उद्देशक-4 328
अमनोज्ञआहार, तप से कर्मक्षय
उद्देशक-5 328
गंगदत्त देव, शक्रेन्द्र, देव आने के 8 कारण
गंगदत्त के प्रश्नोत्तर
उद्देशक-6 328
स्वप्न, 10 स्वप्न परिणाम (महावीर) 329
स्वप्न फल विज्ञान 329
उद्देशक 7-8 पश्यता पद, चरमांत में जीव, पुद्गल 329
उद्देशक 9-14 330
बलीन्द्र कीचंचा नगरी, अवधि ज्ञान विषय
भवनपति देवों की लेश्यादि
सतरहवां शतक 330
उद्देशक-1
कोणिक के हाथी, उनका भव
वृक्ष हिलाने से 5 क्रिया
भाव 6
उद्देशक-2 330
संयत, असंयत, देव विक्रिया
उद्देशक-3 331
शैलेषी का गमन, कम्पन?
संवेग के 49 बोल
उद्देशक-4-5 332
पाप से कर्मबंध, ईशानेन्द्र की सुधर्म सभा
उद्देशक-6 से 17 332
समवहत असामवहत मरण
सम आहार, विषम आहार, नाग कुमार आदि
अठारवां शतक 332

उद्देशक-1 332
.पढ़म-अपढ़म, चरम अचरम चार्ट
14 द्वारों से 93 बोल 24 दंडक में
उद्देशक-2 336
कार्तिक सेठ, 1008 व्यापारियों के साथ दीक्षा
उद्देशक-3 336
कृष्णादि लोश्या वाले को मोक्ष
चरम अचरम पुद्गल देखना जानना
प्रयोग सा विश्वसा बंध
मार्कन्देय पुत्र के प्रश्नोत्तर
उद्देशक-4 337
जीव के उपयोग में अजीव कलेवर
चार कषाय
युग्म (जुम्मा) चार प्रकार
उद्देशक-5 337
अलंकृत-अनालंकृत-सुन्दर-असुन्दर
उद्देशक-6 338
पुद्गलों में वर्णादि संख्या
उद्देशक-7 338
केवली यक्षाविष्ट नहीं होते
उपधि-तीन, परिग्रह-3
मद्रुक श्रावक पंचास्तिकाय के प्रश्नोत्तर 339
देव पुण्प श्रय का अनुपात चार्ट
उद्देशक-8 340
संयत का गमनागमन और पापक्रिया
परमाणु को देखना
उद्देशक-9 341
भबी द्रव्य चार्ट
उद्देशक-10
अणगार वैक्रिय लब्धि युक्त हो तो
सोमिल ब्राह्मण-भगवान के संवाद
उन्नीसवां शतक 342
उद्देशक-1-3 342
लोश्या वर्णन
साधारण वनस्पति और 23 दंडक के जीव के शरीर (चार्ट)
अवगाहना 44 बोल, समुच्चय बोल
उद्देशक-4 344
आश्रवक, क्रिया, वेदना निर्जरा के 16 भंग
उद्देशक-5 345
चरम नैरयिक-अल्पायु अधिक आयु
उद्देशक-6-10
द्वीप समुद्रों का वर्णन, ज्योतिष के विमान
जीव निवृत्ति 563 भेद, कर्म प्रकृति 148 भेद
कारण 55 निवृत्ति 74 चार्ट
व्यंतरदेवों का सम आहार
बीसवां शतक 348
उद्देशक-1-4 348
अस्तिकाय, पर्याय, नाम
इन्द्रिय चयोपचय
उद्देशक-5 348
पमाणु-वर्णादि भंग चार्ट
द्रव्य, क्षेत्र, परमाणुस्वरूप
उद्देशक-6-8 352
आहार एवं उत्पत्ति, जीव के बंध
भरत एरावत में काल परिवर्तन
तीर्थंकर शासन, दृष्टि वाद का समयकाल
उद्देशक-9 352
विद्याचारण, जंघाचारण मुनि
उद्देशक-10
आयुष्यसोपक्रम, विरूपक्रम, आत्मोपक्रम 354
छक्क नोछक्क पांच भंग, बावीस, चैरासी समर्जित
इक्कीसवां, बाईसवां, तेईसवां शतक
80+60+50=190 उद्देशक
वनस्पति के 10 प्रकार में जीवोंत्पत्ति एवं अन्य वर्णन
चौबीसवां शतक 355
24 दंडक में पाप स्थान गम्मा वर्णन एवं कालादेश चार्ट
गति, भव, आगति, 20 द्वार, 48 जीव, णाणता,
उपपात, परिमाण, अवगाहना, लेश्या कालादेश

पच्चीसवां शतक	382
उद्देशक-1	
भवों का गम्मा विवरण, योग, अल्पबहुत्व	
उद्देशक 2-पुद्गल ग्रहण	383
उद्देशक-3	384
संस्थान-6 युग्म संबंध चार्ट	
अवगाहना, स्थिति वर्णादि, श्रेणियां	
उद्देशक-4	387
24 दंडक सिद्ध आदि का कृतयुग्म संबंधी वर्णन	
श्रेणि युग्म, परमाणु आदि का अल्पबहुत्व	
पुद्गल युग्म, सकंप अकंप, 20 बोल पुद्गल	
उद्देशक-5	392
पज्जव-समय से लेकर पुद्गल परावर्त्तन	
संख्या ज्ञान 194 अंक	
निगोद	
उद्देशक-6	393
नियंठा स्वरूप-चार्ट 36 द्वार	
उद्देशक-7	407
निर्ग्रंथ स्वरूप चार्ट 36 द्वार	
5 संयत का 36 द्वारों से वर्णन चार्ट	
उद्देशक-8-12	414
परभव गति-समय	
छब्बीसवां बंधी शतक (कर्म बंध)	414
ग्यारहवां उद्देशक 11 द्वार 49 बोल	
11 द्वार-47 बोल (चार्ट)	
सत्ताइसवां, अट्ठाइसवां, उन्तीसवां शतक	419
कर्म करना, समार्जन करना, वेदन करना	
तीसवां शतक	420
4 समवरण, 46 बोल बंध आयुबंध चार्ट	
31वां 32वां शतक	422
जुम्मा, क्षुल्लक उत्पन्न, मरण	
33वां एकेन्द्रिय शतक	423
12 अवान्तर शतक, एकेन्द्रिय के लेश्या कर्म आदि	
34वां श्रेणि शतक	423
12 अवांतर शतक 124 उद्देशक चरमांत से चरमांत	
उत्पत्ति वर्णादि 7 श्रेणि से गमन	
उम्र एवं उत्पन्न की चैभांगी, भयी अभवी वर्णन	
35वां एकेन्द्रिय महायुग्म शतक	425
4 युग्म 33 द्वारों से वर्णन	
36 से 39 विकलेन्द्रिय महायुग्म शतक	429
12 अंतर शतक 132 उद्देशक 33 द्वारों से वर्णन	
तीन विकलेन्द्रिय आसन्नी, तिर्यंच पंचेन्द्रिय	
40वां संज्ञी महायुग्म शतक	431
21 अत्तरशतक, 231 उद्देशक	
संज्ञी पंचेन्द्रिय, आगत, कर्मबंध	
द्वारों में णाणता, विशेषताएं	
33 द्वारों से वर्णन	
41वां राशि युग्म शतक	438
4 प्रकार के राशि युग्म	
49×4=196 उद्देशक	
सांतर-निरंतर, संयम-असंयम	
कुल शतक और अन्तर शतक	
एवं उद्देशक संख्या दी है।	

प्रज्ञापना सूत्र

प्रस्तावना–

सूत्र परिचय– जैन साहित्य के अंग प्रविष्ट और अंग बाह्य दो प्रमुख विभाग है। उपलब्ध अंग-प्रविष्ट आगमों में जैसे भगवती सूत्र विशालकाय सूत्र है एवं उसका महत्व पूर्ण स्थान हैं। वैसे ही अंग बाह्य आगमों में प्रज्ञापना सूत्र भी विशालकाय सूत्र है एवं जैन सिद्धान्त के महत्वपूर्ण विषयों का इसमें सांगोपांग संकलन होने से इसका भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है। इस सूत्र में प्र + ज्ञापन = विशेष रूप से विश्लेषण पूर्वक विभिन्न तत्त्वों का ज्ञापन बोध कराया गया हैं। अतः इसका ''प्रज्ञापना'' यह सार्थक नाम हैं। इसकी महत्ता को सिद्ध करने वाले शब्द आगमों में ''पन्नवणाए भगवईए'' इत्यादि प्रयुक्त हैं। जीवाजीवाभिगम सूत्र में भी तत्त्वों का वर्णन हैं। उसमें शरीर अवगाहना लेश्या दृष्टि आदि जीव पर्यायों का उल्लेख एक ही प्रकरण में है किन्तु इस सूत्र में उन उन विषयों पर स्वतंत्र प्रकरण के रूप में सांगोपांग विस्तृत कथन हैं।

रचना कर्ता– इस सूत्र के रचनाकार आर्य कालकाचार्य माने जाते हैं। जिनका अपर नाम श्यामाचार्य था। यों कालकाचार्य तीन हुए हैं। कई ग्रन्थों की गाथाओं में तेवीसवें धीर पुरूष श्यामाचार्य को प्रज्ञापना का पूर्वों से निर्युहण कर्त्ता कहा गया हैं। स्पष्टीकरण प्रथम उपांग कहे जाने वाले औपपतिक सूत्र के प्रारम्भ में कर दिया गया हैं।

विषय बोध– प्रज्ञापना सूत्र एक श्रुतस्कंध हैं। इसके 36 पद है, जो अध्ययन रूप हैं। एक-एक पद में प्रायः एक ही विषय का प्रतिपादन किया गया हैं। यह सम्पूर्ण शास्त्र तत्त्वज्ञान प्रधान हैं। धर्मकथा या आचार सम्बन्धी वर्णन इसके विषय भूत नहीं हैं।इसके विषय वर्णन का विभाजन 36पदों में इस प्रकार हैं-

विषय सूची –

पद	विषय	पद	विषय
1.	जीव अजीव के भेद प्रभेद	2.	जीवों के स्थान, निवास
3.	27 द्वारों से अल्प-बहुत्व	4.	जीवों की स्थितियें-उम्र
5.	जीव अजीव की पर्यायें संख्या से	6.	गतागत, विरह काल आदि
7.	श्वासोच्छवास	8.	संज्ञा के दस प्रकार
9.	योनि	10.	चरम अचरम द्रव्य प्रदेश
11.	भाषा	12.	बद्ध मुक्त शरीर संख्या
13.	जीव अजीव के परिणाम	14.	कषायों के विविध भेद भंग
15.	द्रव्येन्द्रिय भावेंद्रिय आदि	16.	प्रयोग (योग 15)
17.	लेश्याओं का विविध ज्ञान	18.	कायस्थितियां
19.	दृष्टि	20.	अंतकिरिया, पदवी एवं रत्न
21.	अवगाहना-संस्थान	22.	5-5 क्रियाओं की वक्तव्यता
23.	कर्म प्रकृति एवं बंध स्थिति	24.	कर्म बांधतो बांधे
25.	कर्म बांधतो वेदे	26.	कर्म वेदतो बांधे
27.	कर्म वेदतो वेदे	28.	आहारक-अनाहारक

29.	उपयोग	30.	पश्यत्ता
31.	सन्नी असन्नी	32.	संयत
33.	अवधि	34.	परिचारणा
35.	वेदना	36.	समुद्घात

इस प्रकार इस सूत्र में जीव अजीव तत्त्व से प्रज्ञापन प्रारंभ होकर अंत में छत्तीसवें समुद्घात पद से केवली समुद्घात, योग निरोध, शैलेशी अवस्था, मोक्ष गमन एवं सिद्ध अवस्था के उक्त तीनों कालाकाचार्य में से 23 वें युग पुरूष के रूप में एक भी कालकाचार्य की संगति नहीं हो सकती हैं। अतः युग पुरूष या पाट परंपरा गिनने में आशय भेद हो सकता हैं। अथवा इन तीन कालकाचार्यों से अतिरिक्त चौथे अज्ञात कालकाचार्य तेवीसवें पाट पर हुए होंगे इतिहास में पहले दूसरे कालकाचार्य तो 11 वें 12 वें 13 वें पाट के आस पास माने गये है और तीसरे कालकाचार्य देवर्द्धिगणी के समकालीन है जो तेतीसवें चौतीसवें पाट के आस पास होते हैं। तेबीसवें पाट वाले कालकाचार्य तो कोई भी प्रसिद्ध नहीं हैं।

अतः यह संभव हो सकता है कि ''तेतीस'' शब्द कभी लिपि दोष से ''तेवीस'' में परिवर्तन हो गया हो। जिससे यह स्पष्ट होगा कि नंदी सूत्र की तरह प्रज्ञापना सूत्र की रचना भी आगम लेखन काल के आस-पास ही हुई होगी। यों लगभग अंग बाह्य सूत्रों की रचना (छेद सूत्रों को छोड़कर) आगम लेखन काल के आस-पास होना मानना ही अधिक संगत है। कांलातर से ग्रन्थकारों एवं इतिहास लेखकों ने ही उन सूत्रों को आगम लेखन काल से भी प्राचीन आचार्यों से जोड़ने का प्रयत्न एंव प्रचार किया है। यहां तक कि व्याख्या ग्रन्थों को भी इस तरह जोड़ने का प्रयास हुआ है। अथवा तो अज्ञाततावश कल्पनाएं की गई है।

सार यह है कि यह सूत्र कलकाचार्य द्वारा रचित हैं जो तेतीसवें पाट पर एवं देवर्द्धिगणी के समकालीन हुए है। अन्य कल्पनाएं विरोधपूर्ण है।

उपांग– अंग बाह्य इस प्रज्ञापना सूत्र को चौथा उपांग सूत्र भी माना जाता है एवं समवायांग सूत्र से सम्बन्ध जोड़ा जाता है। जो एक भ्रमित अर्वाचीन कल्पना मात्र है। इस विषयक स्वरूप से मोक्ष तत्त्व का कथन किया गया है।

सूत्र परिमाण– यह सूत्र गूढतम विषयों का भंडार रूप महाशास्त्र है। प्रारंभिक तात्त्विक कठस्थ ज्ञान एवं अनुभव के बिना साधक का इस सूत्र में गति पाना एक कठिनतम कार्य है। यह महाशास्त्र 7887 श्लोक परिमाण का माना गया है। इस सूत्र में वर्णित विषयों का महत्व इसलिये भी अधिक हो जाता है कि इसके 1, 2, 5, 6, 11, 15, 17, 24, 25, 26, 27 वें इन ग्यारह पदों का अतिदेश (भलावण) भगवती सूत्र नामक अंग सूत्र में किया गय ाहै।

उपलब्ध साहित्य– इस सूत्र पर आचार्य हरिभद्र सूरि आदि पूर्वाचार्यों की अनेक व्याख्यायें उपलब्ध है, जो अप्रकाशित प्राचीन भंडारों में मिलती है। आचार्य मलयगिरि विरचित टीका एवं उसका अनुवाद प्रकाशित उपलब्ध है। कई स्थानों से इस सूत्र का केवल मूल पाठ प्रकाशित हुआ है। यथा गुडगांव, बम्बई, लाडनू, सैलाना आदि। आचार्य अमोलक ऋषि जी द्वारा संपादित अनुवाद सहित प्रज्ञापना भी उपलब्ध है। आचार्य श्री घासीलालजी म.सा. द्वारा रचित संस्कृत टीका हिन्दी गुजराती अनुवाद सहित प्रकाशित है। ब्यावर से तीन भागों में विवेचनयुक्त इस सूत्र का प्रकाशन आगम प्रकाशन समिति के तत्त्वावधान में हुआ है। जिसके कुशल संपादक है पूज्य आचार्य श्री आत्मारामजी म.सा. के विद्वान शिष्य रत्न श्री ज्ञान मुनि जी म.सा.। उसी के आधार एवं अध्ययन से यह सारांश अनेक तालिकाओं (चार्टों) के साथ तैयार किया गया है। आशा है स्वाध्याय प्रेमी बाल युवा प्रौढ साधु श्रावक समाज इससे अपूर्व लाभ प्राप्त कर संतुष्ट होंगे।

संयोजन
विमल कुमार नवलखा

प्रज्ञापना सूत्र

–प्रथम ''प्रज्ञापना'' पद–

जीव के 563 भेद–

नारकी के 14, तिर्यच के 48, मनुष्य के 303, देव के 198भेद है।

नारकी के 14 भेद- सात नारकी के पर्याप्त और अपर्याप्त।

तिर्यच के 48भेद–

पृथ्वी काय के चार भेद है– 1. सूक्ष्म के अपर्याप्त 2. सूक्ष्म के पर्याप्त 3. बादर के अपर्याप्त 4. बादर के पर्याप्त। इसी प्रकार अपकाय के चार, तेउकाय के चार, वायुकाय के चार भेद है। वनस्पतिकाय के 6भेद - 1. सूक्ष्म 2. साधारण 3. प्रत्येक इन तीनों के अपर्याप्त एवं पर्याप्त। ये एकेन्द्रि के कुल 4 + 4 + 4 + 4 + 6= 22 भेद हुए।

बेइन्द्रिय के दो भेद है– 1. अपर्याप्त 2. पर्याप्त। इसी तरह तेइन्द्रिय और चौरेन्द्रिय के दो-दो भेद है। ये विकलेन्द्रिय के कुल 2 + 2 + 2 = 6भेद हुए।

पंचेन्द्रिय के दो-दो भेद है– 1. जलचर 2. स्थलचर 3. खेचर 4. उरपरिसर्प 5. भुजपरिसर्प ये पांच प्रकार है। प्रत्येक के चार-चार भेद है - 1. असन्नि अपर्याप्त 2. असन्नी पर्याप्त 3. सन्नी अपर्याप्त 4. सन्नि पर्याप्त। ये कुल 5 × 4 = 20 भेद पंचेन्द्रिय तिर्यच के हुए।

सब मिलाकर 22 + 6+ 20 = 48भेद तिर्यंच के हुए।

मनुष्य के 303 भेद– 5 भरत 5 ऐरावत 5 महाविदेह ये पंद्रह कर्म भूमि क्षेत्र है। 5 देव कुरू 5 उत्तर कुरू 5 हरिवर्ष 5 रम्यक् वर्ष 5 हेमवत 5 एरण्यवत ये 30 अकर्मभूमि क्षेत्र है। 56 अतर द्वीप क्षेत्र है। ये कुल 15 + 30 + 56= 101 मनुष्य क्षेत्र है इनमें रहने वाले मनुष्यों के 101 भेद है। इन सभी के तीन-तीन भेद - 1. असन्नि अपर्याप्त (समुच्छिम मनुष्य) 2. सन्नी अपर्याप्त 3. सन्नी पर्याप्त यों कुल 101× 3 = 303 भेद, मनुष्य के हुए।

समुर्च्छिम मनुष्य पर्याप्त नहीं होते, अपर्याप्त ही मर जाते हैं।

जम्बूद्वीप के एक, धातकी खंड में दो और अर्द्ध पुष्कर द्वीप में दो यों कुल 1 +2 + 2 = 5 पांच-पांच भरत आदि क्षेत्र होते हैं। अंतरद्वीप के 56 ही क्षेत्र लवण समुद्र में है। इनका वर्णन जीवाभिगम सूत्र के सारांश प्रतिपत्ति 3 में है। भरत आदि क्षेत्रों का वर्णन जम्बूद्वीप प्रज्ञाप्ति सूत्र सारांश में है।

देव के 198भेद– 1. भवनपति देव 2. वाणव्यंतर देव 3. ज्योतिषी देव 4. वैमानिक देव, ये चार मुख्य भेद हे। इनमें भवनपति के 25, वाणव्यतर के 26, ज्योतिषी के 10, वैमानिक 38 ये कुल 25 + 26+ 10 + 38 = 99 इनके अपर्याप्त और पर्याप्त दो-दो भेद है। यौ कुल 99 × 2 = 198 भेद देव के हुए।

25 भवनपति के नाम– 1. असुर कुमार 2. नागकुमार 3. सुवर्णकुमार 4. विद्युतकुमार 5. अग्निकुमार 6. उदधिकुमार 7. द्वीपकुमार 8. दिशाकुमार 9. पवन कुमार 10. स्तनित कुमार।

पंद्रह परमाधामी देव है जो असुरकुमार जाति के ही देव है। ये नरक में नारकी जीवों को दुःख देते है, परम अधर्मी और क्रूर होते है। इसलिए परमाधामी कहे जाते है। वे इस प्रकार है - 1. अम्ब 2. अम्बरीष 3. श्याम 4. शबल 5. रौद्र 6. महारौद्र 7. काल 8. महाकाल 9. असिपत्र 10. धनुष 11. कुम्भ 12. वालुका 13 वैतरणी 14. खरस्वर 15. महाघोष। ये 10 + 15 = 25 भेद हुए।

26वाणव्यंतर- पिशाचादि आठ- 1. किन्नर 2. किंपुरूष 3. महोरग 4. गंधर्व 5. यक्ष 6. भूत 7. पिशाच 8. आणपन्नें आदि आठ - 1. आणपन्ने 2. पाणपन्ने 3. इसिवाई 4. भूयवाई 5. कदे 6. महाकदे 7. कुह्मण्डे 8. पयंग देव।

जृम्भक दस - 1. अन्न जृम्भक 2. पान जृभक 3. लयन जृम्भक 4. शयन जृभक 5. वस्त्र जृभक 6. फल जृभंक 7. पुष्प जृंभक 8. फल-पुष्प जृभंक 9. विद्या जृंभक 10. अग्नि जृंभक। ये कुल 8+ 8+ 10 = 26 भेद हुए।

ज्योतिषी 10- 1. चन्द्र 2. सूर्य 3. ग्रह 4. नक्षत्र 5. तारा ये पांच प्रकार हैं। इनके दो भेद है- 1. चल 2. स्थिर। ये कुल 5 × 2 = 10 भेद हैं। ढाई द्वीप में ये ज्योतिषी चल है और ढाई द्वीप के बाहर स्थिर हैं।

वैमानिक 38- 12 देवलोक, 3 किल्विषी 9 लोकातिक, 9 ग्रैवेयक, 5 अणुत्तर विमान।

12 देवलोक- 1. सौधर्म 2. ईशान 3. सनत्कुमार 4. माहेन्द्र 5. ब्रह्मलोक 6. लांतक 7. महाशुक्र 8. सहस्त्रार 9. आनत 10. प्राणत 11. आरण 12. अच्युत।

किल्विषी- 1. तीन पलयोपम वाले 2. तीन सागरोपम वाले 3. तेरह सागरोपम वाले।

लोकांतिक- 1. सारस्वत 2. आदित्य 3. वन्हि 4. वरूण 5. गर्दतोयक 6. तुषित 7. अव्याबाध 8. आग्नेय (मरूत) 9. अरिष्ट।

9 ग्रैवेयक- 1. भद्र 2. सुभद्र 3. सुजात 4. सुमनस 5. सुदर्शन 6. प्रियदर्शन 7. आमोघ 8. सुप्रतिबद्व 9. यशोधर।

5 अणुत्तर विमान- 1. विजय 2. वेजयंत 3. जयंत 4. अपराजित 5. सर्वार्थ सिद्ध।

नोट- यहां सूत्र में भवनपति के असुरादि दस और वाणव्यतंर के पिशाचादि आठ भेद कहे हैं। पंद्रह परमाधामी, आठ आणपन्ने आदि, 10 जृभक ये नाम और भेद अन्य सूत्रों से लिये हैं। इसी तरह वैमानिक में 9 लोकांतिक 3 किल्विषी के नाम और भेद भी अन्य सूत्रों से लिये हैं।

पन्द्रह भेदे सिद्ध-

1. तीर्थ सिद्ध- तीर्थंकर भगवान चार तीर्थ की स्थापना करते हैं। उसके बाद तीर्थ प्रर्वतन होता हैं। उस तीर्थ प्रर्वतन काल में जो सिद्ध होते है वे ''तीर्थ सिद्ध'' कहे जाते हैं। गणधर आदि श्रमण ''तीर्थ सिद्ध'' हैं।

2. अतीर्थ सिद्ध- तीर्थ प्रवर्त्तन के पहले जो सिद्ध होते है या तीर्थ विच्छेद हो जाने पर जो सिद्ध होते है, वे अतीर्थ सिद्ध हैं। अर्थात् जब किसी तीर्थंकर के शासन में श्रुत विच्छेद हो जाता है अथवा श्रमण श्रमणी का विच्छेद हो जाता है तब कोई स्वतः ज्ञान प्राप्त कर सिद्ध होवे वह अतीर्थ सिद्ध हैं।

इन दो भेदों में सभी सिद्धों का समावेश हो सकता हैं।

3. तीर्थंकर सिद्ध- जो चारों तीर्थं की स्थापना करते है, वे जिनेश्वर भगवत तीर्थंकर सिद्ध कहे जाते हैं। ये भरत ऐरावत में 24-24 क्रमशः कुछ कुछ अंतर से होते रहते हैं। एक महाविदेह क्षेत्र में निरंतर कम से कम 4 होते है अधिकतम 32 होते हैं। पांच महाविदेह की अपेक्षा 5 × 4 = 20 कम से कम और 32 × 5 = 160 अधिकतम तीर्थंकर होते हैं। भरत ऐरावत में एक समय में एक-एक होते है, पांच भरत, पांच ऐरावत की अपेक्षा 5 + 5 = 10 होते हैं। अढ़ाईद्वीप 15 कर्मभूमि क्षेत्र में कुल उत्कृष्ट 170 तीर्थंकर हो सकते हैं।

4. अतीर्थंकर सिद्ध- तीर्थं के अतिरिक्त जो भी सामान्य श्रमण श्रमणी केवली होकर सिद्ध होते है, वे गणधर आदि सभी अतीर्थंकर सिद्ध हैं।

5. स्वयं बुद्ध सिद्ध– जातिस्मरण ज्ञान अथवा अवधिज्ञान आदि के द्वारा स्वतः धर्म बोध पाकर जो सिद्ध होते है, वे स्वयं बुद्ध सिद्ध हैं।

6. प्रत्येक बुद्ध सिद्ध– किसी पदार्थ को जीव को या उसकी अवस्था को देखकर उसके अनुप्रेक्षण से बोध पाकर जो सिद्ध होते है, वे प्रत्येक बुद्ध सिद्ध है। स्वयं बुद्ध में अंतर ज्ञान का निमित्त होता है, प्रत्येक बुद्ध में बाह्य पदार्थ का निमित्त होता है, यही दोनों में अंतर हैं।

7. बुद्ध बोधित सिद्ध– किसी के उपदेश से बोध पाकर जो सिद्ध होते है वे बुद्ध बोधित सिद्ध हैं।

8. स्त्रीलिंग सिद्ध– स्त्री के शरीर से सिद्ध होने वाले स्त्रीलिंग सिद्ध हैं। स्त्री वेश या स्त्री वेद के उदय की यहां कोई अपेक्षा नहीं हैं। क्योकि वेद का उदय तो नौवें गुणस्थान तक ही होता है उसके बाद अवेदी होने पर ही सभी सिद्ध होते हैं एवं कपड़े पुरूष के पहन लेने मात्र से स्त्रियां एक समय में 108 सिद्ध नहीं हो सकती है अतः यहां स्त्रीलिंग सिद्ध में स्त्री शरीर से ही प्रयोजन हैं।

9. पुरूषलिंग सिद्ध– पुरूष के शरीर से सिद्ध होने वाले पुरूषलिंग सिद्ध हैं।

10. नपुंसक लिंग सिद्ध– नपुंसक के शरीर से सिद्ध होने वाले नपुंसक लिंग सिद्ध हैं। ये नपुंसक जन्म से भी होते है और कृत्रिम (किये गये) भी होते है ये दोनों ही प्रकार के सिद्ध हो सकते हैं। अथवा वातिक पंडक क्लीब ये तीन प्रकार के नपुंसक भी कहे गये है ये भी सिद्ध हो सकते हैं। इन सभी प्रकार के नपुंसकों का मुख्य दो भेदों में समावेश होता है- 1. स्त्री नपुंसक 2. पुरूष नंपुसक। इनमें पुरूष नपुंसक सिद्ध होते है। स्त्री नपुंसक सिद्ध नहीं होते है क्योंकि उनमें स्वभाव से छट्ठा गुणस्थान (संयम) नहीं आता हैं। ऐसा भगवती सूत्र शतक 25 उद्देशक 6 से स्पष्ट होता हैं।

स्त्री चिन्ह (स्तन, योनि) की प्रधानता वाला नपुंसक ''स्त्री नपुंसक'' होता हैं। और पुरूष चिन्ह (दाढी मूछ जननेन्द्रिय) की प्रधानता वाला नपुंसक ''पुरूष नपुंसक'' होता हैं।

इन सभी प्रकार के नपुंसको को दीक्षा देने का आगम में निषेध हैं। फिर भी ये स्वतः दीक्षित होकर एकाकी विचरण कर मोक्ष जा सकते हे अथवा आगम विहारी इन्हें दीक्षा देकर स्वतंत्र विचरण करा सकते हैं। फिर भी हरिकेषी मुनि (चांडाल) की तरह ये अलग विचरण कर के सिद्ध हो सकते हैं इसी से नपुंसक लिंग सिद्ध का भेद सार्थक होता हैं।

11. स्वलिंग सिद्ध– जिनेश्वर भगवंत प्ररूपति जो सचेल अचेल लिंग-वेष है उसमें रहते हुए जो सिद्ध होते हे, वे स्वलिंग सिद्ध हैं।

12. अन्यलिंग सिद्ध– परिव्राजक तापस आदि मतांतरियों की वेशभूषा में जो सिद्ध होते है वे अन्यलिंग सिद्ध हैं। अर्थात् परिणामों की धारा शुद्व शुद्वतम होते होते गुण श्रेणी की वृद्धि कर कोई जीव अन्य लिंग में सातवें आठवें यावत् 13 वें 14 वें गुणस्थान को प्राप्त कर सिद्ध हो सकता हैं।

13. गृहस्थलिंग सिद्ध– गृहस्थावस्था में रहे हुए किसी जीव को भाव श्रेणी की वृद्धि होकर संयम अवस्था प्राप्त हो जाती है और वह संपूर्ण कर्म क्षय कर सिद्ध हो जाता है, यह गृहस्थलिंग सिद्ध हैं

अन्य लिंग और गृहस्थ लिंग वाले भावों से संयम प्राप्त हो जाने पर अल्पायु या अन्य कोई कारण से उस लिंग में सिद्ध होते हैं। यदि दीर्घायु हो और अन्य कोई परिस्थिति न हो तो वे यथा समय यथावसर स्वलिंग धारण कर विचरण करके फिर सिद्ध होते है तो वे स्वलिंग सिद्ध गिने जाते हैं।

14. एक सिद्ध- एकाकी सिद्ध होने वाले अर्थात् जिसके साथ में कोई सिद्ध नहीं होता है, ऐसा गच्छगत साधु या एकाकी साधु या अन्य कोई भी सिद्ध होता है, वह एक सिद्ध है।

15. अनेक सिद्ध- जो अनेकों के समूह के साथ संथारा करके साथ ही आयु समाप्त होने पर सिद्ध होते है वे ''अनेक सिद्ध'' हैं।

अजीव के 560 भेद-

अरूपी अजीव के 30 एवं रूपी अजीव के 530 भेद हैं। धर्मास्तिकाय आदि चार अरूपी अजीव के स्कंधादि 10 भेद है और इन चारों के द्रव्य क्षेत्र काल भाव गुण ये 5-5 प्रकार होने 4 × 5 = 20 भेद होते हैं यों कुल 10 + 20 = 30 भेद हुए।

रूपी अजीव (पुदगल) के 530 भेद-

मूल भेद- 5 वर्ण- 1. काला 2. नीला 3. लाल 4. पीला 5. सफेद

2 गंध- 1. सुगंध 2. दुर्गन्ध

5 रस- 1. तीखा 2. कडुआ 3. कषायला 4. खट्टा 5. मीठा

8स्पर्श- 1. खुरदरा 2. सुहाला (कौमल) 3. हल्का 4. भारी 5. ठंडा 6. गर्म 7. रूक्ष (लुखा) 8. स्निग्ध (चिकना)

5 संस्थान- 1. वृत 2. परिमंडल 3. त्रिकोण 4. चौकोन 5.आयत ये मूल भेद हैं। इनके उत्तर भेद 530 है, वे इस प्रकार है-

भेदानुभेद-

वर्ण के 100 भेद- काला वर्ण 20 प्रकार का है अर्थात् उसमें शेष चार वर्ण नहीं होते हें। सुगंध और दुर्गन्ध के भेद से काले दो प्रकार के होते हैं। उसी प्रकार 5 रस से 5 प्रकार, 8स्पर्श से आठ प्रकार और 5 संस्थान से पांच प्रकार यों कुल 2 + 5 + 8+ 5 = 20 ये बीस प्रकार हुए हैं। इसी प्रकार नीले आदि के भी 20-20 प्रकार हैं। अतः 5 वर्णे के 5 × 20 = 100 प्रकार हुए।

गंध के 46भेद- 2 गंध के वर्णादि 23-23 (5 वर्ण 5 रस 8स्पर्श 5 संस्थान) भेद होने से

23 × 2 = 46भेद हुए।

रस के 100 भेद- 5 रस के 20-20 भेद (5 वर्ण 2 गंध 8स्पर्श 5संस्थान) होने से 20 × 5 = 100 भेद हुए।

स्पर्श के 184 भेद- 8स्पर्श के 23-23 भेद (5 वर्ण 2 गंध 5 रस 6स्पर्श 5 संस्थान) होने से 23 × 8= 184 भेद हुए । यहां स्वयं को और प्रतिपक्षी स्पर्श को, यों दो स्पर्श छोड कर 6 गिने हैं।

संस्थान के 100 भेद- 5 सस्थान के 20-20 भेद (5 वर्ण 2 गंध 5 रस 8स्पर्श) होने से 20 × 5 = 100 भेद हुए।

530 भेद का योग- यों वर्ण के 100, गंध के 46, रस के 100, स्पर्श 184, संस्थान के 100, मिलाकर कुल 100 + 43 + 100 + 184 + 100 = 530 भेद रूपी अजीव के होते हैं।

भेद संख्या विचारणा- 530 रूपी + 30 अरूपी = 560 कुल अजीव के भेद हुए। इन 563 जीव के और 560 अजीव के भेद की संख्या आगमों में से भेदों को संकलित करके कहे जाने की परंपरा हैं। मौलिक आगमों में यत्र-तत्र विभिन्न अपेक्षा से भेद प्रभेद एवं वर्णन तो है ही, किन्तु 563 और 560 की संख्या का निर्धारण किसी भी आगम में नहीं हैं। तथापि यह संख्या आगम सापेक्ष है, आगम निरपेक्ष नहीं है, ऐसा कहा जा सकता हें।

इसी तरह 25 भवनपति 26व्यतर 38वैमानिक आदि संख्याओं के विषय में भी समझ लेना चाहिये। यथा- 9 लोकांतिक 15 परमाधामी 10 जृंभक 3 किल्विषी आदि प्रस्तुत सूत्र प्रकरण में नहीं बताये हैं। भगवती सूत्र आदि में वे भेद वर्णित हैं।

सूक्ष्म बादर– सूक्ष्म और बादर नाम कर्म के उदय से जीव सूक्ष्म और बादर होते हैं। सूक्ष्म में 5 स्थावर है ये चर्म चक्षु से नहीं दिखते एवं संपूर्ण लोक में ठसाठस भरे है इनकी गति स्थूल पुदलों एवं औदारिक शरीर तथा शस्त्रादि से अप्रतिहत हैं। इस सूत्र के दूसरे पद में एवं उत्तराध्ययन सूत्र में इन सूक्ष्म जीवों को सर्व लोक में होना कहा गया हैं। बादर जीव 5 स्थावर रूप और त्रस काय रूप दोनों प्रकार के होते हैं। इनका शरीर स्थूल होता हैं। शस्त्र आदि से प्रतिहत होता हैं। बादर के ये स्थावर और त्रस जीव लोक में कहीं होते है कही नहीं होते हैं। बादर के भी कोई कोई एक जीव चर्मचक्षु से दिख सकते हैं। और कोई अनेक संख्य असंख्य अनंत इकट्ठे होने पर दिखते हैं।

पर्याप्त अपर्याप्त– समुच्छिंम मनुष्य को छोडकर शेष सूक्ष्म बादर सभी जीव के भेद प्रभेदों में पर्याप्त और अपर्याप्त ये दोनों भेद होते हैं।

पर्याप्त नाम कर्म के उदय वाला जीव पर्याप्त कहा जाता है और अपर्याप्त नाम कर्म के उदय वाला जीव अपर्याप्त कहा जाता है अथवा जिस जीव के जितनी पर्याप्ति पूर्ण करने की होती है वे प्रारंभिक समयों में जब तक पूर्ण नहीं होती हैं। तबतक वह जीव अपर्याप्त कहा जाता हैं। उन पर्याप्तियों के पूर्ण करने में सभी जीवों को जघन्य और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त समय लगता हैं।

पर्याप्तियां 6 है जिसमें आहार पर्याप्ति का अपर्याप्त 1-2 समय ही रहता है। शेष पांचों पर्याप्ति का अपर्याप्त असंख्य समय रहता हैं। अर्थात् आहार पर्याप्ति का पर्याप्त बननें में 1-2 समय लगता है शेष पांचों पर्याप्ति का पर्याप्त बनने में प्रत्येक में भी असंख्य असंख्य समय का अंतर्मुहुर्त्त लगता है और सब में मिलकर भी अंतर्मुहुर्त्त लगता हैं। किस जीव में कितनी पर्याप्तियां होती है यह वर्णन जीवाभिगम सूत्र सारांश प्रथम प्रतिपत्ति में हैं।

साधारण– प्रत्येक– वनस्पति में ही साधारण और प्रत्येक ऐसे दो भेद बादर में किये जाते हैं एक शरीर में एक जीव का होना यह प्रत्येक शरीरी का लक्षण हैं। अथवा प्रत्येक जीव का स्वतंत्र एक शरीर होना यह प्रत्येक जीवी का लक्षण हैं।

अंनत जीवों का सम्मिलित एक शरीर होना अर्थात् एक ही शरीर में अनंत जीवों का सम्मिलित अस्तित्त्व होना, उनका स्वतंत्र व्यक्तिगत कोई भी अस्तित्त्व नहीं होना यह साधारण जीवी का लक्षण है ऐसे जीव साधारण शरीरी कहे जाते हैं।

यों तो प्रत्येक शरीरी भी एक शरीर में अनेक जीव देखे जाते है किन्तु वह तो उनका पिंडीभूत शरीर दीखता है, साथ ही उन प्रत्येक जीवों का अपना व्यक्तिगत स्वतंत्र शरीर भी अलग अलग होता हैं। यथा- तिल पपडी या मोदक आदि जैसे एक पिंड हैं। उसके सभी तिल चिपक कर एक पिंड दिखता है तो भी प्रत्येक तिल का अपना स्वतंत्र अस्तित्त्व शरीर स्कंध रहता है। उसी प्रकार प्रत्येक वनस्पति के अनेक जीवों के संघात समुह को समझना चाहिये। किन्तु साधारण वनस्पति में ऐसा नहीं होता है, उसमें तो एक ही शरीर में अनंत जीव भागीदार के समान होते हैं।

वह अनंत जीवों का एक शरीर एक निगोद कहलाता है उसमें रहे अनंत जीव निगोद जीव कहलाते हैं। ये अनंत जीव मिलकर ही एक शरीर बनाते हैं। एक साथ जन्मते है, एक साथ ही पर्याप्तियां पूर्ण करते है, एक साथ मरते है और श्वासोश्वास भी एक साथ ही लेते है अर्थात् उनका आहार, श्वासोश्वास, पुद्गल ग्रहण आदि साधारण ही होता है, यही उनकी साधारणता का लक्षण हैं।

ये निगोद सूक्ष्म और बादर दोनों तरह के होते है जिसमें सूक्ष्म तो चर्म चक्षु से अग्राह्य ही है और बादर में भी असंख्य निगोद मिलने पर कोई ग्राह्य होते है कोई ग्राह्य नहीं होते। इनके जानने में वीतराग वचन ही प्रमाणभूत हैं। इस प्रकार इन अनंत जीवों के औदारिक शरीर एक होता है किन्तु तेजस कार्मण शरीर तो प्रत्येक जीवका भिन्न- भिन्न ही होता हैं।

श्लक्षण (कौमल) पृथ्वी- मुलायम मिट्टी को श्लक्षण पृथ्वी कहते हैं। इसके सात प्रकार हैं- 1. काली मिट्टी 2. नीली 3. लाल 4. पीली 5. सफेद मिट्टी 6. पंडु-मटमेले रंग की मिट्टी 7. पपडी - परपडी की मिट्टी। सात प्रकार में अन्य भी सभी प्रकार की कोमल मिट्टी समाविष्ट समझ लेनी चाहिये।

खर (कठोर) पृथ्वी- 1. सामान्य पृथ्वी 2. कंकर-मुरड़ 3. बालुरेत 4. पत्थर 5. शिला 6. लवण 7. खार 8. लोहा 9. तांबा 10. तरूआ 11. शीशा 12. चांदी 13. सोना 14. वज्र 15. हड़ताल 16. हिंगलू 17. मैनसिल 18. सासग (पारद) 19. सुरमा 20. प्रवाल 21. अभ्रक पटल 22. अभ्ररज ।

1. गोमेद रत्न 2. रूचक रत्न 3. अंक रत्न 4. स्फटिक रत्न 5. लोहिताक्ष रत्न 6. मरकत रत्न 7. मसारगल्ल (मसगल) रत्न 8. भुजमोचक रत्न 9. इन्द्रनील रत्न 10. चन्द्र नील रत्न 11. गेरूड़ी रत्न 12. हंस गर्भ रत्न 17. जलकांत मणी 18. सूर्यकांत मणी।

ये कुल 40 नाम शास्त्र में उपलब्ध हैं।

अपकाय- 1. ओस 2. बर्फ 3. धूंअर 4. गड़ा (ओले) 5. वनस्पति से झरने वाला पानी 6. शुद्व जल 7. शीतोदक 8. उष्णोदक 9. खारोदक 10. खट्टोदक (कुछ खट्टा) 11. अम्लोदक 12. लवण समुद्र का जल 13. वरूणोदक 14. क्षीरोदक 15. घृतोदक 16. क्षोदोदक (इक्षु रस के समान) 17. रसोदक (पुष्कर समुद्रीय जल)

तेउकाय- 1. अंगारे 2. ज्वाजल्यमान ज्वाला 3. भोभर (राख युक्त) 4. टूटती झाल 5. कुंभकार की अग्नि या जलती लकड़ी 6. शुद्व अग्नि (लोहे के गोले की अग्नि) 7. उल्का (चकमक की) अग्नि 8. विद्युत 9. अशनि-आकाश से गिरने वाले अग्नि कण अथवा अरणि-काष्ट से उत्पन्न अग्नि 10. निर्घात (कड़कने की) अग्नि 11. संघर्ष से उत्पन्न- खुर सिंग काष्ठ आदि के घर्षण से 12. सूर्यकांत मणि-आइग्लास से उत्पन्न होने वाली। 13. दावानल की अग्नि 14. वडवानल की अग्नि।

वायुकाय- 1. पूर्वीवात् 2. पश्चिम 3. उत्तर 4. दक्षिण 5. ऊपर 6. नीचे 7. तिरछे एवं 8. विदिशवात् 9. अनवस्थिवात् 10. तुफानी हवा 11. मण्डलिकवात् (वातोली) 12. आंधी 13. गोलचक्कर दार हवा 14. सनसनाती आवाज करके गूंजने वाली हवा 15. वृष्टि के साथ चलने वाला अंधड वृक्षों को उखाडने वाली हवा 16. प्रलयकाल में चलने वाली हवा, सामान उड़ाकर ले जाने वाली हवा 17. घनवात 18. तनुवात 19. शुद्धवात (घीमें घीमें बहने वाली हवा)

वनस्पतिकाय-

1. वृक्ष- आम, नीम, जामुन, पीलु, शेलु, हरडा, बेहड़ा, आंवला, अरीठा, महुंआ, रायण, खजूर आदि ये एक बीज गुटली वाले फलों के वृक्ष हैं। जामफल, सीताफल, अनार, विल्व, कबीठ, कैर, नीबू, टीम्बरू, बड, पीपल, बिजोरा, अनानास इत्यादि बहुबीजी फलों के वृक्ष हैं।

2. गुच्छ- छोटे और गोल वृक्ष को गुच्छ-पौधा कहते है। बैंगन, तुलसी, जवासा, मातुलिंग आदि।

3. गुल्म- फूलों के वृक्ष को गुल्म कहते है- यथा-चम्पा-मोगरा, मरवा, केतकी, केवड़ा आदि

4. लता- वृक्षों पर चढने वाली-चपक लता, नागलता, अशोकलता आदि।

5. बेल- जमीन पर फैलने वाली-ककड़ी, तुराई, तरबूज, तुंबी, एला आदि ।

6. पर्वक- गांठ वाले- इक्षु, बांस, बेंत आदि।

7. तृण- कुश, दोब आदि घास ।

8. वलय- सुपारी, खारक, खजूर, केला, तज, इलायची, लोंग, ताड, तमाल, नारियल आदि।

9. हरितकाय- पत्ती की भाजी-मेथी, चंदलोई, सुवा, पालक, बथुआ आदि।

10. धान्य- चावल, गेहूं, जौ, चना, मसूर, तिल, मूंग, उड़द, निष्फाव, कुलत्थ, बाजरा, जवार, मक्की, तुवर, चवले, मटर, आदि।

11. कुहणा- सर्प छत्रा, भूफोड़ा, आय, काय, कुहण आदि वनस्पतियां।

योनिभूत बीज-

जिसमें उगने की शक्ति हो वह योनि भूत बीज कहलाता हैं। यह सचित और अचित दोनों तरह का होता हैं। अर्थात् जीव निकल जाने पर भी योनिभूत बीज में उगने की शक्ति रहती हैं। ये अविध्वस्त योनि के बीज कहे जाते हैं। शक्ति सम्पन्न अखंड बीज ही योनि भूत होता हैं। ऐसे बीज प्रायः पूर्णायु वाले होते हैं। अयोनि भूत बीज पूर्ण परिपक्व नहीं होते अथवा अल्प शक्तिवान होते है वे अल्प उम्र वाले होते है जल्दी ही अचित हो जाते है सचित अचित दोनों अवस्था में वे नहीं उगते हैं। विशेष जानकारी के लिये परिशिष्ट देखें।

बेइन्द्रिय- शंख, कोड़ी, सीप, जलोक, कीड़े, पोरे, लट, अलसिये, कृमी, चरमी, कातर (जलजन्तु), वारा (वाला) लालि (लार) आदि।

तेइन्द्रिय- जूं, लीख, मांकड (खटमल) चांचड, कुंथुवे, धनेरे, उद्दई (दीमक), इल्ली, भुंड, कीड़ी, मकोड़े, जीघोडे, जुआ, गधैया, कानखजूरे, सवा, ममोले आदि।

चौरेन्द्रिय- भंवरे, भंवरी, बिच्छु, मक्खी, मच्छर, डांस, टीड, पंतगा, कसारी, फुंदी, केकड़े, बग, रूपेली आदि।

जलचर- मच्छ, कच्छ, मगरमच्छ, कछुआ, ग्राह, मेंढक, सुंसुमाल आदि।

स्थलचर- 1 एक खुर वाले- घोडे, गधे, खच्चर आदि।

2. दो खुर वाले- गाय, भैस, बैल, बकरे, हीरण, खरगोश आदि।

3. गंडीपद- ऊंट, गैडे, हाथी आदि।

4. नखी- बाघ, सिंह, चीता, कुत्ते, बिल्ली, रीछ, बंदर आदि।

उरपरिसर्प- 1. अहि (सर्प)- फण करने वाले और फण नहीं करने वाले, 2. अजगर- निगल जाने वाले, 3. असालिया-चक्रवर्ती सेना को भी नष्ट करने योग्य। उत्कृष्ट 12 योजन शरीर वाला, 4. महोरग- भूमि पर उत्पन्न होते है, जल स्थल दोनों में विचरण करते है, ढाई द्वीप के बाहर होते है, महाकाय वाले होते हैं।

भुजपरिसर्प- नेवला, गोहा, चन्दनगोह, चूहा, छिपकली, गिलहरी, काकीड़ा इत्यादि।

खेचर- 1. चर्म पक्षी- बगुला, चमचेड, चमगादड़, कानकटिया आदि, 2. रोम पक्षी- कबूतर, चिड़ी, कौवे कमेड़ी, मैना, पोपट कुकुट, चील, मयूर, कोयल, कुरज, बत्तख, तीतर, बाज हंस आदि, 3. समुद्र पक्षी- डब्बे जैसी भिड़ी हुई गोल पांख वाले, ये ढाई दीप के बाहर होते हैं, 4. वितत पक्षी- पंख फैलाये रखने वाला या लंबे पंखो वाले। ये भी ढाई दीप के बाहर होते हैं।

आर्य अनार्य मनुष्य- मनुष्य दो प्रकार के होते हैं- 1. आर्य 2. अनार्य (म्लेच्छ)।

अनार्य (म्लेच्छ)- शक, यवन, किरात, शबर, बर्बर, मरूड, गोंड, सिंहल, आंध्र, तमिल, पुलिंद, डोंब, कोंकण, मालव, चीना, बकुश, अरबक, कैकय, रूसक चिलात आदि।

आर्य- 1. ऋद्धि प्राप्त- अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, चारण, विद्याधर।

2. ऋद्धि अप्राप्त- नौ प्रकार के हैं- 1. क्षेत्रार्य 25 देश आर्य हैं इनमें जन्म लेने वाले मनुष्य क्षेत्रार्य हैं, 2. जाति आर्य- ब्राहाण, क्षत्रिय, वैश्य जातियों वाले जाति आर्य हैं, 3. कुल½- उग्र कुल, भोग कुल, इक्ष्वाकुकुल, ज्ञात कुल आदि कुल आर्य है, 4. कर्म- सुथार, कुम्भार आदि कर्म आर्य हैं, 5. शिल्प आर्य- दर्जी, जिल्दसाज आदि शिल्प आर्य हैं, 6. हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, अर्द्धमागधी आदि भाषा और जिसकी ब्राही लिपी हो वह भाषार्य हैं। 7-8-9- वीतराग मार्ग में ज्ञान एवं श्रद्धा युक्त प्रवृति करने वाले ज्ञान दर्शन वाले ज्ञानार्य दर्शनार्य है। श्रावक साधु ये चारित्रार्य है अथवा पांचों संयत चारित्रार्य है।

समुर्च्छिम मनुष्य 14 प्रकार

1. बड़ी नीत में, 2. पेशाब में, 3. खेल में (कफ में), 4. श्लेष्म में, 5. वमन में, 6. पित्त में, 7. रस्सी में, 8. खून में, 9. वीर्य में, 10. वीर्य के सूखे पुद्गल पुनः गीले होने पर, 11. मृत शरीर में, 12. स्त्री पुरूष संयोग में, 13. नगर नाला गटर में, 14. सर्व मनुष्य संबन्धी अशुचि स्थान स्थानों में। मुनष्य सम्बन्धी इन 14 स्थानों में 12 तो स्वतंत्र मानव शरीर के अशुचि स्थान हैं तेरहवें गटर के बोल में अनेक बोल अशुचि स्थान संग्रहित है। चौदहवें बोल में भी अनेक बोलों स्थानों के संयोगी भंग अर्थात् मिश्रण कहे गये हैं। यहां सभी स्थानों में पसीना, थूक नहीं कहा गया है अतः इन दोनों में सम्मुर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न नहीं होते है।

उत्पत्तिकाल- इन 14 स्थानों में आत्म प्रदेशों से अलग हो जाने पर अंतर्मुहूर्त्त बाद सम्मुर्च्छिम असन्नि मनुष्य उत्पन्न होते है।

अंतर्मुहूर्त्त शब्द का अर्थ विशाल है। व्याख्याकारों ने भी इसका स्पष्टीकरण नही किया है। अतः प्राप्त परपरानुसर उत्कृष्ट अंतर्मुहुर्त्त अर्थात् करीब 47 मिनट का समय माना गया है। 47 मिनट एक अंतिम सीमा समझनी चाहिये उसके बाद 48मिनट होने पर अंतर्मुहूर्त्त नहीं कहा जाता किन्तु मुहुर्त्त हो जाता न्यूनतम समय एक घड़ी 24 मिनट तक जीवोत्पत्ति सम्मुर्च्छिम मनुष्य होना संभव नहीं लगता है। 24 से 47 मिनट के बीच का समय जीवोत्पत्ति का समझना चाहिये। विरह हो जाने की अपेक्षा कभी कहीं कई मुहुर्त्तों तक भी जीवोपत्ति नहीं होती है।

स्वरूप- इन जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना भी अंगुल के असंख्यातवें भाग की होती है। ये चर्म चक्षु से दिखने योग्य नहीं है। उम्र उत्कृष्ट अंतर्मुहुर्त्त (करीब 2 मिनट) की होती है। समय समय में जघन्य 1-2 तथा उत्कृष्ट असंख्य जीव जन्मते रहते है। और मरते रहते हैं। ये सभी अपर्याप्त ही मरते हैं, अपर्याप्त नाम कर्म वाले ही होते हैं। ये पंचेन्द्रिय एवं मनुष्य गतिक कहे गये है।

पशु अशुचि- पशु के अशुचि स्थानों में होने वाले कृमि आदि अन्य जीव तीर्यंच बेइन्द्रिय आदि होते हैं। उन्हें भी सम्मुर्च्छिम कहा जा सकता है परन्तु सम्मुर्च्छिम मनुष्य नहीं कहना चाहिये। वे जीव चर्म चक्षु से दिख सकते हैं।

पशुओं के मलमूत्र आदि अशुचि स्थानों में कालातर से सम्मुर्च्छिम त्रस जीव उत्पन्न होते हैं। किन्तु उक्त सम्मुर्च्छिम मनुष्य नही होते हैं।

गाय आदि का गोबर श्रमण के लिये ग्रहण करके उपचार हेतु उपयाग में लेने का आगम में विधान है अतः उसमें कुछ घंटों तक जीवोत्पति नहीं होती है ऐसा समझ लेना चाहिये।

पशुओं के मृत शरीर में विविध प्रकार के जीवों की उत्पत्ति हो जाती है अत्यन्त दुर्गन्ध भी हो जाती है किन्तु आगम में ये उक्त जीवोत्पत्ति के 14 स्थान मनुष्य सम्बन्धी और सम्मुर्च्छिम मनुष्योत्पत्ति सम्बन्धी कहे। अतः पशुओं के शरीर में तीर्यंच योनिक बेइन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति होना अलग से समझ लेना चाहिये।

साढ़े पच्चीस आर्य देश एवं प्रमुख नगरी

देश नाम	नगरी	देश नाम	नगरी
1.मगध	राजगृही नगर	14. शांडिल्य	नन्दिपुर
2. अंग	चंपानगरी	15. मलय	भद्दिलपुर
3. बंग	ताम्रलिप्ती	16. मत्स्य	वैराट नगर
4. कलिंग	कांचनपुर	17. वरण	अच्छापुरी
5. काशी	वाराणसी नगरी	18. दशार्ण	मृत्तिकावती नगरी
6. कौशल	साकेत नगर	19. चेदि	शुक्तिमति- शौक्तिकावती
7. कुरू	हस्तिनापुर	20. सिंधु-सौवीर	वीतभय नगर
8. कुशावर्त	शौर्यपुर	21. शूरसेन	मथुरानगरी
9. पंचाल	काम्पिल्य नगर	22. भंग	पावापुरी (अपापा)
10. जागल	अहिछत्रा नगरी	23. पुरिवर्त	मासापुरी
11. सौराष्ट	द्वारिका नगरी	24. कुणाल	श्रावस्ति नगरी
12. विदेह	मिथिला नगरी	25. लाढ़	कोटिवर्ष नगर
13. वत्स	कोशांबी	26. केकयार्द्ध	श्वेतांबिका नगरी

इनके अतिरिक्त सैंकड़ों हजारों देश हैं वे क्षेत्र की अपेक्षा अनार्य की कोटि में कहे गये हैं। तथा जाति कुल आदि जो भी आर्य कहे गये हैं उनके अतिरिक्त को अनार्य जाति कुल समझ लेना चाहिये। क्षेत्र, जाति, कुल आदि से अनार्य कहा जाने वाला व्यक्ति भी ज्ञान, दर्शन, चारित्र से अर्थात् धर्माराधन से सच्चा आर्य बन सकता है एवं कहा जा सकता है और आर्य की गति को, एवं मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। अतः क्षेत्र जाति कुल आदि 6 प्रकार के आर्य केवल व्यवहार परिचय की अपेक्षा समझना चाहिये। वास्तव में अंतिम तीन आर्य अवस्था प्राप्त हो जाय तो जीवन सफल है। पूर्व की 6आर्य अवस्था मिल भी गई किन्तु धर्म आराधना नहीं की तो क्षेत्र की आर्यता दुर्गति से नहीं बचा सकती है। अतः कर्म एवं धर्म से आर्य होने का प्रयत्न करना चाहिये।

-दूसरा 'स्थान' पद-

प्रथम पद में जीवों के भेद प्रभेद एवं स्वरूप बताया गया है इस पद में उनके रहने के स्थान का वर्णन किया गया है। रहने के स्थान दो तरह के होते हैं- 1. निवास रूप, 2. गमनागमन रूप। इस पद में निवास को स्वस्थान शब्द से कहा गया है एवं गमनागमन के दो विभाग किये है - 1. उत्पन्न होने के समय का मार्ग और 2. मर कर जाते समय का मार्ग। इसे आगम में इन दो

शब्दों से कहा गया है- 1. उत्पाद (क्षेत्र) स्थान 2. समुद्घात क्षेत्र 1. उत्पन्न होने से मृत्यु पर्यन्त जीव जहां रहता है वह उसका 'स्वस्थान' परिलक्षित है अतः इस शब्द से यहां विवक्षित सभी जीवों के ऐसे उत्पत्ति के और रहने के स्थानों का संग्रह किया गया है। उसके साथ ही यह भी बताया गया है कि वह सम्पूर्ण क्षेत्र, लोक का कौन सा भाग परिमाण में है, 2. 'उत्पाद' शब्द से मृत्यु के बाद उत्पन्न होने के स्थान में पहुंचने तक का जो अंतराल क्षेत्र है उस क्षेत्र का कथन किया गया है, 3. आयु समाप्त होने के अंतर्मुहुर्त पूर्व जो उत्पत्ति स्थान में आत्म प्रदेशों को पहुंचाने रूप मरण समुद्घात की जाती है उस समय आत्म प्रदेश अंतराल में जितना क्षेत्र अवगाहन करते हैं उसे यहां 'समुद्घात' शब्द से कहा गया है। क्वचित अन्य समुद्घात (केवली समुद्घात) की अपेक्षा कथन भी किया गया है।

ये तीनों प्रकार के कथन अपेक्षित भेदों के सभी जीवों के सामुहिक कहे गये हैं अर्थात् सामुहिक जीवों की अपेक्षा ही क्षेत्र कथन किया गया है। अकेले जीव की अपेक्षा यहां वर्णन नहीं किया गया है। यह बात विशेष ध्यान में रखनी चाहिये।

पृथ्वीकाय- नरक देवलोक के पृथ्वी, पिंड, विमान, भवन, नगर, छत, भूमि, भित्ति। तिरछा लोक के क्षेत्र, पृथ्वी, नगर, मकान, द्वीप, समुद्रो की भूमि, पर्वत, कूट, वेदिका, जगती आदि शाश्वत, अशाश्वत पृथ्वी मय स्थलों में, पृथ्वीकाय का स्वस्थान है अर्थात् यहां उत्पन्न होते हैं एवं मृत्युपर्यन्त रहते हैं। बादर के पर्याप्त-अपर्याप्त सभी का यही स्वस्थान जानना। सूक्ष्म सर्व लोक में है।

अपकाय- घनोदधि एवं घनोदधि वलय, पाताल कलश, समुद्र, नदी, कुंड, द्रह, झील, झरना, तालाब, सरोवर, नाला, बावड़ी, पुष्करिणी, कुएं, हौद, खड्डे, खाई आदि अन्य भी छोटे बड़े जल संग्रह के शाश्वत-अशाश्वत स्थलों में बादर अपकाय का स्वस्थान है। सूक्ष्म सर्व लोक में है।

तेऊकाय- ढाई द्वीप में 15 कर्म भूमि क्षेत्र है, वे ही बादर तेऊकाय के स्वस्थान है। व्याघात की अपेक्षा केवल पांच महाविदेह क्षेत्र ही इनके स्वस्थान है। अर्थात् छट्ठा आरा एवं यौगलिक काल में 5. भरत 5 ऐरावत क्षेत्र में अग्नि नहीं रहती है।

लवण समुद्र में वडवानल होने पर अग्निकाय की उत्पत्ति होती है। सूक्ष्म सर्वलोक में है।

वायुकाय- घनवाय, तनुवाय घनवाय वलय, तनुवाय वलय, पाताल कलश, भवन, नरकावास विमान एवं लोक के समस्त आकाशीय पोलार वाले छोटे बड़े स्थान से बादर वायुकाय व स्वस्थान है। सूक्ष्म सर्वलोक में है।

वनस्पतिकाय- तीनों लोक के सभी जलीय स्थानों में एवं तिरछा लोक के जलीय स्थलीय सभी स्थानों में बादर वनस्पतिकाय का स्वस्थान है। सूक्ष्म सर्व लोक में है।

बेइन्द्रियादि- ऊर्ध्व लोक में रहे तिरछे लोक के पर्वतों पर, नीचे लोक में रहे समुद्री जल में और तिरछे लोक के सभी जलीय स्थलीय स्थानों में बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौरेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, तिर्यच का स्वस्थान है।

नरक- सातों नरकों में जो 3000 योजन के पाथडे हैं उनमें 1000 योजन ऊपर 1000 योजन नीचे छोड़ कर बीच में एक हजार योजन की पोलार है उनमें नारकी जीवों के रहने के नरकावास है, वे ही उनके स्वस्थान हैं।

मनुष्य- मनुष्यों के 101 क्षेत्र है वे ही उनके स्वस्थान है।

भवनपति- प्रथम नरक के तीसरे आंतरे में भवनपति के भवनावास है जो समभूमि से 40000 योजन नीचे हैं। यहां असुरकुमार जाति के भवनपति देवों का स्वस्थान है। प्रथम नरक के चौथे आंतरे में नागकुमार जाति के भवन पति देवों का

स्वस्थान हे। पांचवें आंतरे में सुवर्णकुमार जाति के भवनपति देवों का स्वस्थान है। इसी क्रम से 12वें आंतरे में स्तनित कुमार जाति के भवनपति देवों का स्वस्थान है।

व्यंतर– प्रथम नरक पृथ्वी का ऊपरी छत 1000 योजन का है उसकी ऊपरी सतह ही हमारी समभूमि है। इस प्रथम नरक के ऊपरी छत के 1000 योजन में 100 योजन नीचे और 100 योजन ऊपर छोड़ कर बीच में जो 800 योजन का क्षेत्र है, वहां भोमेय नगरावास है, उसमें 16 जाति के व्यंतर देवों का स्वस्थान हैं जृभक देवों का स्वस्थान तिरछा लोक में वैताढ्य पर्वतों की श्रेणी पर है।

ज्योतिषी– तिरछा लोक के समभूमि से ऊपर 790 योजन से लेकर 900 योजन तक का क्षेत्र एवं असंख्य द्वीप समुद्रों में स्थित ज्येतिषियों की राजधानियां एवं द्वीप ज्योतिषी देवों का स्वस्थान है।

वैमानिक– 12 देवलोक, नौ ग्रैवेयक एवं पांच अणुत्तर विमान ये वैमानिक देवों के स्वस्थान है।

चौसठ इन्द्र–

दक्षिण भवन पति के 10 इन्द्र– 1. चमर, 2. धरण, 3. वेणु देव, 4. हरिकांत, 5. अग्निशिख, 6. पूर्णेन्द्र, 7. जलकांत, 8. अमित, 9. वैलम्ब, 10. घोष।

उत्तर भवनति के 10 इन्द्र– 1. बलीन्द्र, 2. भूतानंद, 3. वेणुदाली, 4. हरिस्सह, 5. अग्निमाणव, 6. वशिष्ठ, 7. जलप्रभ, 8. अमित वाहन, 9. प्रभंजन, 10. महाघोष।

व्यन्तर के 16इन्द्र– 1-2, काल, महाकाल, 3-4, सुरूप, प्रतिरूप, 5-6पूर्णभद्र, मणिभद्र, 7-8भीम, महाभीम, 9-10 किण्णर, किंपुरूष, 11-12 सत्पुरूष, महापुरूष, 13-14 अतिकाय, महाकाय, 15-16गीतरति, गीतजश।

आणपन्नी आदि के 16इन्द्र– 1-2 सन्निहित, सामान, 3-4 धाता, विधाता, 5-6ऋषि, ऋषिपाल, 7-8ईश्वर, महेश्वर, 9-10 सुवत्स, विशाल, 11-12 हास, हासरति, 13-14 श्वेत, महाश्वेत, 15-16पतंग, पतंगपति।

ज्योतिषी के 2 इन्द्र– 1. चन्द्र और 2. सूर्य (अपेक्षा से असंख्य इन्द्र है)।

वैमानिक के 10 इन्द्र– 1. शक्र, 2. ईशान, 3. सनत्कुमार, 4. माहेन्द्र, 5. बह्म, 6. लांतक, 7. महाशुक्र, 8. सहस्त्रार, 9. प्राणत, 10. अच्युत। ये कुल 10 + 10 + 16+ 16+ 2 + 10 = 64 इन्द्र।

देवों के आभूषण– वक्षस्थल पर हार, हाथ में कड़े-बाजूबंद, कान में अंगद, कुंडल कर्णपीठ, विचित्र हस्ताभरण, पुष्पमाला, मस्तक पर मुकुट, उत्तम वस्त्र, श्रेष्ठ अनुलेपन, लम्बी वनमाला आदि से सुसज्जित देव दिव्य तेज से दसों दिशाओं को प्रकाशमान करते हैं।

सिद्ध– ऊर्ध्व दिशा में लोकांत में सिद्ध शिला से ऊपर एक कोश के छट्ठे भाग जितने क्षेत्र में ढाई द्वीप प्रमाण विस्तार में सिद्धों का स्वस्थान है। अफुसमाण गति होने से उत्पाद नहीं है और शरीर नहीं होने से कोई समुद्घात नहीं है।

स्वस्थान आदि का संक्षिप्त यंत्र-

जीव		स्वस्थान	उत्पात	समुद्घात
1.	सूक्ष्म का प्रत्येक भेद	सर्व लोक	सर्व लोक	सर्व लोक
2.	बादर वायु पर्याप्त	लोक का घणा असंख्यातवां भाग	लोक का घणा असंख्यातवां भाग	लोक का घणा असंख्यातवा भाग
3.	बादर वायु अपर्याप्त	,, ,,	सर्व लोक	सर्व लोक
4.	बादर वनस्पति पर्याप्त	लोक का असंख्यातवां भाग	,, ,,	,, ,,
5.	बादर वनस्पति अपर्याप्त	,, ,,	सर्व लोक	सर्व लोक
6.	बादर तेउकाय अपर्याप्त	लोक का असंख्यातवा भाग	लोक मन्थान एवं तिरछालोक तट	सर्व लोक
7.	बादर पृथ्वी, पानी दोनों भेद	लोक का असंख्यातवां भाग	लोक का असंख्यातवें भाग	लोक के असख्यातवें भाग
8.	बादर तेउकाय पर्याप्त	,, ,,	,, ,,	,, ,,
9.	विकेलेन्द्रिय पचेन्द्रिय देव नारक	,, ,,	,, ,,	,, ,,
10.	मनुष्य	,, ,,	,, ,,	,, ,,

नोट– लोक मंथान- केवली समुद्घात के दूसरे समय की अवस्था जैसा, इसे यहां प्रस्तुत आगम में दो ऊर्ध्व कपाट कहा है और तिरछा लोक को तट के स्थान पर कहा है। अर्थात् 1900 योजन जाड़ा एक राजू जितना लंबा झालर आकार का तट है एवं ढाई द्वीप जितनी 45 लाख योजन मोटाई की दो भित्ती लोकांत से लोकांत तक पूर्व पश्चिम और उत्तर से दक्षिण है एवं वे दोनों मेरू पर्वत को अवगाहन करते हुए तथा ऊपर नीचे भी लोकांत तक है।

सब जीवों के तीन स्थान-

	जीव	स्वस्थान	उपपात स्थान	समुद्घात स्थान
	पांच स्थावर सूक्ष्म पर्य. अपर्या.	सर्वलोक	सर्वलोक	सर्वलोक
	बादर पृथ्वीकाय पर्याप्ता	अधेलोक-7 नरक पृथ्वी,नरकावास, भवन, नगर, तिर्च्छालोक- पर्वत क्षेत्र द्वीप जगति आदि ऊर्ध्व- देवलोक विमानादि लोक का असंख्यातवां भाग	लोक का असं. भाग	लोक का असंख्यातवां भाग
	बादर पृथ्वीकाय अपर्याप्ता	अधेलोक-7 नरक पृथ्वी,नरकावास, भवन, नगर, तिर्च्छालोक- पर्वत क्षेत्र द्वीप जगति आदि ऊर्ध्व- देवलोक विमानादि लोक का असंख्यातवां भाग	सर्वलोक	सर्वलोक
	बादर अप्काय का पर्याप्ता	अधो.- घनोदधि, घनोदधि वलय, पाताल कलश, भवनों की बावड़ियादि। तिरछा- नदी, कुवां तालाबादि समुद्र, ऊर्ध्व- 12 देव. तक की बावड़ियादि। लोक का सं. भाग	लोक का असंख्यातवां भाग	लोक का असं. भाग
	बादर अप्काय का अपर्याप्ता	अधो.- घनोदधि, घनोदधि वलय, पाताल कलश, भवनों की बावड़ियादि तिरछा- नदी, कुवां तालबादि समुद्र, ऊर्ध्व- 12 देव. तक की बावड़ियादि लोक का सं. भाग	सर्वलोक	सर्वलोक
	बादर अग्निकाय का पर्याप्ता	**निर्व्याघात**-5 महाविदेह क्षेत्र **व्याघात**-10 कर्मभूमि लोक का असं. भाग	लोक का असं.भाग	लोक का असं. भाग
	बादर अग्निकाय का अपर्याप्ता	**निर्व्याघात-5** महाविदेह क्षेत्र **व्याघात-10** कर्मभूमि लोक का असं. भाग	दोऊर्ध्वकपाट तिर्छालोक तट	सर्वलोक
	बादर वायुकाय का पर्याप्ता	लोक का असं. भाग घनवात, तनुवात, घनवात वलय, तनुवात वलय, लोक में सर्व पोलाण वाले भाग	लोक के बहुत असं. भाग	लोक का बहुत असं. भाग
	बादर वायुकाय का अपर्याप्ता	लोक का बहुत असं. भाग	सर्वलोक	सर्वलोक
	बादर वनस्पतिकाय का पर्याप्ता	अप्काय जैसे स्थान	सर्वलोक	सर्वलोक
	बादर वन.काय का अपर्याप्ता	लोक का असंख्यातवां भाग	सर्वलोक	सर्वलोक
	विकलेन्द्रिय और ति.पंचे. का पर्याप्ता अपर्याप्ता	अधोलोकिक ग्राम, कुंवा आदि। तिरछा लोक- जलस्थान, द्वीप, समुद्रादि। ऊर्ध्व- मेरू की बावड़ियादि लोक का असं. भाग	लोक का असंख्यातवां भाग	लोक का असं. भाग
	मनुष्य का पर्या. अपर्याप्त	मध्य लोक के ढ़ाई द्वीप क्षेत्र में, लोक का असंख्यातवां भाग	लोक का असंख्यातवां भाग	सर्वलोक (केवली समुद्घात आसरी)
	नैरयिकों का पर्य. अपर्याप्ता	अधोलोक 7 नरक के 84 लाख नरकावास, लोक का असंख्यातवां भाग	लोक का असंख्यातवां भाग	लोक का असं. भाग
	10 भवनपतिके पर्या. अपर्या.	अधो. प्रथम नरक के 10 अंतरों में 7 करोड़ 72 लाख भवनों में लोक का असं. भाग	लोक का असंख्यातवां भाग	लोक का असं. भाग
	16 व्यं. देव के पर्याप्त अपर्याप्ता	तिर्च्छा रत्नप्रभा के ऊपर के 1000 यो. में से बीच के 800 यो. के पोलाण में असंख्याता नगरावास, लोक का असं. भाग	लोक का असंख्यातवां भाग	लोक का असं. भाग
	ज्योतिषी देव का पर्या. अपर्या.	तिर्च्छे लोक में समभूमि से 790 से 900 यो. ऊपर तक के बीच में 110 यो. में, तिरछा असंख्याता योजन में असंख्य विमान, लोक का असंख्यातवां भाग	लोक का असंख्यातवां भाग	लोक का असं. भाग
	वैमानिक देव. पर्या. अपर्या.	ऊर्ध्वलोक 84 97 023 विमानों में लोक का असंख्यातवां भाग	लोक का असंख्यातवां भाग	लोक का असं. भाग
	सिद्ध भगवान	लोकाग्र- 333 धनुष 32 अंगुल जाड़ाई वाले 45 लाख योजन लम्बा चौड़ा सिद्ध क्षेत्र में	-	-

-तीसरा अल्पबहुत्व पद-

1. दिशा से जीवों की अल्पबहुत्व-

जीव	पूर्व	पश्चिम	उत्तर	दक्षिण
1. जीव	2 विशेषाधिक	1 अल्प (सबसे थोड़ा)	(4 विशेषाधिक)	3 विशेषाधिक
2. पृथ्वीकाय	3 ‘‘ ‘‘	4 विशेषाधिक	2 विशेषाधिक	1 अल्प
3. अपकाय	2 विशेषाधिक	1 अल्प	4 ‘‘ ‘‘	3 विशेषाधिक
4. तेउकाय	2 संख्यातगुणा	3 विशेषाधिक	1 अल्प	1 अल्प
5. वायुकाय	1 अल्प	2 विशेषाधिक	3 विशेषाधिक	4 विशेषाधिक
6. वनस्पतिकाय	2 विशेषाधिक	1 अल्प	4 विशेषाधिक	3 विशेषाधिक
7. बेइनिद्रयादि	2 विशेषाधिक	1 अल्प	4 विशेषाधिक	3 विशेषाधिक
8. सातों नारकी	1 अल्प	1 अल्प	1 अल्प	2 असंख्यात गुणा
9. तिर्यन्चपंचेन्द्रिय	2 विशेषाधिक	1 अल्प	4 विशेषाधिक	3 विशेषाधिक
10. मनुष्य	2 संख्यातगुणा	3 विशेषाधिक	1 अल्प	1 अल्प
11. भवनपति	1 अल्प	1 अल्प	2 असंख्यगुणा	3 असंख्यगुणा
12. वाणव्यंतर	1 अल्प	2 विशेषाधिक	3 विशेषाधिक	4 विशेषाधिक
13. ज्योतिषी	1 अल्प	1 अल्प	4 विशेषाधिक	3 विशेषाधिक
14. देवलोक 1 से 4 तक	1 अल्प	1 अल्प	2 असंख्यगुणा	3 असंख्यात गुणा
15. देवलोक 5 से 8तक	1 अल्प	1 अल्प	1 अल्प	2 असंख्यगुणा
16. शेष देवलोक	लगभग समान		....	....

अल्प बहुत्व	सकायिक	पृथ्वी कायिक	अप्कायिक	तेउकायिक	वायुकायिक	वनस्पति कायिक	त्रस कायिक
पर्याप्ता	14 विशेषाधिक	8 विशेषाधिक	9 विशेषाधिक	7 संख्यात गुणा	10 विशेषाधिक	13 संख्यात गुणा	1 अल्प
अपर्याप्ता	12 विशेषाधिक 15 विशेषाधिक	4 विशेषाधिक	5 विशेषाधिक	3 असंख्यात गुणा	6 विशेषाधिक	11 अनंत गुणा	2 असं. गुणा

2. सूक्ष्म की 11 अल्प बहुत्व

	अल्प बहुत्व	समु. सूक्ष्म	सूक्ष्म पृथ्वी	सूक्ष्म अपकाय	सूक्ष्म तेउकाय	सूक्ष्म वायुकाय	सूक्ष्म वनस्पति	सूक्ष्म निगोद
1	समुच्चय	7 विशेषा.	2 विशेषा.	3 विशेषा.	1 अल्प	4 विशेषा.	6 अनंत गुणा	5 असंख्यात
2	7 का अपर्या.	7 विशेषा.	2 विशे.	3 विशेषा.	1 अल्प	4 विशेषा.	6 अनंत गुणा	5 असंख्यात
3	पर्याप्ता	7 विशेषा.	2 विशे.	3 विशेषा.	1 अल्प	4 विशेषा.	6 अनंत गुणा	5 असंख्यात
4 से 10 4 से 10	अपर्याप्त पर्याप्ता	1 अल्प 2 संख्यात.	1 अल्प 2 संख्यात.	1 अल्प 2 संख्यात.	1 अल्प 2 संख्यात.	1 अल्प 2 संख्यात.	1 अल्प 2 संख्यात.	1 अल्प 2 संख्यात.
11 11	अपर्याप्ता पर्याप्ता	12 विशेषा. 14 विशेषा. 15 विशेषा.	2 विशेषा. 6 विशेषा.	3 विशेषा. 7 विशेषा.	1 अल्प 5 संख्यात.	4 विशेषा. 8 विशेषा.	11 अनंत गुणा 13 संख्यात.	9 असंख्यात. 10 संख्यात.

	अल्प बहुत्व	समु. बादर	बा. पृथ्वी.	बा.अ.प्का.	बा. तेउ.	बा. वायु.	बा.वन.	बा.प्र.वन.	बा.निगोद	बा.त्रस.
1	समुच्चय	9 विशेषा.	5 असं.	6 असंख्य	2 असं.	7 असं.	8 अनंत	3 असं.	4 असं.	1 अल्प
2	9 की अपर्या.	9 विशेषा.	5 असं.	6 असंख्य	2 असं.	7 असं.	8 अनंत	3 असं.	4 असं.	1 अल्प
3	9 की पर्याप्त	9 विशेषा.	5 असं.	6 असंख्य	1 अल्प	7 असं.	8 अनंत	3 असं.	4 असंख्य	2 असं.
4 से 12	अपर्याप्त	2 असंख्य	2 असं.	2 असंख्य	2 असं.	2 असं.	2 असं.	2 असं.	2 असं.	2 असं.
4 से 12	पर्याप्त	1 अल्प	1 अल्प	1 अल्प	1 अल्प	1 अल्प	1 अल्प	1 अल्प	1 अल्प	1 अल्प
13	अपर्याप्त	18 विशेषा.	12 असं.	13 असंख्य	9 असं.	14 असं.	17 असं.	10 असं.	11 असं.	3 असं.
13	पर्याप्त	16 विशेषा. 19 विशेषा.	6 असं.	7 असंख्य	1 अल्प	8 असं.	15 अनंत	4 असं.	5 असं.	2 असं.

4. सूक्ष्म बादर की सम्मिलित 11-11 अल्प बहुत्व-

1.	अल्प बहुत्व	समुच्चय	पृथ्वीकाय	अपकाय	तेउकाय	वायुकाय	वनस्पति.	प्र.श.वन.	निगोद	त्रसकाय
	सूक्ष्म	16 विशेषा.	9 विशेषा.	10 विशेष.	8 असं.	11 विशेषा.	15 असं.	-	12 असं.	-
	बादर	14 विशेषा.	5 असं.	6 असं.	2 असं.	7 असं.	13 अनंत	3 असं.	4 असं.	1 अल्प
2.	16 की अप. उपरोक्त अनुसार समझें									
3.	16 की पर्याप्त बादर तेजस्काय सबसे अल्प पर्याप्त और बादर त्रसकाय के पर्याप्त 2 असंख्यात गुणा, शेष वर्णन 3 से 16 बोल की तरह ही है।									
4 से 10.	अल्प बहुत्व	सू. अपर्याप्ता	सूक्ष्म पर्याप्ता	बा. अपर्याप्ता	बादर पर्याप्ता					
4.	समुच्चय	3 असंख्य	4 संख्याता	2 असंख्य	1 अल्प					
5.	पृथ्वीकाय	3 असंख्य	4 संख्याता	2 असंख्य	1 अल्प					
6.	अप्काय	3 असंख्य	4 संख्याता	2 असंख्य	1 अल्प					
7.	तैजस्काय	3 असंख्य	4 संख्याता	2 असंख्य	1 अल्प					
8.	वायुकाय	3 असंख्य	4 संख्याता	2 असंख्य	1 अल्प					
9.	वनस्पतिकाय	3 असंख्य	4 संख्याता	2 असंख्य	1 अल्प					
10.	निगोद	3 असंख्य	4 संख्याता	2 असंख्य	1 अल्प					

11.पहली अल्प बहुत्व के 16 तथा समुच्चय सूक्ष्म, बादर के 34 बोलों की अल्प बहुत्व-

अल्प बहुत्व	समुच्चय	पृथ्वीकाय	अप्काय	तेउकाय	वायुकाय	वनस्पति.	प्र.श.वन.	निगोद	त्रसकाय
सूक्ष्म अपर्या.	31 विशेषा.	16 विशेषा.	17 विशेषा.	15 असं.	18 विशेषा.	30 असं.	-	23 असं.	-
सूक्ष्म पर्या.	33 विशेषा.	20 विशेषा.	21 विशेषा.	19 सं.	22 विशेषा.	32 सं.	-	24 सं.	-
बादर अपर्या.	28 विशेषा.	12 असं.	13 असं.	9 असं.	14 असं.	17 असं.	10 असंख्य	11 असं.	3 असं.
बादर पर्याप्ता	26 विशेषा.	6 असं.	7 असं.	1 अल्प	8 असं.	25 अनंत	4 असंख्य	5 असं.	2 असं.
बादर	29 विशेषा.	-	-	-	-	-	-	-	-
सूक्ष्म	34 विशेषा.	-	-	-	-	-	-	-	-

विशेष– 1. पश्चिम दिशा में समुद्रों में सूर्य चन्द्र के द्वीप है एवं गौतम द्वीप है, जिससे जल कम है, अतः जीव अल्प हैं। उससे पूर्व में अधिक हैं गौतम द्वीप नहीं होने से। उससे दक्षिण में जीव अधिक हे चन्द्र सूर्य के द्वीप नहीं होने से। उससे उत्तर जीव अधिक हैं मानस सरोवर हैं। वनस्पति काय, विकेलेन्द्रिय आदि में भी यही कारण हैं।

2. भवनपतियों के भवन अधिक होने से दक्षिण में पृथ्वीकाय कम है उससे पश्चिम में भवन कम है अतः पृथ्वी अधिक है (भवनों में पोलार होती है) । उससे पूर्व में अधिक है चन्द्र सूर्य के द्वीप होने से। उससे पश्चिम में अधिक है गौतम द्वीप होने से।

3. तेउकाय उत्तर दक्षिण में कम है भरत एरावत क्षेत्र छोटे हैं। उससे पूर्व में संख्यातगुणे बड़े क्षेत्र महाविदेह होने से अधिक हैं। पश्चिम में जंबूद्वीप का महाविदेह क्षेत्र बड़ा है, सलिलावती एवं वप्रा विजय अधोलोक में होने से, अतः तेउकाय अधिक हैं।

4. वायुकाय पूर्व में कम है क्योकि चन्द्र सूर्य द्वीप है पोलार कम है, पश्चिम की अपेक्षा पूर्व महाविदेह ठोस सम हैं। उससे पश्चिम में वायु अधिक है, पश्चिम महाविदेह नीचालोक में गया है, पोलार अधिक हैं। उससे उत्तर में अधिक है भवनों की पोलार अधिक हैं। उससे दक्षिण में अधिक, भवन ज्यादा हैं।

5. पश्चिम महाविदेह के कारण ही मनुष्य एवं व्यंतर पश्चिम में विशेषाधिक हैं।

6. ज्योतिषी दक्षिण से उत्तर में अधिक है क्योंकि मानस सरोवर से बहुत से जीव निदान करके ज्योतिषी बनते है एवं वहां ज्योतिषी देवों के क्रीडा स्थल बहुत हैं।

7. सातवीं नरक के दक्षिण नैरयिकों से छट्ठी के पूर्वादि तीन दिशा के नैरयिक असंख्य गुणे है, उससे छट्ठी के दक्षिण वाले असंख्यगुणे है, उससे पांचवी नरक के पूर्वादि दिशा के नैरयिक असंख्य गुणे है, उससे पांचवी के दक्षिण वाले असंख्य गुणे है, यों क्रम से प्रथम नरक तक असंख्यगुणे हैं।

2. लेश्या– 1. सबसे थोड़े शुक्ललेशी, 2. पद्मलेशी संख्यातगुणा, 3. तेजोलेशी संख्यातगुणा, 4. अलेशी अंनतगुणा, 5. कापोत लेशी अंनतगुणा, 6. नीललेशी विशेषाधिक, 7. कृष्णलेशी विशेषाधिक 8. सलेशी विशेषाधिक।

3. षटद्रव्य– 1. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय द्रव्य से तीनों तुल्य सबसे कम है, अल्प है 2. धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय के प्रदेश आपस में तुल्य असंख्यगुणा, 3. जीवास्तिकाय द्रव्य अनंतगुणा, 4. जीवास्तिकाय प्रदेश असंख्यगुणा, 5. पुद्गलास्तिकाय द्रव्य अंनतगुणा, 6. इन्हीं के प्रदेश अंसख्यगुणा, 7. अद्धासमय अप्रदेशार्थ अंनतगुणा, 8. आकाशास्तिकाय प्रदेश अंनतगुणा।

1. सबसे थोड़ा जीव, 2. पुद्गल अंनत गुणा, 3. अद्धासमय अंनत गुणा, 4. सर्व द्रव्य विशेषाधिक, 5. सर्व प्रदेश अनंतगुणा, 6. सर्व पर्याय अंनत गुणे हैं।

4. आयुष्य कर्म बंधक आदि 14 बोल–

1. सबसे थोड़े आयु के बंधक,
2. अपर्याप्त असंख्यगुणा,
3. सुप्त जीव संख्यात गुणा,
4. समुद्घात वाले संख्यातगुणा,
5. साता वेदक संख्यातगुणा,
6. इन्द्रियोपयुक्त संख्यातगुणा,
7. अनाकारोपयुक्त संख्यातगुणा,
8. साकारोपयुक्त संख्यातगुणा,
9. नो इन्द्रियोपयुक्त विशेषाधिक,
10. असाता वेदक विशेषाधिक,
11. समुद्घात रहित विशेषाधिक,
12. जागृत विशेषाधिक,
13. पर्याप्त जीव विशेषाधिक,
14. आयु के अबंधक जीव विशेषाधिक।

5. क्षेत्र लोक में जीवों की अल्प बहुत्व-

जीव	ऊर्ध्वलोक	अधोलोक	तिरियलोक	ऊर्ध्वलोक तिरियलोक	अधोलोक तिरियलोक	तीन लोक
1. समुच्चय	5 अस. तीर्यंच एकेन्द्रिय	6 विशे. 5 स्थावर	3 अस.	1 अल्प,	2 विशे.	4 अस.
2. तीन	1 अल्प विकलेंद्रिय	5 संख्य.	6अस.	2 अस.	4 अस.	3 अस.
3. समुच्चय	4 संख्य. पंचेनद्रिय	5 स.	6अस.	2 सं.	3 सं.	1 अल्प.
4. त्रस	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘
5. तीर्यंचणी	1 अल्प	5 सं.	6 सं.	4 सं.	2 असं.	3 सं.
6. मनुष्य	4 सं.	5 सं.	6 सं.	2 असं.	3 सं.	1 अल्प
7. मनुष्यणी	4 सं.	5 सं.	6 सं.	2 सं.	3 सं.	1 अल्प
8. नारकी	......	3 असं.	....	....	2 असं.	1 अल्प
9. देव-देवी	1 अल्प	5 सं.	6 सं.	2 असं.	4 सं.	3 सं.
10. भवनपति	1 अल्प	6असं.	5 असं.	2 असं.	4 असं.	3 सं.
11. वाणव्यंतर	1 अल्प	5 सं.	6असं.	2 असं.	4 असं.	3 सं.
12. ज्योतिषी	1 अल्प	5 सं.	6असं.	2 असं.	4 असं.	3 सं.
13. वैमानिक	6असं.	4 सं.	5 सं.	1 अल्प	3 सं.	2 सं.

1. लोक क्षेत्र के छः प्रकार किये गये है- 1. ऊर्ध्वलोक में रहे हुए जीव, 2. अधोलोक में रहे हुए जीव, 3. तिरछे लोक में रहे हुए जीव, 4. तिरछे लोक की ऊपरी अंतिम एक प्रदेशी प्रतर एवं ऊर्ध्वलोक की प्रारंभिक नीचे की एक प्रदेशी प्रतर, ये दोनों मिलकर ऊर्ध्वलोक तिरियलोक क्षेत्र हैं। 5. इसी प्रकार अधोलोक और तिरछे लोक के पास-पास के एक-एक प्रदेशी दोनों प्रतर मिलकर ‘अधोलोक तिरियलोक‘ क्षेत्र है, 6. ऊर्ध्वलोक अधोलोक के कुछ प्रतर एवं तिरछे लोक के सभी प्रतर मिल कर जो क्षेत्रावगाह बनता है वह तीन लोक क्षेत्र कहा गया हैं।

2. तीन लोक में अवगाहन करने वाले दो प्रकार के जीव होते है- 1. वाटे वहेता जन्म स्थान में पहुचने के पूर्व मार्गगामी जीव, 2. मारणांतिक समुद्घात अवस्था में समवहत जीव। ये कई जीव तीन लोक का स्पर्श अवगाहन करते हैं। शेष पांच क्षेत्र के प्रकारों में स्वस्थान उत्पात समुद्घात तीनों प्रकार के जीव होते हैं।

3. तिरछा लोक समभूमि से 900 योजन नीचे 900 योजन ऊपर कुल 1800 योजन का जाड़ा और चौतरफ लोकांत तक लम्बा चौड़ा हैं। शेष नीचे लोकांत तक अधोलोक और ऊपर लोकांत तक ऊर्ध्व लोक है।

ऊर्ध्व लोक क्षेत्र कुछ कम है और अधोलोक क्षेत्र कुछ अधिक हैं। क्योंकि ऊपर नीचे की अपेक्षा लोकमध्य सम भूमि पर न होकर समभूमि से नीचे अधोलोक में हैं। वहां से दोनों तरफ (ऊपर नीचे) 7-7 राजू प्रमाण लोक है अतः नीचा लोक साधिक सात राजू है और ऊर्ध्व लोक देशोन सात राजू हैं।

4. अधोलोक में समुद्री जल 100 योजन गहरा है और तिरछा लोक में 900 योजन हैं। ऊर्ध्वलोक में भी कई पर्वतीय क्षेत्र और उन पर बावड़िया है उनमें जलचर पंचेन्द्रिय एवं विकलेन्द्रिय जीव होते हैं। वहां से पंचेन्द्रिय जीवन नरक में भी उत्पन्न होते हैं।

5. सोमनस वन आदि ऊर्ध्वलोक में हैं। वही विद्याधर युगल क्रीडार्थ जाते रहते हैं। जिससे ऊर्ध्व लोक में मनुष्य मनुष्यणियां पायी जाती हैं।

6. समुर्च्छिम मनुष्य भी मनुष्य के साथ पाया जाता है एवं वाटे वहेता और समवहत मनुष्य भी पाया जाता हैं अतः मनुष्य में असंख्य गुणा कहा गया हैं।

7. वैमानिक देवों से व्यंतरादि के समवहत और वाटे वहेता देव भी असंख्य गुणे होते हैं।

-महादण्डक-

6. 98 बोलों की अल्पाबहुत्व-

1. सबसे थोड़ा गर्भज मनुष्य,	2. मनुष्यणी संख्यातगुणी,
3. बादर तेउकाय के पर्याप्त असंख्यातगुणा,	4. अणुत्तर विमान के देव असंख्यगुणा,
5. उपरि ग्रेवेयक त्रिक के देव संख्यातगुणा,	6. मध्यम त्रिक के देव संख्यातगुणा,
7. नीचे की त्रिक के देव संख्यातगुणा,	8. बारहवें देवलोक के देव संख्यातगुणा,
9. ग्यारहवें देवलोक के देव संख्यातगुणा,	10. दसवें देवलोक के देव संख्यातगुणा,
11. नवमें देवलोक के देव संख्यातगुणा,	12. सातवीं नरक के नारकी असंख्यगुणा,
13. छट्ठी नरक के नारकी असंख्यगुणा,	14. आठवें देवलोक के देव असंख्यगुणा,
15. सातवें देवलोक के देव असंख्यगुणा,	16. पांचवीं नरक के नैरयिक असंख्यगुणा,
17. छट्ठें देवलोक के देव असंख्यगुणा,	18. चौथी नरक के नैरयिक असंख्यगुणा,
19. पांचवें देवलोक के देव संख्यगुणा,	20. तीसरी नरक के नैरयिक असंख्यगुणा,
21. चौथे देवलोक के देव असंख्यगुणा,	22. तीसरे देवलोक के देव असंख्यगुणा,
23.दूसरी नरक के नैरयिक असखयगुणा,	24. सम्मूर्च्छिम मनुष्य असंख्यगुणा,
25. दूसरे देवलोक के देव असंख्यगुणा,	26. दूसरे देवलोक की देवियां संख्यातगुणी,
27. पहले देवलोक के देव संख्यातगुणा,	28. पहले देवलोक की देवियां संख्यातगुणी,
29. भवनपति देव असंख्यगुणे,	30. भवनपति देवियां संख्यातगुणी,
31. पहली नरक के नैरयिक असंख्यगुणे,	32. खेचर तीर्यंच पुरूष असंख्यगुणा,
33. खेचर तीर्यंचणी संख्यगुणे,	34. स्थलचर तीर्यंच पुरूष संख्यगुणा,
35. स्थलचर तीर्यंचणी संख्यगुणी,	36. जलचर तीर्यंच पुरूष संख्यगुणा,
37. जलचर तीर्यंचणी संख्यगुणी,	38. वाणव्यंतर देव संख्यातगुणे,
39. वाणव्यंतर देवियां संख्यात गुणी,	40. ज्योतिषी देव संख्यातगुणे,
41. ज्योतिषी देवियां संख्यात गुणी,	42. खेचर सन्नी नपुसंक संख्यातगुणा,
43. स्थलचर सन्नी नपुसंक संख्यातगुणा,	44. जलचर सन्नी नपुसंक संख्यातगुणा,
45. चौरेन्द्रिय के पर्याप्त संख्यातगुणा,	46. पंचेन्द्रिय के पर्याप्त विशेषाधिक,

47. बेइेन्द्रिय के पर्याप्त विशेषाधिक,	48. तेइेन्द्रिय के पर्याप्त विशेषाधिक,
49. पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त असंख्यगुणा,	50. चोरेन्द्रिय के अपर्याप्त विशेषाधिक,
51. तेइन्द्रिय के अपर्याप्त विशेषाधिक,	52. बेइन्द्रिय के अपर्याप्त विशेषाधिक,
53. प्रत्येक शरीर वनस्पति पर्याप्त असंख्यगुणा,	54. बादर निगोद के पर्याप्त असंख्यगुणा,
55. बादर पृथ्वीकाय के पर्याप्त असंख्यगुणा,	56. बादर अपकाय के पर्याप्त असंख्यगुणा,
57. बादर वायकाय के पर्याप्त असंख्यगुणा,	58. बादर तेउकाय के अपर्याप्त असंख्यगुणा,
59. प्रत्येक शरीर वनस्पति अपर्याप्त असंख्यगुणा,	60. बादर निगोद के अपर्याप्त असंख्यगुणा,
61. बादर पृथ्वीकाय के अपर्याप्त असंख्यगुणा,	62. बादर अपकाय के अपर्याप्त असंख्यगुणा,
63. बादर वायुकाय के अपर्याप्त असंख्यगुणा,	64. सूक्ष्म तेउकाय के अपर्याप्त असंख्यगुणा,
65. सूक्ष्म पृथ्वीकाय के अपर्याप्त विशेषाधिक,	66. सूक्ष्म अपकाय के अपर्याप्त विशेषाधिक,
67. सूक्ष्म वायुकाय के अपर्याप्त विशेषाधिक,	68. सूक्ष्म तेउकाय के पर्याप्त संख्यातगुणा,
69. सूक्ष्म पृथ्वीकाय के पर्याप्त विशेषाधिक,	70. सूक्ष्म अपकाय के पर्याप्त विशेषाधिक,
71. सूक्ष्म वायुकाय के पर्याप्त विशेषाधिक,	72. सूक्ष्म निगोद के अपर्याप्त असंख्यगुणा,
73. सूक्ष्म निगोद पर्याप्त संख्यात गुणा,	74. अभवी अनंत गुणा,
75. पडिवाई सम्यग्दृष्टि अनंतगुणा,	76. सिद्ध अनंत गुणा,
77. बादर वनस्पति के पर्याप्त अनंतगुणा,	78. बादर के पर्याप्त विशेषाधिक,
79. बादर वनस्पति के अपर्याप्त असंख्यगुणा,	80. बादर के अपर्याप्त विशेषाधिक,
81. बादर विशेषाधिक,	82. सूक्ष्म वनस्पति के अपर्याप्त असंख्यगुणा,
83. सूक्ष्म के अपर्याप्त विशेषाधिक,	84. सूक्ष्म वनस्पति के पर्याप्त संख्यातगुणा,
85. सूक्ष्म के पर्याप्त विशेषाधिक,	86. सूक्ष्म विशेषाधिक,
87. भवी जीव विशेषाधिक,	88. निगोद के जीव विशेषाधिक,
89. वनस्पति जीव विशेषाधिक,	90. एकेन्द्रिय जीव विशेषाधिक,
91. तीर्यंच जीव विशेषाधिक,	92. मिथ्यादृष्टि जीव विशेषाधिक,
93. अविरत जीव विशेषाधिक,	94. सकषायी जीव विशेषाधिक,
95. छद्मस्थ जीव विशेषाधिक,	96. सयोगी जीव विशेषाधिक,
97. संसारी जीव विशेषाधिक,	98. सर्व जीव विशेषाधिक,

विशेष- 1 मनुष्य से मनुष्यणी उत्कृष्ट 27 गुणी 27 अधिक है, देव से देवी उत्कृष्ट 32 गुणी 32 अधिक है एवं सन्नी तिर्यंच से तीर्यंचणी 3 गुणी 3 अधिक हैं।

2. भवनपति देव, नारकी से कम है किन्तु व्यंतर ज्योतिषी नारकी से अधिक हैं। अतः नरक से देव अधिक हैं।

3. सन्नी तीर्यंच पुरूष एवं स्त्री से व्यंतर ज्योतिषी देव अधिक है किन्तु सन्नी तीर्यंच नपुसंक के जीव देवों से अधिक हैं अतः देव से समुच्चय सन्नी तीर्यंच अधिक है तभी देव का अंतिम बोल 41 वां है और सन्नी तीर्यंच नपुसंक का अंतिम बोल 44 वां हैं।

4. सम्मूर्च्छिम मनुष्य को छोड़कर 44 बोल तक सभी बोल सन्नी के ही हैं। 45 वें बोल से असन्नी जीव हैं। 46और 49 में असन्नि तीर्यंच पंचेन्द्रिय एवं सन्नी तीर्यंच पंचेन्द्रिय दोनों का समावेश हैं।

5. बादर में अपर्याप्त असंख्यातगुणा अधिक होता है और सूक्ष्म में पर्याप्त संख्यातगुणा अधिक होता हैं।

6. 54, 60, 72, 73 इन चार बोलो में निगोद शरीर अपेक्षित है जीव नही। 88वें बोल में निगोद के जीव अपेक्षित हैं। अर्थात् 88बोलों में 84 बोल जीव के और 4 बोल शरीर के अपेक्षित हैं।

7. बादर तेउकाय के पर्याप्त बहुत कम होते है उसका बोल तीसरा ही है तो अपर्याप्त का बोल 58वां हैं।

8. अनंत का बोल 74 से प्रारंभ होता है अर्थात 73 बोल तक 72 बोल असंख्य के हैं। अभवी चौथे अनंते जितने हैं। पड़िवाई समदृष्टि और सिद्ध पांचवें अनंत जितने हैं। भवी आठवें अनंत में हैं। सर्व जीव भी आठवें अनंत में हैं।

9. 24, 95, 97 बोल अशाश्वत हैं। वे क्रमशः समुच्छिम मनुष्य, 12 वें गुणस्थान, 14 वें गुणस्थान से सम्बन्धित हैं। ये दोनों गुणस्थान भी अशाश्वत हैं। अर्थात् जब 12 वें गुण स्थान में कोई जीव नहीं होता तो 95 वां बोल नहीं बनता और जब 14 वें गुणस्थान में कोई जीव नहीं होता तो 97 वां बोल नहीं बनता हैं।

अल्पाबहुत्व पर अनुप्रेक्षा- संसार में सबसे अल्प मनुष्यों की संख्या है इतनी लम्बी सूची में मनुष्य का स्थान सर्वप्रथम हैं। इसी कारण आगम में मनुष्य भव दुर्लभ कहे गये हैं।

नरक में नीचे नीचे जीवों की संख्या कम है तो देवों में ऊपर ऊपर जीवों की संख्या कम है सातवीं नरक में जीव सब नरकों से कम है तो अणुत्तर देव भी सब देवों से बहुत कम है अर्थात लोक में अत्यंत पुण्यशाली जीव कम होते है तो अत्यंत पापी जीव भी कम ही होते हैं।

इन्द्रियां कम होती है वहां जीव ज्यादा होते है अर्थात् पंचेन्द्रिय से चौरेन्द्रिय अधिक हैं एकेन्द्रिय सर्वाधिक है अर्थात् विकास प्राप्त जीव कम होते हैं।

52 बोल तक त्रस जीवों की अल्पाबहुत्व है केवल तीसरा बोल स्थावर का हैं।

53 से 86बोल तक स्थावर जीवों की अल्पाबहुत्व है 74, 75, 76बोल को छोड़कर 38से 44 तक के बोल संख्यात गुणे हैं। वे अत्यधिक संख्यात गुणे है अतः एकाधिक बोल मिलने से असंख्यगुणे बन जाते है यथा- तीर्यंचणी 37 वां बोल से देवी (41 वां बोल) असंख्यगुणी हैं। देव से (40-41 वें बोल से) सन्नी तीर्यंच (44 वां बोल असंख्य गुणे हैं।)

नोट- इस लम्बी अल्प बहुत्व में अनेक छुटकर अल्पाबहुत्वों का समावेश हो जाता है और कई अल्पाबहुत्व जीवाभिगम सूत्र में एवं इस सूत्र में एक सरीखी है अतः एक जगह देने का ही ध्यान रखा गया हैं।

-चौथा 'स्थिति' पद-

यहां 24 दण्डक के क्रम से जीवों के सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त, देव, देवी तथा अन्य भेद प्रभेद करके भव स्थिति-उम्र का निरूपण किया गया हैं। सर्वत्र अपर्याप्तों की स्थिति जघन्य उत्कृष्ट अंतमुर्हुर्त्त की हैं। पर्याप्तों की उत्कृष्ट स्थिति समुच्चय स्थिति से अंतर्मुहुर्त्त कम होती हैं।

समुच्चय की और पर्याप्तों की जघन्य स्थिति अंतर्मुहुर्त्त की होती है किन्तु नारकी देवता में समुच्चय जघन्य स्थिति 10000 वर्ष आदि की होती है एवं पर्याप्त की जघन्य 10000 वर्ष आदि में अंतर्मुहुर्त्त कम की होती हैं। यथा पहली नारकी में पर्याप्त की जघन्य स्थिति अंतर्मुहुर्त्त कम 10000 वर्ष उत्कृष्ट अन्तर्मुहुर्त कम एक सागरोपम है सातवीं नरक में पर्याप्त की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहुर्त कम 22 सागरोपम और उत्कृष्ट अंतमुर्हुर्त्त कम 33 सागरोपम की है । पांच स्थावर, तीन विकेलेन्द्रिय,

तीर्यंच पंचेन्द्रिय एवं मनुष्य इन 10 औदारिक दंडको की स्थिति का वर्णन प्रायः जीवाभिगम सूत्र में कर दिया गया हें। सात नरक, 10 भवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी एवं वैमानिक इन 14 दडंको की स्थितियां इस प्रकार हैं-

नारकी और देवों की स्थिति-

नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति
1. पहली नरक	10000 वर्ष	1 सागरोपम
2. दूसरी नरक	1 सागरोपम	3 सागरोपम
3. तीसरी नरक	3 सागरोपम	7 सागरोपम
4.चौथी नरक	7 सागरोपम	10 सागरोपम
5. पांचवी नरक	10 सागरोपम	17 सागरोपम
6. छट्ठी नरक	17 सागरोपम	22 सागरोपम
7.सातवीं नरक	22 सागरोपम	33 सागरोपम
8. दक्षिण दिशा के असुरकुमार देव	10000 वर्ष	1 सागरोपम
9. दक्षिण दिशा की असुरकुमार देवी	10000 वर्ष	साढे तीन पल्योपम
10.उत्तर दिशा के असुरकुमार देव	10000 वर्ष	1 सागरोपम साधिक
11. उत्तर दिशा की असुरकुमार देवी	10000 वर्ष	साढे चार पल्योपम
12. दक्षिण दिशा के नागकुमारादि देव	10000 वर्ष	डेढ पल्योपम
13. दक्षिण दिशा की नागकुमारादि देवी	10000 वर्ष	पौन पल्योपम
14. उत्तर दिशा के नागकुमारादि देव	10000 वर्ष	देशोन दो पल्योपम
15. उत्तर दिशा की नागकुमारादि देवी	10000 वर्ष	देशोन एक पल्योपम
16. वाणव्यंतर देव	10000 वर्ष	1 पल्योपम
17. वाणव्यंतर देवी	10000 वर्ष	आधा पल्योपम
18. चन्द्र देव	पाव पल्योपम	1 पल 1 लाख वर्ष
19. चन्द्र देवी	पाव पल्योपम	आधा पल 50000 वर्ष
20. सूर्य देव	पाव पल्योपम	1 पल 1000 वर्ष
21. सूर्य देवी	पाव पल्योपम	आधा पल 500 वर्ष
22. ग्रह देव	पाव पल्योपम	एक पल्योपम
23. ग्रह देवी	पाव पल्योपम	आधा पल्योपम
24. नक्षत्र देव	पाव पल्योपम	आधा पल्योपम
25. नक्षत्र देवी	पाव पल्योपम	पाव पल साधिक
26. तारा देव	पल का आठवां भाग	पाव पल्योपम

नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति
27. तारा देवी	पल का आठवां भाग	पल का 8वां भाग साधिक
28. पहला देवलोक देव	1 पल्योपम	2 सागरोपम
29. अपरिग्रहिता देवी	1 पल्योपम	50 पल्योपम
30. परिग्रहिता देवी	1 पल्योपम	7 पल्योपम
31. दूसरा देवलोक देव	1 पल्योपम साधिक	2 सागरोपम साधिक
32. अपरिग्रहिता देवी	1 पल्योपम साधिक	55 पल्योपम
33. परिग्रहिता देवी	1 पल्योपम साधिक	9 पल्योपम
34. तीसरा देवलोक	दो सागरोपम	7 सागरोपम
35. चौथा देवलोक	दो सागरोपम साधिक	7 सागरोपम साधिक
36. पांचवा देवलोक	7 सागरोपम	10 सागरोपम
37. छट्ठा देवलोक	10 सागरोपम	14 सागरोपम
38. सातवां देवलोक	14 सागरोपम	17 सागरोपम
39. आठवां देवलोक	17 सागरोपम	18सागरोपम
40. नवमा देवलोक	18सागरोपम	19 सागरोपम
41. दसवां देवलोक	19 सागरोपम	20 सागरोपम
42. ग्यारहवां देवलोक	20 सागरोपम	21 सागरोपम
43. बारहवां देवलोक	21 सागरोपम	22 सागरोपम
44. प्रथम ग्रैवेयक	22 सागरोपम	23 सागरोपम
45. दूसरी ग्रैवेयक	23 सागरोपम	24 सागरोपम
46. तीसरी ग्रैवेयक	24 सागरोपम	25 सागरोपम
47. चौथी ग्रैवेयक	25 सागरोपम	26सागरोपम
48. पांचवी ग्रैवेयक	26सागरोपम	27 सागरोपम
49. छट्ठी ग्रैवेयक	27 सागरोपम	28सागरोपम
50. सातवीं ग्रैवेयक	28सागरोपम	29 सागरोपम
51. आठवीं ग्रैवेयक	29 सागरोपम	30 सागरोपम
52. नवमी ग्रैवेयक	30 सागरोपम	31 सागरोपम
53. चार अणुत्तर विमान	31 सागरोपम	33 सागरोपम
54. सर्वार्थं सिद्ध विमान	33 सागरोपम	33 सागरोपम

-पांचवां 'पर्याय' (पज्जवा) पद-

विषय का प्रारंभिक परिचय- पर्याय जीव की भी होती हैं और अजीव की भी होती हैं। समुच्चय जीव की अपेक्षा पर्याये चार गति के जीव एवं सिद्ध की कही है। चार गति में नारकी आदि की पर्यायें उनकी अवगाहना, स्थिति, वर्णादि एवं ज्ञानादि हैं।

इसी प्रकार समुच्चय रूपी अजीव की पर्याय परमाणु से लेकर अनंत प्रदेशी स्कंध हैं। परमाणु आदि की पर्याय उनके प्रदेश, अवगाहना, स्थिति, वर्णादि है।

नारकी नारकी में आपस में अवगाहना आदि पर्यायों में अंतर होता हैं। उसे तुलना करके विचारणा करने पर उनके सही पर्यायों का ज्ञान होता हैं। उसी प्रकार अजीव में भी परमाणु परमाणु में या स्कंध स्कंध में परस्पर पर्यायों के अंतर का विचार किया जा सकता हैं।

यहां पहले जीव के पर्यायों की विचारणा की गई है, फिर अजीव के पर्यायों की। यह सब विचारणा पूरे दंडक या जीव के भेद की अपेक्षा पूछी गई हैं। उसे समझने के लिये विवक्षित अनेक जीवों को प्रमुख करके उनमें तुलनात्मक तरीके से कथन किया गया है अर्थात् जघन्य अवगाहना के नैरयिक जघन्य अवगाहना के नैरयिक से स्थिति चौठाण वड़िया है यहां जघन्य अवगाहना के समस्त नैरयिक विवक्षित है न कि केवल दो नैरयिक। यदि केवल दो ही नेरयिक की विवक्षा हो तो चौठाण वड़िया, छठाण वड़िया नहीं बनता है केवल 'एक ठाण वड़िया' ही बनता। अतः जीव अजीव की इस पद की समस्त पृच्छाओं में विवक्षित सामान्य पृच्छा है, व्यक्तिगत पृच्छा नहीं हैं।

1. समुच्चय जीव की पर्याय अनंत हैं। क्योंकि तेवीस दंडक के जीव असंख्य हैं। वनस्पति और सिद्ध जीव अनंत हैं। अतः कुल मिलाकर जीव के अंनत विकल्प, भेद, अवस्था होती है अतः जीव के अनंत पर्याय हैं।

2. नारकी के भी अंनत पर्याय है-क्योकि नारकी नारकी में भी अंनत गुणा पर्यायों का अंतर हो सकता हैं। अर्थात् कोई एक नारकी दूसरे नारकी जीव से एक आत्म द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, असंख्य आत्म प्रदेशों की अपेक्षा भी तुल्य हैं, अवगाहना में दुगुना आदि संख्यात गुणा अंतर हैं। स्थिति में असंख्यातगुणा, वर्णादि 20 बोल में अनंत गुणा और ज्ञानादि में भी अंनत गुण फर्क होता हैं। अतः सब मिलकर अंनत गुणा फर्क हो जाता हैं।

इसी प्रकार 24 दंडक के जीवों के अंनत पर्याय है अर्थात् खुद के दंडक वर्ती जीव के साथ आपस में किसी पर्याय की अपेक्षा अंनतगुणा फर्क होता हैं। इसलिये समुच्चय जीव के पर्याय भी अंनत है और 24 दडंक के जीवों के पर्याय भी अंनत हैं।

यहां पर्याय को जानने समझने के लिये 6बोलों की विचरणा है- 1. जीव द्रव्य-एक एक ही है, 2. प्रदेश- सभी के आत्म प्रदेश तुल्य असंख्य है, 3. अवगाहना, 4. स्थिति, 5. वर्णादि 6. ज्ञानादि। जिसमें अवगाहना, स्थिति और ज्ञान प्रत्येक दण्डक में जीवाभिगम प्रथमपत्ति में कहे अनुसार हैं। वर्णादि 20 बोल में वर्ण 5, गंध 2, रस 5, स्पर्श 8हैं। अनंतगुण, असंख्यगुण, संख्यातगुण आदि अंतर को समझने के लिए संकेतिक नाम इस प्रकार हैं-

एक ठाण वडिया- एक स्थान का अंतर जहां होता है उसे 'एकठाण वडिया' कहते हैं इसमें 1 'असंख्यातवें भाग हीन और असंख्यातवें भाग अधिक' यह एक स्थान अंतर रूप में होता हैं।

दुठाण वडिया- दो स्थान का जहां अंतर होता है उसे 'दुठाण वडिया' कहते हैं इसमें 2 'संख्यातवां भाग हीन और संख्यातवां भाग अधिक' यह स्थान बढ़ने से दो स्थान अंतर रूप में होता हैं।

तिठाण वडिया- 3 इसमें संख्यात गुण हीन और संख्यात गुण अधिक, यह स्थान बढ़ा।

चौठाण वडिया- 4 इसमें असंख्यातगुण हीन और असंख्यातगुण अधिक, यह स्थान बढ़ा।

छठाण वडिया- इसमें 5 अनंतवें भाग हीन और अनंतवें भाग अधिक 6अनंत गुण हीन और अनंत गुण अधिक ये दो स्थान बढ़े।

पांच ठाण वडिया कोई बोल नहीं बनता है अतः उसका संकेत नाम नहीं कहा गया हैं।

अवगाहना से पर्याय- समुच्चय जीव-द्रव्य के और दण्डक गत समुच्च्य जीवों के पर्याय कहने के बाद उनके जघन्य मध्यम उत्कृष्ट अवगाहना, स्थिति, वर्णादि ज्ञानादि की अपेक्षा पर्याय की विचारणा इस प्रकार है-

जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिक आपस में द्रव्य प्रदेश और अवगाहना से तुल्य होते है स्थिति से चौठाण वडिया (असंख्यगुणा अतंर) होते हैं। वर्णादि 20 बोल एवं 9 उपयोग की अपेक्षा छठाण वडिया (अनंतगुणा अंतर होता) हैं।

मध्यम अवगाहना में अवगाहना की अपेक्षा भी चौठाण वडिया (असंख्यगुणा अंतर होता) हैं। इस प्रकार सब पर्यायों की अपेक्षा कुल मिलाकर अंनत गुणा पर्यायों में फर्क हो जाता है अतः इन जघन्य मध्यम उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारकी के भी अनंत अनंत पर्यायें हैं।

इसी तरह जघन्य मध्यम उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिक की भी अंनत पर्याय समझनी चाहिये। स्वयं के जघन्य उत्कृष्ट बोल में तुल्य होते है और मध्यम में स्थिति चौठाण वडिया होती हैं।

इसी प्रकार जघन्य एवं उत्कृष्ट गुण काला में द्रव्य प्रदेश तुल्य, अवगाहन स्थिति चौठाण वडिया वर्णादि 19 बोल 9 उपयोग छठाण वडिया, काले वर्ण की अपेक्षा तुल्य होता है मध्यम गुण काला में वर्णादि 20 ही बोल में छट्ठाण वडिया हैं।

इसी प्रकार जघन्य उत्कृष्ट मध्यम मतिज्ञानी आदि समझना। विशेष यह है कि ज्ञान अज्ञान में उपयोग 6 कहना, दर्शन में 9 उपयोग कहना हैं। जघन्य उत्कृष्ट में खुद को छोड़कर शेष को छठाण वड़िया कहना, मध्यम में खुद सहित छठाण वडिया कहना।

इसी प्रकार 24 ही दण्डक में कहना, विशेषताएं चार्ट से जानना।

चार्ट सूचना- जीव के पर्यव, द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा सर्वत्र तुल्य ही होते हैं। जिस वर्ण की पृच्छा होती उसके जघन्य उत्कृष्ट में खुद की अपेक्षा तुल्य होते है, शेष 19 की अपेक्षा छट्ठाण वडिया होते हैं। जघन्य उकृष्ट ज्ञान, अज्ञान, दर्शन में भी जिसकी पृच्छा है उसके स्वयं की अपेक्षा तुल्य होता है, शेष ज्ञान अज्ञान दर्शन जो भी जहां पाये जाते है उनमें छठाण वडिया होता हैं। मध्यम में स्वयं का भी छठाण वडिया होता हैं। चार्ट में 1. द्रव्य 2. प्रदेश, वर्णादि एवं ज्ञानादि में तुल्य का कालम नहीं है उसे स्वतः समझ लेवें।

नारकी	अवगाहना से	स्थिति से छठाण वडिया	वर्णादि से छठाण वडिया	ज्ञानादि से
जघन्य अवगाहना	तुल्य	चौठाण वडिया	20 बोल	9 उपयोग
उतकृष्ट अवगाहना	तुल्य	दुठाण वडिया	20 बोल	9 उपयोग
मध्यम अवगाहना	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	20 बोल	9 उपयोग
जघन्य स्थिति	चौठाण वडिया	तुल्य	20 बोल	9 उपयोग
उत्कृष्ट स्थिति	चौठाण वडिया	तुल्य	20 बोल	9 उपयोग
मध्यम स्थिति	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	20 बोल	9 उपयोग
जघन्य गुण काला	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	19 बोल	9 उपयोग
उत्कृष्ट गुण काला	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	19 बोल	9 उपयोग
मध्यम गुण काला	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	20 बोल	9 उपयोग
जघन्य मतिज्ञानी	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	20 बोल	2 ज्ञान 3 दर्शन
उत्कृष्ट मतिज्ञानी	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	20 बोल	2 ज्ञान 3 दर्शन
मध्यम मतिज्ञानी	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	20 बोल	3 ज्ञान 3 दर्शन
जघन्य चक्षु दर्शनी	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	20 बोल	8 उपयोग
उत्कृष्ट चक्षु दर्शनी	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	20 बोल	8 उपयोग
मध्यम चक्षु दर्शनी	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	20 बोल	9 उपयोग

नोट- -काला वर्ण के समान शेष वणादि का वर्णन हैं। मतिज्ञान के समान शेष ज्ञान अज्ञान का वर्णन हैं। अज्ञान में 3 ज्ञान नहीं होते हैं। चक्षु दर्शन के समान शेष दर्शन भी हैं।

नारकी के समान ही 10 भवनपति का सपूर्ण वर्णन है किन्तु उत्कृष्ट अवगाहना में नारकी के स्थिति दुठण वडिया है, भवनपति में चौठाण वडिया हैं।

पृथ्वीकायादि 5	अवगाहना से	स्थिति से	वणादि से छठाण वडिया	ज्ञानादि से छठाण वडिया
जघन्य अवगाहना	तुल्य	तिठाण वडिया	20 बोल	2 ज्ञान 1 दर्शन
उत्कृष्ट अवगाहना	तुल्य	तिठाण वडिया	20 बोल	2 ज्ञान 1 दर्शन
मध्यम अवगाहना	चौठाण वडिया	तिठाण वडिया	20 बोल	2 ज्ञान 1 दर्शन
जघन्य स्थिति	चौठाण वडिया	तुल्य	20 बोल	2 ज्ञान 1 दर्शन
उत्कृष्ट स्थिति	चौठाण वडिया	तुल्य	20 बोल	2 ज्ञान 1 दर्शन
मध्यम स्थिति	चौठाण वडिया	तिठाण वडिया	20 बोल	2 ज्ञान 1 दर्शन
जघन्य गुणकाला	चौठाण वडिया	तिठाण वडिया	19 बोल	2 ज्ञान 1 दर्शन
उत्कृष्ट गुण काला	चौठाण वडिया	तिठाण वडिया	19 बोल	2 ज्ञान 1 दर्शन

पृथ्वीकायादि 5	अवगाहना से	स्थिति से	वर्णादि से छठाण वडिया	ज्ञानादि से छठाण वडिया
मध्यम गुण काला	चौठाण वडिया	तिठाण वडिया	20 बोल	2 ज्ञान 1 दर्शन
जघन्य मतिज्ञानी	चौठाण वडिया	तिठाण वडिया	20 बोल	1 ज्ञान 1 दर्शन
उत्कृष्ट मतिज्ञानी	चौठाण वडिया	तिठाण वडिया	20 बोल	1 ज्ञान 1 दर्शन
मध्यम मतिज्ञानी	चौठाण वडिया	तिठाण वडिया	20 बोल	2 ज्ञान 1 दर्शन
बेइन्द्रिय-				
जघन्य अवगाहना	तुल्य	तिठाण	20 बोल	5 उपयोग
उत्कृष्ट अवगाहना	तुल्य	तिठाण	20 बोल	2 अज्ञान 1 दर्शन (2)
मध्यम अवगाहना	चौठाण वडिया	तिठाण	20 बोल	5 उपयोग
जघन्य स्थिति	चौठाण वडिया	तुल्य	20 बोल	2 अज्ञान 1 दर्शन (3)
उत्कृष्ट स्थिति	चौठाण वडिया	तुल्य	20 बोल	5 उपयोग
मध्यम स्थिति	चौठाण वडिया	तिठाण	20 बोल	5 उपयोग
जघन्य गुण काला	चौठाण वडिया	तिठाण	19 बोल	5 उपयोग
उत्कृष्ट गुण काला	चौठाण वडिया	तिठाण	19 बोल	5 उपयोग
मध्यम गुण काला	चौठाण वडिया	तिठाण	20 बोल	5 उपयोग
जघन्य मतिज्ञानी	चौठाण वडिया	तिठाण	20 बोल	1 ज्ञान 1 दर्शन
उत्कृष्ट मतिज्ञानी	चौठाण वडिया	तिठाण	20 बोल	1 ज्ञान 1 दर्शन
मध्यम मतिज्ञानी	चौठाण वडिया	तिठाण	20 बोल	3 उपयोग
जघन्य अचक्षुदर्शनी	चौठाण वडिया	तिठाण	20 बोल	2 ज्ञान 2 दर्शन
उत्कृष्ट अचक्षुदर्शनी	चौठाण वडिया	तिठाण	20 बोल	2 ज्ञान 2 दर्शन
मध्यम अचक्षुदर्शनी	चौठाण वडिया	तिठाण	20 बोल	5 उपयोग

इसी तरह तेइन्द्रिय और चौरेन्द्रिय का वर्णन है किन्तु चौरेन्द्रिय में चक्षुदर्शन अधिक होता हैं। अतः 5 उपयोग के स्थान पर 6उपयोग समझना एवं 2, 3, 4 उपयोग के स्थान पर क्रमशः 3, 4, 5 उपयोग समझना।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय	अवगाहना से	स्थिति से	वर्णादि से छः वडिया	ज्ञानादि से छठाण वडिया
जघन्य अवगाहना	तुल्य	तिठाण वडिया	20 बोल	2 ज्ञान 2 अज्ञान 2दर्शन (6)
उत्कृष्ट अवगाहना	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	3 ज्ञान 3 अज्ञान 3दर्शन
मध्यम अवगाहना	चौ. व.	चौठाण वडिया	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘ ‘‘ ‘‘
जघन्य स्थिति	‘‘ ‘‘	तुल्य	‘‘ ‘‘	2 अज्ञान 2दर्शन (7)
उत्कृष्ट स्थिति	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	2 ज्ञान 2 अज्ञान 2दर्शन (8)
मध्यम स्थिति	‘‘ ‘‘	चौठाण वडिया	‘‘ ‘‘	9 उपयोग
जघन्य गुण काला	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	19 बोल	‘‘ ‘‘
उत्कृष्ट काला	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	19 बोल	‘‘ ‘‘
मध्यम गुण काला	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	20 बोल	‘‘ ‘‘
जघन्य मति ज्ञानी	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	1 दर्शन 2 दर्शन (9)
उत्कृष्ट मतिज्ञानी	‘‘ ‘‘	तिठाण व. (4)	‘‘ ‘‘	2 ज्ञान 3 दर्शन
मध्यम मतिज्ञानी	‘‘ ‘‘	चौठाण वडिया	‘‘ ‘‘	3 ज्ञान 3 दर्शन
जघन्य अवधिज्ञानी	‘‘ ‘‘	तिठाण व. (5)	‘‘ ‘‘	2 ज्ञान 3 दर्शन
उत्कृष्ट अवधिज्ञानी	‘‘ ‘‘	तिठाण वडिया	‘‘ ‘‘	2 ज्ञान 3 दर्शन
मध्यम अवधिज्ञानी	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	3 ज्ञान 3 दर्शन

नोट– मतिज्ञानके समान श्रतुज्ञान है। तीन ज्ञान के समान तीन अज्ञान का वर्णन हैं। चक्षु अचक्षु दर्शन मतिज्ञान के समान हैं। अवधि दर्शन अवधिज्ञान के समान है किन्तु उपयोग 5 और 6 के स्थान पर 8 और 9 हैं।

मनुष्य	अवगाहना	स्थिति से	वर्णादि से 6 ठाणवड़िया	ज्ञानादि से 6 ठाणवड़िया
जघन्य अवगाहना	तुल्य	ति. व. (10)	20 बोल	3 ज्ञान 2 अज्ञान 3 दर्शन (14)
उत्कृष्ट अवगाहना	‘‘ ‘‘	एकठाण व. (11)	‘‘ ‘‘	2 ज्ञान 2 अज्ञान 3 दर्शन (15)
मध्यम अवगाहना	चौ. व.	चौ. व.	‘‘ ‘‘	10 उपयोग/ 2 तुल्य
जघन्य स्थिति	‘‘ ‘‘	तुल्य	‘‘ ‘‘	2 अज्ञान 2 दर्शन (16)
उत्कृष्ट स्थिति	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	2 ज्ञान 2 अज्ञान 2 दर्शन (17)
मध्यम स्थिति	‘‘ ‘‘	चौठाण व.	‘‘ ‘‘	10 उपयोग/ 2 तुल्य
जघन्य गुण काला	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	19 बोल	10 उपयोग/ 2 तुल्य
उत्कृष्ट गुण काला	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	19 बोल	10 उपयोग/ 2 तुल्य
मध्यम गुण काला	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	20 बोल	10 उपयोग/ 2 तुल्य

मनुष्य	अवगाहना	स्थिति से	वर्णादि से 6 ठाणवड़िया	ज्ञानादि से 6 ठाणवड़िया
जघन्य मतिज्ञानी	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	1 ज्ञान 2 दर्शन (18)
उत्कृष्ट मतिज्ञानी	‘‘ ‘‘	ति. व. (12)	‘‘ ‘‘	3 ज्ञान 3 दर्शन
मध्यम मतिज्ञानी	‘‘ ‘‘	चौठाण व.	‘‘ ‘‘	4 ज्ञान 3 दर्शन
जघन्य अवधिज्ञानी	‘‘ ‘‘	ति. व. (13)	‘‘ ‘‘	3 ज्ञान 3 दर्शन
उत्कृष्ट अवधिज्ञानी	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	3 ज्ञान 3 दर्शन
मध्यम अवधिज्ञानी	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	4 ज्ञान 3 दर्शन
जघन्य विभंग ज्ञानी	ति. व. (18)	ति. व.	20 बोल	2 ज्ञान 3 दर्शन
उत्कृष्ट विभंग ज्ञानी	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘ ‘‘ ‘‘
मध्यम विभंग ज्ञानी	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	3 ज्ञान 3 दर्शन
केवल ज्ञान	चौ. व. (20)	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	दो से तुल्य
जघन्य चक्षुदर्शन	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘ (21)	‘‘ ‘‘	2 ज्ञान 2 अज्ञान 1 दर्शन
उत्कृष्ट चक्षुदर्शन	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	4 ज्ञान 3 अज्ञान 2 दर्शन
मध्यम चक्षुदर्शन	‘‘ ‘‘	चौठाण व.	‘‘ ‘‘	4 ज्ञान 3 अज्ञान 3 दर्शन
जघन्य अवधि दर्शन	‘‘ ‘‘	ति. व.	‘‘ ‘‘	4 ज्ञान 3 अज्ञान 3 दर्शन
उत्कृष्ट अवधिदर्शन	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	4 ज्ञान 3 अज्ञान 3 दर्शन
मध्यम अवधि दर्शन	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	10 उपयोग

नोट– मति ज्ञान के समान श्रुत ज्ञान का वर्णन है, दोनों ज्ञान के समान दोनों अज्ञान का वर्णन हैं। अवधिज्ञान के समान मनपर्यवज्ञान का वर्णन है किन्तु अवगाहना, स्थिति दोनों तिठाण वडिया है चक्षुदर्शन के समान अचक्षुदर्शन का वर्णन हैं। केवल ज्ञान के समान केवल दर्शन का वर्णन हैं।

वाणव्यंतर एवं ज्योतिषी दोनों का भवनपति के समान वर्णन हैं। वैमानिक का भी इसी तरह वर्णन है किन्तु स्थिति चौठाण वडिया के स्थान पर तिठाण वडिया हैं।

टिप्पण– (चार्ट में लगे क्रमांकानुसार)

1. उत्कृष्ट अवगाहना सातवीं नारकी में 500 धनुष की है वहां स्थिति जघन्य 22 सागर उत्कृष्ट तेतीस सागर है जो कि आपस में दुगुना (संख्यातगुणा) भी नहीं हैं। अतः असंख्यातवें भाग और संख्यातवें भाग ये दो स्थान के फर्क होने से ‘दुठाण वडिया‘ हैं।
2. उत्कृष्ट अवगाहना वाला बेइन्द्रिय मिथ्या दृष्टि ही होता हैं। सास्वादन सम्यक्त्व वहां केवल अपर्याप्त में अंगुल के असंख्यातवें भाग की जघन्य एवं मध्यम अवगाहना में ही होती हैं। अतः उत्कृष्ट में ज्ञान नहीं हैं।

3. जघन्य स्थिति बेइन्द्रिय में अपर्याप्त मरने वाले की होती हैं। सास्वादन समकित लेकर आने वाला पर्याप्त होकर ही मरता है अतः जघन्य स्थिति में ज्ञान नहीं हैं।

4. उत्कृष्ट मतिज्ञान तीर्यंच युगलिये में नहीं होता है अतः स्थिति तिठाण हैं। क्योंकि मनुष्य तिर्यञ्, में स्थिति चौठाण युगलियों के होने पर ही होती हैं।

5. इसी कारण अवधिज्ञानी, मनःपर्यव ज्ञानी, विभंग ज्ञानी, मनुष्य तीर्यंच में स्थिति तिठाण वडिया ही होती हैं।

6. जघन्य अवगाहना का तिर्यंच अपर्याप्ता होता है और अपर्याप्त तिर्यंच में अवधिज्ञान विभंग ज्ञान अवधि दर्शन नहीं होते।

7. जघन्य स्थिति का तिर्यंच भी अपर्याप्त मरने वाला होता है उसमें समकित ज्ञान नहीं होते हैं।

8. उत्कृष्ट स्थिति तिर्यंच में यगुलियें की होती है उसमें भी अवधि विभंग नहीं होते।

9. जघन्य मतिज्ञान में भी अवधि विभंग नहीं होते है।

10. तिर्यंच, मनुष्य में जघन्य अवगाहना युगलिये में नहीं होती है अतः स्थिति तिठाण वडिया ही होती है।

11. उत्कृष्ट अवगाहना का मनुष्य युगलिया ही होता है। युगलियों में आपस में उम्र (स्थिति) का अंतर अत्यल्प असंख्यातवें भाग मात्र होता है अतः स्थिति एकठाण वडिया है।

12-13. उत्कृष्ट मतिज्ञान भी युगलिये में नहीं होता है। अवधिज्ञान भी युगलिया में नहीं होता अतः दोनों में स्थिति तिठाण वडिया ही हो सकते है।

14. मनुष्य परभव से विभंगज्ञान नहीं लाता है अतः जघन्य अवगाहना में अज्ञान दो ही होते हैं।

15. उत्कृष्ट अवगाहना मनुष्य में युगलिये की ही होती है अतः अवधि विभंग नहीं है।

16. जघन्य स्थिति मनुष्य में अपर्याप्त मरने वाले की है उसमें समकित ज्ञान नहीं होते।

17. उत्कृष्ट स्थिति मनुष्य में युगलिये की ही होती है अतः उसमें अवधि विभंग नहीं है।

18. जघन्य मतिज्ञानी मनुष्य में भी अवधि विभंग नहीं होते।

19. टिप्पण नं. 4-5 देखें।

20. केवली समुद्घात की अपेक्षा केवलज्ञानी में अवगाहना चौठाण होती है। अन्यथा तो सात हाथ और 500 धनुष में तिठाण वडिया ही हो सकता है।

21. जघन्य चक्षुदर्शन युगलिये में नहीं हो सकता अतः मनुष्य तिर्यच के जघन्य चक्षुदर्शन में स्थिति तिठाण वडिया कहनी चाहिये। मूल पाठ में मतिज्ञान की भलावण होने से यह स्पष्ट नहीं किया जा सकता है। जघन्य मतिज्ञान तो युगलिये में हो सकता है क्योंकि उसका सम्बन्ध शरीर से नहीं है। किन्तु चक्षुदर्शन (आंखों) का संबंध शरीर से है। विशाल शरीर में जघन्य चक्षुदर्शन युगलिया में मानना संगत नहीं है। भलावण में ऐसे सूक्ष्म कई तत्त्व कई जगह स्पष्ट होने से रह जाते हैं।

अजीव पज्जवा (पर्यव)

रूपी पुद्गल की अपेक्षा अजीव पर्यव अनंत है, क्योंकि परमाणु अनंत है, द्विप्रदेशी से लेकर अनंत प्रदेशी तक सभी पुद्गल अनंत अनंत है।

परमाणु पुद्गल के पर्यव भी अनंत है। यावत् अनंत प्रदेशी स्कंध के पर्यव भी अनंत है। क्योंकि परमाणु-परमाणु में स्थिति का असंख्यागुणा फर्क हो सकता है अर्थात् परमाणुओं में स्थिति की असंख्य पर्यायें होती है और वर्णादि की अनंत पर्यायें होती हैं। अतः कुल मिलाकर अनंत पर्याये हो जाती है।

इसी प्रकार द्विप्रदेशी से लेकर अनंत प्रदेशी तक सभी की अनंत पर्याये है एवं जघन्य मध्यम उत्कृष्ट, अवगाहना, स्थिति और वर्णादि की अपेक्षा भी अनंत अनंत पर्यायें है। अन्य विशेष जानकारी चार्ट से जाने।

नोट– द्रव्य की अपेक्षा सर्वत्र तुल्य ही होता है। वर्णादि की पृच्छा में जिसकी पृच्छा हो उसके खुद की अपेक्षा तुल्य ही होता है। शेष की अपेक्षा छठाण वडिया होता है। अतः तुल्य होने के ये कालम चार्ट में नहीं दिये हैं।

नाम	प्रदेश से	अवगाहना से	स्थिति से	वर्णादि से छ. वडिया
परमाणु	तुल्य	तुल्य	चौठाण वडिया	16 बोल (1)
द्विप्रदेशी	तुल्य	1 प्रदेश हीनाधिक	चौठाण वडिया	16 बोल
तीन प्रदेशी	तुल्य	2 प्रदेश हीनाधिक	चौठाण वडिया	16 बोल
चार से दस प्रदेशी	तुल्य	3 से 9 ’’ ’’	चौठाण वडिया	16 बोल
संख्यात प्रदेशी	दुठाण वडिया (2)	दुठाण वडिया	चौठाण वडिया	16 बोल
असंख्यात प्रदेशी	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	16 बोल
अनंत प्रदेशी	छठाण वडिया	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	20 बोल
एक प्रदेश अवगाढपुद्गल	छठाण वडिया	तुल्य	चौठाण वडिया	16 बोल
दो से दस प्रदेश अवगाढपुद्गल	छठाण वडिया	तुल्य	चौठाण वडिया	16 बोल
संख्यात प्रदेश अवगाढपुद्गल	छठाण वडिया	दुठाण वडिया	चौठाण वडिया	16 बोल
असंख्यात प्रदेश अवगाढपुद्गल	छठाण वडिया	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	20 बोल
एक समय स्थिति के पुद्गल	छठाण वडिया	चौठाण वडिया	तुल्य	20 बोल
दो से दस समय स्थिति के पुद्गल	छठाण वडिया	चौठाण वडिया	तुल्य	20 बोल
संख्यात समय स्थिति के पुद्गल	छठाण वडिया	चौठाण वडिया	दुठाण वडिया	19 बोल
असंख्यात समय स्थिति के पुद्गल	छठाण वडिया	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	19 बोल
एक गुण काला	छठाण वडिया	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	19 बोल
दो से दस गुण काला	छठाण वडिया	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	19 बोल
संख्यात गुण काला	छठाण वडिया	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	19/1 दुठाण वडिया
असंख्यात गुण काला	छठाण वडिया	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	19/1 चौठाण वडिया
अनंत गुण काला ज. उ. अवगाहना	छठाण वडिया	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	20 बोल
दो प्रदेशी (3)	तुल्य	तुल्य	चौठाण वडिया	16 बोल
ज.म.उ.अव. का 3 प्रदेशी	तुल्य	तुल्य	चौठाण वडिया	16 बोल

नाम	प्रदेश से	अवगाहना से	स्थिति से	वर्णादि से छ. वडिया
ज.उ. अव. का 4 प्रदेशी	तुल्य	तुल्य	चौठाण वडिया	16 बोल
मध्यम अवगाहना का 4 प्रदेशी	तुल्य	1 प्रदेश हीनाधिक	चौठाण वडिया	16 बोल
ज.उ. अवगाहन का 10 प्रदेशी	तुल्य	तुल्य	चौठाण वडिया	16 बोल
मध्यम अवगाहना का 10 प्रदेशी	तुल्य	6 प्रदेश हीनाधिक	चौठाण वडिया	16 बोल
ज.उ. अवगाहना का संख्यात प्रदेशी	दुठाण वडिया	तुल्य	चौठाण वडिया	16 बोल
मध्यम अवगाहना का संख्यात प्रदेशी	दुठाण वडिया	दुठाण वडिया	चौठाण वडिया	16 बोल
ज.उ. अवगाहना असंख्यात प्रदेशी	चौठाण वडिया	तुल्य	चौठाण वडिया	16 बोल
मध्यम अवगाहना का असंख्यात प्रदेशी	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	16 बोल
जघन्य अवगाहना अनंत प्रदेशी	छठाण वडिया	तुल्य	चौठाण वडिया	16 बोल
उत्कृष्ट अवगाहना का अनंतप्रदेशी	छठाण वडिया	तुल्य	तुल्य (9)	16 बोल
मध्यम अवगाहना का अनंतप्रदेशी	छठाण वडिया	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	20 बोल
ज.उ. स्थिति के परमाणु (4)	तुल्य	तुल्य	तुल्य	16 बोल
मध्यम स्थिति के परमाण	तुल्य	तुल्य	चौठाण वडिया	16 बोल
ज.उ. स्थाति के द्विप्रदेशी	तुल्य	एक प्र. हीनाधिक	तुल्य	16 बोल
मध्यम स्थिति के द्विप्रदेशी	तुल्य	एक प्र. हीनाधिक	चौठाण वडिया	16 बोल
ज.उ. स्थिति के दस प्रदेशी	तुल्य	9 प्र. हीनाधिक	तुल्य	16 बोल
मध्यम स्थिति क दस प्रदेशी	तुल्य	9 प्र. हीनाधिक	चौठाण वडिया	16 बोल
ज.उ. स्थिति के संख्यात प्रदेशी	दुठाण वडिया	दुठाण वडिया	तुल्य	16 बोल
मध्यम स्थिति के संख्यात प्रदेशी	दुठाण वडिया	दुठाण वडिया	चौठाण वडिया	16 बोल
ज.उ. स्थिति के असंख्यात प्रदेशी	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	तुल्य	16 बोल
मध्यम स्थिति के असंख्यात प्रदेशी	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	16 बोल
ज.उ. स्थिति के बोल अनंत प्रदेशी	छठाण वडिया	चौठाण वडिया	तुल्य	20 बोल
मध्यम स्थिति के अनंत प्रदेशी	छठाण वडिया	चौठाण वडिया	चौठाण वडिया	20 बोल
ज.उ. गुण काला परमाणु (5)	तुल्य	तुल्य	चौठाण वडिया	11/1
मध्यम गुण काला परमाणु	तुल्य	तुल्य	चौठाण वडिया	12 बोल
ज.उ. गुण काला द्विप्रदेशी	तुल्य	एक प्र. हीनाधिक	चौठाण व.	15 बोल
मध्यम गुण काला द्विप्रदेशी	तुल्य	एक प्र. हीनाधिक	चौठाण व.	16 बोल
ज.उ. गुण काला दस प्रदेशी	तुल्य	नौ प्र. हीनाधिक	चौठाण व.	15/16

नाम	प्रदेश से	अवगाहना से	स्थिति से	वर्णादि से छ. वडिया
ज.उ. गुण काला संख्यात प्रदेशी	दुठाण व.	दुठाण व.	चौठाण व.	15/1
मध्यम गुण काला संख्यात प्रदेशी	दुठाण व.	दुठाण व.	चौठाण व.	16 बोल
ज.उ. गुण काला असंख्य प्रदेशी	चौठाण व.	चौठाण व.	चौठाण व.	15/1
मध्यम गुण काला असखय्य प्रदेशी	चौठाण व.	चौठाण व.	चौठाण व.	16 बोल
ज.उ. गुण काला अनंत प्रदेशी	छठाण व.	चौठाण व.	चौठाण व.	19/1
मध्यम गुण काला अनंत प्रदेशी	छठाण व.	चौठाण व.	चौठाण व.	20 बोल
ज.उ. कर्कश अनंत प्रदेशी	छठाण व.	चौठाण व.	चौठाण व.	19/1
मध्यम कर्कश अनंत प्रदेशी	छठाण व.	चौठाण व.	चौठाण व.	2
ज.उ.म. शीत (6) परमाणु	तुल्य	तुल्य	,, ,,	14/15
' ज.उ.म. शीत द्विप्रदेशी	तुल्य	1 प्र. हीनाधिक	चौठाण व.	15/16
' ज.उ.म. शीत दस प्रदेशी	तुल्य	9 प्र. हीनाधिक	चौठाण व.	15/16
' ज.उ.म. शीत सं प्रदेशी	दुठाण व.	दुठाण व.	चौठाण व.	15/16
' ज.उ.म. शीत असं प्रदेशी	चौठाण व.	चौठाण व.	चौठाण व.	15/16
' ज.उ.म. शीत अनंत प्र.	छठाण व.	चौठाण व.	चौठाण व.	19/20
जघन्य प्रदेशी खंध	तुल्य	1 प्र. हीनाधिक	चौठाण व.	16 बोल
उत्कृष्ट प्रदेशी खंध	,, ,,	चौठाण व.	,, ,,	20 बोल
मध्यम प्रदेशी खंध	छ.व.	,, ,,	,, ;,,	,, ;,,
जघन्य अवगाहना के पुद्गल	,, ,,	तुल्य	,, ,,	16 बोल
उत्कृष्ट	,, ,,	,, ,,	तुल्य	,, ;,,
मध्यम	,, ,,	चौ. व.	चौ. व.	20 बोल
ज.उ. स्थिति के पुद्गल	,, ,,	,, ,,	तुल्य	20 बोल
मध्यम स्थिति के पुद्गल	,, ,,	,, ,,	चौठाण व.	20 बोल
ज.उ. गुण काला पुद्गल	,, ,,	,, ,,	,, ,,	19/1
मध्यम गुण काला पुद्गल	,, ,,	,, ,,	,, ,,	20 बोल

टिप्पण- 1. समुच्चय परमाणु में स्पर्श 4 होते है वर्णादि 16 बोल होते हैं किसी एक परमाणु में तो 1 वर्ण, 1 गंध, 1 रस, 2 स्पर्श यों कुल 5 वर्णादि ही होते हैं। प्रतिपक्षी वर्णादि नहीं होते। यहां तुलना करने में विवक्षित सामान्य परमाणु की पृच्छा है व्यक्तिगत अकेले परमाणु की नहीं है अर्थात् जीव अजीव पर्यव के इस प्रकरण में सर्वत्र विवक्षित सामान्य की पृच्छा है व्यक्तिगत 1-2 पृच्छा नहीं हैं। इसी लिये समुच्चय परमाणु में वर्णादि 16 हैं।

2. संख्यात प्रदेशी के दुठाण वडिया में और जीव पर्यव में कहे दुठाण वडिया में अंतर हैं। जीव पर्यव में असंख्यातवें भाग और संख्यातवें भाग ये दो फर्क हैं और यहां अजीव पर्यव में संख्यातवें भाग और संख्यात गुण ये दो फर्क हैं। इसी अपेक्षा से संख्यात प्रदेशी (अर्थात् 11 प्रदेश से लाखों करोड़ों प्रदेशी) में प्रदेश अवगाहना दुठाण हो सकती हैं। एक ठाण वडिया और तिठाण वडिया अजीव पज्जवा में कहीं भी नहीं बनता हैं।

3. जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना के दो प्रदेशी की ही पृच्छा है मध्यम अवगाहना की पृच्छा नहीं हैं क्योंकि दो प्रदेशी में मध्यम अवगाहना नहीं बनती हैं। वहीं परमाणु की तो पृच्छा ही नहीं की है क्योकि जघन्य मध्यम उत्कृष्ट की पृच्छा में उसका विषय नहीं है यथा- जो एक भाई है उसके लिये छोटे बड़े भाई या छोटे बड़े पुत्र की पृच्छा का विषय नहीं होता है।

4. जघन्य स्थिति के परमाणु में भी वर्णादि 16ही सम्भव हैं। मूल पाठ में स्पर्श दो ही कहे किन्तु वह लिपि दोष दृष्टि दोष संभव हैं।

5. जघन्य काला गुण के परमाणुओं की पृच्छा होने से शेष प्रतिपक्षी चार वर्ण नहीं है और जघन्य काले की पृच्छा होने से काले वर्ण से सभी तुल्य है अतः वर्णादि 16 में से 5 वर्ण कम होने पर 11 वर्णादि से छठाण वडिया हैं। इसी तरह उत्कृष्ट गुण काले में 11 वर्णादि से छठाण वडिया है किन्तु मध्यम में काले वर्ण को मिलाने से 12 वर्णादि से छठाण वडिया हैं।

6. शीत स्पर्श के परमाणुओं में तीन स्पर्श होते है ऊष्ण नहीं होता हैं। अतः वर्णादि 15 होते हैं जघन्य उत्कृष्ट में स्वयं की अपेक्षा तुल्य होने से 14 वर्णादि छठाण वडिया और मध्यम में वर्णादि 15 छठाण वडिया कहे हैं।

7. जघन्य प्रदेशी स्कंध में द्विप्रदेशी खंध ही विवक्षित है अतः वर्णादि 16 हैं।

8. जघन्य अवगाहना के पुद्गल में अनंत प्रदेशी भी हो सकते है, फिर भी वर्णादि 16 ही हो सकते है अर्थात वे चौफर्सी ही होते हैं अठफर्सी नहीं होते ।

9. उत्कृष्ट अवगाहना के पुद्गल में अचित महास्कंध या केवली समुद्घात गत शरीर ग्रहीत है जिसकी स्थिति 4-4 समय की होती है अतः स्थिति तुल्य हैं।

छट्ठा व्युत्क्रांति पद

जीव संसार में जन्म-मरण करते हुए चार गति में भ्रमण कर रहे हैं। इन चारों गति में स्थूल दृष्टि से सदा कोई न कोई जीव जन्मता रहता है और मरता रहता है फिर भी सूक्ष्म दृष्टि से यह जन्म मरण का शिलशिला कभी बंद भी होता है इसे ही विरह काल कहते है। यह विरह काल दो प्रकार का होता है- 1. उपजने (जन्मने) का विरह, 2. मरने का (उद्धर्तन का) विरह। ये दोनों प्रकार के विरह सभी गति एवं जीव के भेदों में प्रायः समान ही होते हैं। अतः समुच्चय विरह काल का वर्णन करने से दोनों प्रकार के विरहों की जानकारी हो सकती है।

यह विरह चार गति और 24 दंडक में से केवल पांच स्थावर में नहीं होता है अर्थात् वहां जीव सदा निरंतर जन्म मरण करते ही रहते हैं। शेष सभी स्थानों में जीव कुछ समय-निरंतर भी जन्म मरण कर लेते हैं और कभी सांतर भी जन्म मरण करते है अर्थात् बीच बीच में कुछ समय का विरह काल भी हो जाता है।

चारगति में विरह- समुच्चय नरक गति में विरह काल जघन्य एक समय उत्कृष्ट 12 मुहुर्त का है अर्थात् कभी उत्कृष्ट 12 मुहुर्त तक कोई भी जीव नरक में नहीं जन्मता है। इसी प्रकार कभी 12 मुहुर्त तक कोई जीव नहीं मरता है। इस तरह तिर्यक गति में भी उत्कृष्ट 12 मुहुर्त तक अन्य तीन गतियों से जीव आकार उत्पन्न नहीं होते हैं। मनुष्य देव गति में भी अन्य गति से जीवों के आने का विरह 12 मुहुर्त का है। सिद्धों का उपजने का विरह जघन्य 1, 2, 3 समय उत्कृष्ट छः महीना है। शेष विरह काल सम्बन्ध जानकारी चार्ट से जानना।

इस पद में वर्णन दंडक क्रम से किया गया है। फिर भी नारकी एवं वैमानिक का विशेष भेदों से कथन किया गया है।

आगत गत– जीवों की आगत गत का वर्णन करते समय 24 दंडक के आधार से ही 110 जीव भेद विवक्षित करके कथन किया गया है अर्थात् 110 भेदों की अपेक्षा 24 दंडक में आगति का और गति का वर्णन किया गया है। अतः 9 वें देव लोक से अणुत्तर विमान के आगत वर्णन में तीन दृष्टि, सयमअसंयम, प्रमत्त अप्रमत्त, ऋद्धि (लब्धि) वान या लब्धि रहित की अपेक्षा वर्णन है। मनुष्य के वर्णन में 110 जीव भेद के साथ 111 वां सिद्ध अवस्था का भेद भी गत (गति) में बताया गया है। सूत्र पाठ में संख्या गिनने की पद्धति नहीं है केवल जीव भेद गिना दिये है। सरलता से समझाने के लिये गणित पद्धति के अवलंबन भूत संख्या का संकलन किया गया है। अन्यत्र आगति गति के वर्णन में जीव के 563 भेद की संख्या का संकलन करके किया जाता है वे 563 भेद इसी भाग में प्रथम प्रज्ञापना पद में कहे गये हैं। प्रासांगिक 110 भेद इस प्रकार है-

1. नारकी के 7 पर्याप्त
2. तिर्यञ्च के - 48

पांच स्थावर के सूक्ष्म बादर पर्याप्त अपर्याप्त	=	20 भेद
तीन विकेलेन्द्रिय के पर्याप्त अपर्याप्त	=	6 भेद
पांच तिर्यच पंचेन्द्रिय के सन्नी असन्नी पर्याप्त अपर्याप्त	=	20 भेद
स्थलचर युगलिया .खेचर युगलिया तिर्यन्च	=	2 भेद
		48 भेद

3. मनुष्य के - 6

समुच्छिंम मनुष्य .कर्म भूमि का पर्याप्त और अपर्याप्त	=	3 भेद
संख्यात वर्ष का कर्म भूमि, अकर्म भूमि, अंतरद्वीप	=	3 भेद
		6 भेद

4. देव के - 49	=	49 भेद

10 भवनपति 8व्यंतर 5 ज्योतिषी 12 देवलोक 9 ग्रेवेयक 5 अणुत्तर विमान ये 49 भेद।

चार गति के कुल 7 + 48 + 6 + 49	=	110 भेद

आयु बंध– नारकी देवता युगलिये छः महीने आयु शेष रहने पर परभव का आयु बंध करते हैं। दस औदारिक दंडक में निरूपक्रमी आयु वाले अपनी उम्र का 2/3 भाग बीतने पर 1/3 भाग शेष रहने पर आयु बंध करते हैं।

सोपक्रमी आयु वाले तीसरे, नौवें, सताइसवें भाग में आयु बंध करते हैं। (अंतिम अंतर्मुहुत तक भी करते हैं)।

आकर्ष – 24 ही दंडक में जघन्य 1-2-3 उत्कृष्ट आठ आकर्ष से आयु बंध होता हैं।

आयु बंध के 6 प्रकार है- 1. जाति बंध 2. गति बंध 3. स्थिति बंध 4. अवगाहना बंध 5. अनुभाग बंध 6. प्रदेश बंध।

24 ही दंडक में 6 प्रकार का आयुबंध होता हैं। अर्थात् आयुष्य के साथ इन 6 बोलों का संबध निश्चित होता हैं। इंजन के साथ डब्बे जुड़ने के समान 1 गति 2 जाति 3 अवगाहना- औदारिक शरीर आदि रूप, ये नाम कर्म की विविध प्रकृतियें साथ में रहती हैं। यदि मनुष्यायु का बंध हो रहा है तो मनुष्य गति पंचन्द्रिय जाति औदारिक शरीर की अवगाहना ये बोल आयु के साथ निश्चित रूप में जुड़ जाते हैं। अन्य अनेक कर्मों की 4 स्थिति 5 प्रदेश 6 अनुभाग आयुष्य बंध के साथ जुड़ जाता है। ये सब आयु बंध के साथ जुड़ कर बंध जाते हैं। इसी अपेक्षा आयु बंध 6 प्रकार का कहा है।

अल्पाबहुत्व- सबसे थोड़ा आठ आकर्ष वाले, सात आकर्ष वाले संख्यात गुणा यो क्रमशः एक आकर्ष वाले संख्यात गुणा।

विरह एवं उत्पात संख्या-

नाम	विरह		उत्पात संख्या	
	जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
पहली नरक	1 समय	24 मुहुर्त	1-2-3	असंख्यात
दूसरी नरक	,, ,,	7 दिन	,, ,,	,, ,,
तीसरी नरक	,, ,,	15 दिन	,, ,,	,, ,,
चौथी नरक	,, ,,	1 महीना	,, ,,	,, ,,
पांचवी नरक	,, ,,	2 महीना	,, ,,	,, ,,
छट्ठी नरक	,, ,,	4 महीना	,, ,,	,, ,,
सातवीं नरक	,, ,,	6 महीना	,, ,,	,, ,,
भवनपति से दूसरा देवलोक	,, ,,	24 मुहुर्त	,, ,,	,, ,,
तीसरा देवलोक	,, ,,	9 दिन 20 मुहुर्त	,, ,,	,, ,,
चौथा देवलोक	,, ,,	12 दिन 10 मुहुर्त	,, ,,	,, ,,
पांचवा देवलोक	,, ,,	$22\frac{1}{2}$ दिन	,, ,,	,, ,,
छट्ठा देवलोक	,, ,,	$45\frac{1}{2}$ दिन	,, ,,	,, ,,
सातवां देवलोक	,, ,,	80 दिन	,, ,,	,, ,,
आठवां देवलोक	,, ,,	100 दिन	,, ,,	,, ,,
नौवां दसवा देवलोक	,, ,,	संख्याता मास	,, ,,	संख्याता
ग्याहरवां बारहवां देवलाक	संख्याता वर्ष	,, ,,	,, ,,	,, ,,
प्रथम त्रिक ग्रैवेयक	,, ,,	संख्यात सौ वर्ष	,, ,,	,, ,,
दूसरी त्रिक ग्रैवेयक	,, ,,	संख्याता हजार वर्ष	,, ,,	,, ,,
तीसरी त्रिक ग्रैवेयक	,, ,,	संख्यात लाख वर्ष	,, ,,	,, ,,
चार अणुत्तर विमान	,, ,,	असंख्य वर्ष	,, ,,	,, ,,
सर्वार्थ सिद्ध	,, ,,	पल्य का असं. भाग	,, ,,	,, ,,
सिद्ध	,, ,,	6 महीना	,, ,,	108
चार स्थावर	विरह नही	,, ,,	निरंतर असंख्याता	108
वनस्पति	,, ,,	,, ,,	निरंतर अनंता	,, ,,
तीन विकलेन्द्रिय	1 समय	अन्तर्मुहर्त	1-2-3	असंख्यात
असन्नी तिर्यंच	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
सन्नि तिर्यश्र	,, ,,	12 मुहुर्त	,, ,,	,, ,,
समुर्च्छिम मनुष्य	,, ,,	24 मुहुर्त	,, ,,	,, ,,
सन्नी मनुष्य	,, ,,	12 मुहुर्त	,, ,,	संख्याता

विशेष- 1. चार स्थावर में 5 स्थावर की अपेक्षा प्रत्येक समय में बिना विरह के निरंतर असंख्याता उत्पन्न होते है त्रस की अपेक्षा जघन्य 1-2-3 उत्कृष्ट असंख्याता है। अतः कुल मिलाकर प्रति समय असंख्याता उत्पन्न होते हैं। वनस्पति में वनस्पति की अपेक्षा प्रति समय बिना विरह के अनंता उत्पन्न होते है चार स्थावर से प्रति समय में असंख्याता उपजे ओर त्रसकाय से जघन्य 1-2-3 उत्कृष्ट असंख्याता उपजे। सब मिलाकर उत्कृष्ट अनंत उपजे मरे।

गतागत विवरण-

नाम	संख्या	विवरण आगति	गति आगति	गति संख्या विवरण
पहली नरक	11	5 सन्नी, 5 असन्नि 1 मनुष्य	6	5 सन्नी, 1 मनुष्य
दूसरी नरक	6	5 सन्नी, 1 मनुष्य	6	आगत के समान
तीसरी नरक	5	भुजपरिसर्प कम	5	,, ,,
चौथी नरक	4	खेचर कम	4	,, ,,
पांचवी नरक	3	स्थलचर कम	3	,, ,,
छट्ठी नरक	2	उरपरिसर्प कम 1 मनुष्य, 1 जलचर	2	,, ,,
सातवीं नरक	2	स्त्री कम दोनों की	1	जलचर
भवनपति व्यंतर	16	5 असन्नि, 5 सन्नी, 5 युगलिया, 1 मनुष्य	9	5 सन्नी, 3 स्थावर, 1 मनुष्य
ज्योतिषी दो देवलोक	9	5 सन्नी, 3 युगलिया, 1 मनुष्य	9	,, ,,
3 से 8 देवलोक	6	5 सन्नी तिर्यंच मनुष्य	6	आगति के समान
9 से 12 देवलोक	1	मनुष्य	1	मुनष्य
9 ग्रैवेयक	1	मनुष्य	1	मनुष्य
5 अणुत्तर विमान	1	अप्रमत्त संयत मनुष्य	1	मनुष्य
पृथ्वी पानी वनस्पति	74	46 तिर्यंच, 3 मनुष्य 25 देवक्रम से	49	46 तिर्यंच 3 मनुष्य
तेऊ वायु	49	46 तिर्यंच 3 मनुष्य	46	46 तिर्यंच
तीन विकलेन्द्रिय	49	,, ,,	49	46 तिर्यंच 3 मनुष्य
तिर्यंच पंचेन्द्रिय	87	74 + 7 नरक 6 देवलोक	92	87 + 5 युगलिया
मनुष्य	96	38 तिर्यंच, 3 मनुष्य, 49 देव, 6 नरक	111	सिद्ध सहित 110 सर्वत्र

नोट- सन्नी और असन्नि जहां भी चार्ट में हैं उन्हें तिर्यंच समझें।

विशेष- 1. दूसरी नारकी से छट्ठी नारकी तक आगत के समान गत है। पहली नरक में असन्नि छोड़कर गत है सातवीं नरक में मनुष्य छोड़कर गत है। सातवीं में पुरूष और नपुंसक दोनों जा सकते हैं, स्त्री कोई भी नहीं जाती है।

2. दो तिर्यंच युगलिये- 1. खेचर 2. स्थलचर (चौपद), तीन मनुष्य युगलिये- 1. असंख्याता वर्ष का कर्म भूमि 2. अकर्मभूमिज 3. अंतर्द्वीपज।

3. इस गति आगति के प्रकरण में पर्याप्त नाम कर्म वालों की अपर्याप्त अवस्था को नहीं गिना गया है इसीलिये नारकी देवता के गति में भी आगति के समान केवल पर्याप्त ही लिया है। पर्याप्त अपर्याप्त यो दो भेद नहीं लिये हैं। अर्थात् नारकी देवता में पर्याप्त जीव ही आते हैं, एवं नारकी देवता जहां भी जन्मते हैं वहां पर्याप्त ही बनते हैं। पर्याप्त बने बिना अपर्याप्त अवस्था में वे वहां नहीं मरते हैं।

4. तिर्यंच मनुष्य परस्पर अपर्याप्त अवस्था का आयुष्य बांध सकते है और अपर्याप्त अवस्था में मरकर अन्यत्र (मनुष्य तिर्यंच में) जन्म सकते हैं।

5. अणुत्तर विमान में अप्रमत्त संयत स्वलिंगी ही जाते हैं। लब्धिवान भी अणुत्तर देव बनते हैं लब्धि रहित हो तो भी अणुत्तर देव बनते हैं।

6. नव ग्रैवेयक में स्वलिगीं सम्यगदृष्टि मिथ्यादृष्टि जाते हैं।

7. 12वें देवलोक तक साधु श्रावक स्वलिंगी अन्यलिंगी मिथ्यादृष्टि सम्यगदृष्टि आदि मनुष्य जा सकते हैं।

सातवां श्वासोच्छवास पद

श्वासोच्छश्वास क्रिया सांसारिक जीवों के शरीर का एक आवश्यक अंग है, इसके बिना कोई भी प्राणी नहीं जी सकता। यह श्वासोच्छवास क्रिया जीवों के भिन्न-भिन्न रूप में मंद-तीव्र गति से होती है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है--

1. नारकी जीव सदा तीव्र गति से श्वासोश्वास लेते छोड़ते हैं।

2. तिर्यंच मनुष्य तीव्रगति मंदगति आदि विभिन्न प्रकारों से (बेमात्रा-निश्चित काल मर्यादा नहीं कही जा सकती) श्वासोश्वास लेते छोड़ते हैं।

3. असुर कुमार देव की जघन्य सात थोव (लव), उत्कृष्ट साधिक एक पक्ष श्वासोश्वास क्रिया में लगता है।

4. नागकुमारादि एवं वाणव्यंतर देवों का श्वासोश्वास कालमान जघन्य सात थोव, उत्कृष्ट अनेक मुहूर्त है।

5. ज्योतिषी देवों का श्वासोश्वास काल मान जघन्य अनेक मुहूर्त, उत्कृष्ट भी अनेक मुहूर्त का है। जघन्य से उत्कृष्ट में संख्यात गुणा (दुगुना चौगुणा) अंतर है।

6. देवलोक में देवों का श्वासोश्वास काल मान इस प्रकार है-

देवलोक	जघन्य	उत्कृष्ट
पहला देवलोक	अनेक मुहूर्त्त	दो पक्ष
दूसरा देवलोक	साधिक अनेक मुहुर्त्त	साधिक दो पक्ष
तीसरा देवलोक	दो पक्ष	सात पक्ष
चौथा देवलोक	दो पक्ष साधिक	सात पक्ष साधिक
पांचवा देवलोक	7 पक्ष	10 पक्ष
छट्ठा देवलोक	10 पक्ष	14 पक्ष
सातवां देवलोक	14 पक्ष	17 पक्ष
आठवां देवलोक	17 पक्ष	18पक्ष
नवमा देवलोक	18पक्ष	19 पक्ष

देवलोक	जघन्य	उत्कृष्ट
दसवा देवलोक	19 पक्ष	20 पक्ष
ग्यारहवां देवलोक	20 पक्ष	21 पक्ष
बारहवां देवलोक	21 पक्ष	22 पक्ष
नव ग्रैवेयक	22 पक्ष	31 पक्ष
पांच अणुत्तर विमान	31 पक्ष	33 पक्ष

विशेष- नव ग्रैवेयक में प्रत्येक के जघन्य उत्कृष्ट अलग-अलग समझ लेने चाहिये। चार्ट में नवों का एक साथ कहा गया हैं। अर्थात् जितने सागरोपम की जघन्य उत्कृष्ट स्थिति प्रत्येक ग्रैवेयक की है, उतने उतने जघन्य उत्कृष्ट पक्ष समझ लेने चाहिये। इसी प्रकार चार अणुत्तर विमान में जघन्य उत्कृष्ट स्थिति अनुसार जानना। सर्वार्थ सिद्ध देवों के जघन्य 33 पक्ष का एक श्वासोश्वास होता हैं। इसी विधि में लोकांतिक आदि अन्य किसी भी देवों के श्वासोश्वास का कालमान समझ लेना चाहिये।

श्वासोश्वास का काल मान है या विरह- एक विचारणा

संसार का छोटा बड़ा प्रत्येक प्राणी श्वासोश्वास लेता है और इसी के आधार से जीता हैं। प्रस्तुत पद में नारकी आदि जीव कितने समय का श्वासोश्वास लेते है अर्थात् उन उन जीवों को एक बार की श्वासोश्वास क्रिया में कितना समय लगता है अर्थात् उन उन जीवों को एक बार की श्वासोश्वास को क्रिया में कितना समय लगता है यह बताया गया हैं।

इस सूत्र पद का अर्थ यों भी किया जाता है कि कितने समय के विरह से अंतर से श्वासोश्वास लिया जाता हैं। किन्तु आगमकार ने कितने काल का विरह अथवा कितने काल का अंतर हाता हैं ? ऐसा नहीं पूछा है और उत्तर में भी अंतर या विरह के भाव का उत्तर नहीं दिया हैं। यदि अंतर या विरह का आशय होता तो नारकी के लिये अनुसमयं अविरहियं शब्द का प्रयोग किया जाता और अन्य दंडकों में भी सात थोव या पन्द्रह पक्ष के अंतर श्वासोश्वास लेते हैं ऐसा स्पष्ट कथन किया जाता। किन्तु पाठ में ऐसा प्रयोग नहीं हैं।

आगम में शब्द प्रयोग इस प्रकार है- प्रश्न- केवइ कालस्य आणमंति ? उत्तर- जहण्णेणं सत्त थोवाणां आणमंति उक्कोसेणं साइरेगस्स पक्खस्स आणभंति। यहां पर 'कालस्स' 'थोवाण' 'साइरेगस्स पक्खस' ये श्वासोश्वास के विशेषण है इनका अर्थ स्पष्ट है- कितने काल का श्वासोश्वास, एक थोव का, साधिक पक्ष का, श्वासोश्वास लेते हैं। अतः यह स्पष्ट होता है कि उन -उन जीवों को एक बार की श्वासोश्वास क्रिया में थोव, पक्ष आदि समय लगता हैं।

व्यवहार दृष्टि से सोचा जाय तो कोई भी सुखी या स्वस्थ प्राणी रूक-रूक कर श्वास नहीं लेता है आभ्यंतर नाडी स्पंदन या नाक द्वारा श्वास ग्रहण स्वाभाविक किसी का भी नहीं रूकता हैं किन्तु मंद गति और तीव्र गति, मंदतम गति और तीव्रतम गति से श्वास लेने की भिन्नता जरूर देखी जा सकती है और समझी जा सकती हैं।

आगम में मनुष्य के श्वासोश्वास के लिये बेमात्रा शब्द का प्रयोग किया गया हैं। यदि इस प्रकरण में बताये गये काल मान को विरह समझाा जायेगा तो मनुष्य के लिये अविरह न कह कर 'बेमात्रा' का जो कथन किया गया है उसका अर्थ होगा कि अंतर का निश्चित मान नहीं है किन्तु विभिन्न तरह का अंतर होता है। जबकि प्रत्यक्ष व्यवहार से अनुभव किया जा सकता अर्थात् नाक द्वारा चलने वाला श्वास या नाड़ी स्पंदन अथवा धड़कन आदि किसी के मिनट आधा मिनट दो मिनट ऐसी किसी भी बेमात्रा तक के लिये रूकते नहीं है उसमें कुछ भी विरह-अंतर नहीं पड़ता हैं। अतः अविरह कहना चाहिये था। यदि अंतर के लिये विमात्रा

शब्द कहा होता तो विभिन्न मात्राओं में प्रत्येक व्यक्ति के श्वास के बीच में कुछ न कुछ अल्पाधिक अंतर देखा जाना चाहिये किन्तु ऐसा देखा नहीं जाता हैं।

प्रत्यक्ष में तो यह देखा जाता है कि विभिन्न मात्रा का कालमान अलग-अलग व्यक्तियों के श्वासोश्वास क्रिया का होता हैं। भगवती टीका में भी सात लव आदि के लिये कालमान शब्द का प्रयोग किया हैं।

आहार का अंतर जिस प्रकार प्रत्येक प्राणी के जीवन में देखा जाता है वैसे श्वासोश्वास का अंतर नहीं देखा जाता।

भगवती सूत्र में पांच स्थावर के आहार अणुसमय अविरह कहा किन्तु श्वासोश्वास के लिये विमात्रा शब्द का ही प्रयोग किया हैं। इससे भी स्पष्ट होता हैं कि आगमकार को श्वासोश्वास का विरह नहीं बताना है किन्तु उसका कालमान बताना है, जो कि औदारिक में विमात्रा वाला हैं।

वहीं पर (श. 1 उ. 1 में) बेइन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के श्वासोश्वास के लिये केवल विमात्रा ही कहा है किन्तु आहार के लिये विमात्रा कहने के साथ असंख्य समय के अंतर्मुहुर्त यावत् दो-तीन दिन से आहार की इच्छा उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार आगम से भी औदारिक दंडकों का अहार का अंतर स्पष्ट है और व्यवहार में भी आहारेच्छा में अंतर पड़ता देखा जाता हैं। श्वासोश्वास के लिये ऐसा कुछ भी स्पष्ट अंतर औदारिक दंडकों का आगम में नहीं बताया गया है और प्रत्यक्ष में भी किसी के श्वासोश्वास में ऐसा अंतर देखा नहीं जाता हैं।

अतः प्रत्यक्ष अनुभवानुसार भी श्वास का मंद मंदतम होना सहज समझ मे आ सकता है किन्तु कुछ समयों के लिये आहारेच्छा के समान रूक जाना, अंतर पड़ जाना समझ में नहीं आ सकता हैं।

समवायांग टीका में एवं प्रज्ञापना टीका में श्वासोश्वास के इस कालमान को अंतर या विरह कहा गया हैं जिसका आशय यह है कि 7 लव, 1 पक्ष, या 33 पक्ष तक देव बिना श्वास क्रिया के रहते हैं उतने समय के बीतने पर एक बार श्वासोश्वास लेते है फिर 33 पक्ष आदि समय तक रूक जाते हैं। आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से प्रकाशित विवेचन युक्त प्रज्ञापना सूत्र में भी टीका का अनुसरण करते हुए ही अर्थ विवेचन किया गया है इस तरह श्वास क्रिया को आभोग आहार क्रिया के समान पद्धति वाला स्वीकार किया गया हैं।

यद्यपि देवों का तो हम अभी कुछ भी अनुभव कर नहीं सकते किन्तु पृथ्वी तल पर रहे तिर्यञ्च मनुष्यों का अनुभव तो किया जा सकता है और उस अनुभव से तो यह निः संकोच कहा जा सकता है कि श्वास क्रिया आभोग आहार क्रिया के समान अंतर की पद्धति वाली नहीं हो सकती।

इस व्यवहार अनुभव दृष्टि से एवं आगम आशय की उपरोक्त अपेक्षा से देव गणों की एक श्वासोश्वास क्रिया 7 थोव, मुहुर्त, पक्ष आदि समय में पूर्ण होती है, इतनी शांत मंद मंदतम गति से वे देव श्वास लेते है और छोड़ते हैं। नारकी जीव शीघ्र शीघ्रतम गति से श्वास लेते छोड़ते हैं एवं मनुष्य तिर्यंञ्च मध्यम गति या विमात्रा से (कोई कभी मंद गति से कोई कभी तीव्र गति से) श्वास लेते छोडते हैं। किन्तु आहार के समान कुछ कुछ समय का अंतर करके कोई भी श्वास क्रिया नहीं करते हैं।

नोट– यथा मति चिंतन तर्क प्रमाण के साथ प्रस्तुत किया हैं। तथापि अनजाने आगम आशय से अतिरिक्त कथन हुआ हो तो उसका मिच्छामि टुक्कडं।

आठवां 'संज्ञा' पद

कर्मों के क्षयोपशम या उदय से उत्पन्न आहार आदि की अभिलाषा रूचि या मनोवृति को संज्ञा कहते है और उससे होने वाली कायिक मानसिक चेष्टा को संज्ञा प्रवृति या संज्ञा क्रिया कहते हैं। ये संज्ञाएं दस प्रकार की कही गई हैं।

1. आहार संज्ञा- क्षुधा वेदनीय कर्म के उदय से आहार की अभिलाषा रूचि।

2. भय संज्ञा- भय मोहनीय कर्म के उदय से भय जन्य संकल्प।

3. मैथुन संज्ञा- वेद मोहनीय के उदय से मैथुन संयोग की अभिलाषा एवं विकार रूप सूक्ष्म स्थूल संकल्प।

4. परिग्रह संज्ञा- लोभ मोहनीय के उदय से आसक्ति युक्त पदार्थों के ग्रहण की अभिलाषा।

5. क्रोध संज्ञा- क्रोध मोहनीय के उदय से कोप वृत्ति के संकल्प, आत्मपरिणति (परिणाम)।

6. मान संज्ञा- मान मोहनीय के उदय से गर्व अहंकारमय मानस-आत्म परिणति (परिणाम)।

7. माया संज्ञा- माया मोहनीय के उदय से मिथ्या भाषण या छल प्रपंच की जनक आत्म परिणति (परिणाम)।

8. लोभ संज्ञा- लोभ मोहनीय के उदय से अनेक प्रकार की लालसाएं, सुख समृद्धि यश सन्मान एवं पदार्थो के प्राप्त की आशाएं अभिलाषाएं।

9. लोक संज्ञा- यह ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होती हैं। देखा देखी, परंपरा, प्रवाह के अनुसार की जाने वाली प्रवृत्तियों की मानस वृत्ति रूची 'लोक संज्ञा' हैं।

10. ओघ संज्ञा- यह दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होती हैं। इसमें कुछ भी सोचे समझे बिना, संकल्प और विवेक बिना, केवल धुन ही धुन से प्रवृति करने के पीछे रही हुई मानसदशा आत्मपरिणति 'ओघ संज्ञा' हैं। यथा बोलते हुए या बैठे हुए, बिना प्रयोजन, बिना संकल्प के, शरीर पांव हाथ आदि का हिलाना, ओघ संज्ञा की प्रवृत्ति है इसके पीछे जो आत्म परिणति है, वह 'ओघ संज्ञा' हैं।

ये दसों संज्ञाएं सामान्य रूप से संसार के सभी प्राणियों में पाई जाती है अर्थात् चारगति 24 दडंक में ये दस ही संज्ञा हैं। विशेष रूप से या प्रमुखता अधिकता से ये संज्ञाएं इस प्रकार पाई जाती है-

चार गति में संज्ञाओं की प्रमुखता- आहारादि चार संज्ञा और क्रोधादि चार संज्ञाओं की अपेक्षा निम्न विचारणा है लोक संज्ञा और ओघ संज्ञा का सामान्य रूप से ही कथन हैं।

1. नारकी में- भय संज्ञा अधिक है एवं क्रोध संज्ञा अधिक हैं।

2. तिर्यञ्च में- आहार संज्ञा एवं माया संज्ञा अधिक हैं।

3. मनुष्य में- मैथुन संज्ञा और मान संज्ञा अधिक हैं।

4. देवता में- परिग्रह और लोभ संज्ञा अधिक हैं।

चार गति में संज्ञाओं की अल्पबहुत्व-

1. नरक में- सबसे थोड़ा मैथुन संज्ञा वाले, उससे आहार संज्ञा वाले संख्यातगुणा, उससे परिग्रह संज्ञा वाले संख्यातगुणा, उससे भय संज्ञा वाले संख्यातगुणा। (मे आ प भ)

2. तियञ्च में- सबसे थोड़ा परिग्रह संज्ञा वाले, उससे मैथुन संज्ञा वाले संख्यातगुणे, उससे भय संज्ञा वाले संख्यातगुणा, उससे आहार संज्ञा वाले संख्यात गुणा। (प मे भ आ)

3. मनुष्य में- सबसे थोड़े भय संज्ञा वाले उससे आहार संज्ञा वाले संख्यातगुणे, उससे परिग्रह संज्ञा वाले संख्यातगुणा, उससे मैथुन संज्ञा वाले संख्यातगुणा। (भ आ प मे)

4. देव में- सबसे थोड़े आहार संज्ञा वाले उससे भय संज्ञा वाले संख्यातगुणे, उससे मैथुन संज्ञा वाले संख्यातगुणा, उससे परिग्रह संज्ञा वाले संख्यातगुणा। (आ भ मे प)

शेष 6 संज्ञाओं की अपेक्षा अल्पबहुत्व यहां नहीं किया हैं।

नवमां 'योनि' पद

संसार में जीव जहां जनम लेते है, गर्भरूप में उत्पन्न होते है, जहां औदारिक आदि शरीर को बनाने हेतु प्रथम आहार ग्रहण करते है, एस उत्पत्ति स्थान को 'योनि' कहते हैं। वे संख्या में 84 लाख योनि कही गई हैं। विशेष भेदों की अपेक्षा वे योनि स्थान असंख्य हैं। प्रस्तुत प्रकरण में उन सभी योनियों को अपेक्षा से तीन-तीन प्रकारों में समावष्टि कर दिया गया हैं। यथा- 1. शीत योनि 2. उष्ण योनि 3. शीतोष्ण योनि।

1. सचित योनि 2. अचित योनि 3. मिश्र योनि ।

1. संवृत योनि 2. विवृत योनि 3. संवृत विवृत योनि ।

ये 9 योनियां समस्त जीवों की अपेक्षा कही गई हैं। प्रत्येक तीन योनि में सभी जीवों का समावेश हो जाता हैं।

केवल मनुष्यों की अपेक्षा भी अन्य तीन योनि और कही गई है-

1. कूर्मोन्नता योनि- तीर्थंकर आदि उत्तम पुरूष कूर्मोन्नता योनि में उत्पन्न होते हैं। अर्थात् उनकी माताओं के कूर्मोन्नता योनि होती है।

2. संखावर्ता योनि- चक्रवर्ती के स्त्रीरत्न के संखावर्ता योनि होती है इस योनि में जीव जन्म लेते है कुछ समय रहते है किन्तु पूर्ण विकास होकर गर्भ से बाहर आने के पूर्व ही मर जाते हैं। अर्थात् उस स्त्रीरत्न की कामाग्नि के ताप से वे वहीं नष्ट हो जाते हैं।

3. वंशीपत्रा योनि- सर्व साधारण मनुष्यों की वंशीपत्रा योनि होती हैं।

पूर्वोक्त 9 योनि जीवों में इस प्रकार होती हैं।

संसारी जीवों में योनियां-

जीव नाम	शीत आदि 3 योनि	सचितादि 3 योनि	संवृतादि 3 योनि
पहली दूसरी तीसरी नरक	शीत	अचित	संवृत
चौथी नरक	शीत एवं उष्ण दो	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘
पांचवी नरक	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘
छठी सातवी नरक	उष्ण	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘
तेउकाय	उष्ण	तीनों	‘‘ ‘‘
चार स्थावर	तीनों	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘
तीन विकलेन्द्रिय	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	विवृत
असन्नी तिर्यञ्च मनुष्य	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘	‘‘ ‘‘
सन्नी तिर्यञ्च मनुष्य	शीतोष्ण	मिश्र	संकृत विकृत
देव	‘‘ ‘‘	अचित	संवृत

जन्म स्थान में प्रथम आहार सचित अचित या मिश्र जैसा भी होता है उसी के अनुसार योनि होती हैं। अर्थात् वह आहार सचित है तो सचित योनि समझना। इसी प्रकार सन्नी मनुष्य और तिर्यञ्च के 'रज-वीर्य' का प्रथम आहार होता है उसमें वीर्य अचित एवं रज सचित होने से मिश्र आहार होता है इसलिये इनकी मिश्र योनि कही गई हैं।

उत्पत्ति स्थान का स्वभाव जैसा उष्ण शीत होता है तद्नुसार योनि होती है यथा- अग्निकाय की उष्ण योनि।

उत्पत्ति स्थान ढंका हुआ हो या गुप्त हो तो संवृत योनि होती हैं। प्रकट स्थान हो वह विवृत योनि एवं कुछ ढंका कुछ खुला स्थान हो तो संवृत-विवृत योनि होती हैं।

अल्पाबहुत्व-

1. सबसे थोड़ा शीतोष्ण योनिक, उष्ण योनिक असंख्यातगुणा, उससे शीतयोनिक अंनत गुणा।
2. सबसे थोड़ा मिश्र योनिक, अचित योनिक असंख्यातगुणा, उससे सचित योनिक अंनत गुणा।
3. सबसे थोड़ा संवृत-विवृत, उससे विवृत योनिक असंख्यातगुणा, उससे संवृत योनिक अंनत गुणा।

दसवां 'चरम' पद

पृथ्वी आदि की चरमाचरम वक्तव्यता-

रत्न प्रभा आदि सात एवं सिद्ध शिला, ये आठ पृथ्वियां कही गई हैं। इसके अतिरिक्त देवलोक आदि भी अलग-अलग पृथ्वी स्कंध ही हैं।

द्रव्यापेक्षया- ये सभी एक-एक स्कंध हैं। अतः इनमें 1. चरम 2. अनेक चरम 3. अचरम 4. अनेक अचरम 5. चरमांत प्रदेश 6. अचरमांत प्रदेश। इन 6में से एक भी विकल्प नहीं हो सकता है क्योकि जो एक द्रव्य है जिसके साथ कोई नहीं है तब दूसरे किसी भी द्रव्य की विवक्षा बिना ये भंग नहीं हो सकते। अर्थात् ये चरम-अन्तिम आदि भंग अनेक की अपेक्षा रखते हैं।

विभागापेक्षया- ये रत्न प्रभादि असंख्य प्रदेश अवगाहनात्मक अनेक स्कंधों से युक्त हैं। उनके चरम प्रदेश खुणों के रूप में हैं। उन खुणों को विभागापेक्षया अनेक चरम स्कंध रूप में विवक्षित करने पर एवं मध्य के पूरे एक गोल खंड को एक अचरम विवक्षित करने पर रत्न प्रभा पृथ्वी आदि के चरम आदि हो सकते हैं। इस विभागादेश से रत्न प्रभा पृथ्वी - 1. अचरम है 2. अनेक चरम है 3. अचरमांत प्रदेश 4. चरमातं प्रदेश हैं।

1. अचरम- बीच का विवक्षित एक द्रव्य स्कंध।

2. अनेक चरम- खुणो रूप अनेक असंख्य खंड अनेक चरम द्रव्य है।

3. अचरमांत प्रदेश- अचरमद्रव्य-अवगाहित प्रदेशों की अपेक्षा असंख्य प्रदेशात्मक है, अतः असंख्य अचरमांत प्रदेश हैं।

4. चरमांत प्रदेश- खुणों के रूप में रहे असंख्य खंड अवगाहित प्रदेशों की अपेक्षा असंख्य प्रदेशात्मक हैं।

इसी प्रकार विभागादेश से सभी पृथ्वियां और देवलोक, लोक एवं अलोक आदि के चार-चार भंग मान्य किये जाते हैं। इनकी अल्पा बहुत्व इस प्रकार है-

अल्पाबहुत्व- (रत्नप्रभा पृथ्वी से लेकर लोक तक की)

सबसे थोड़े एक अचरम द्रव्य उससे अनेक चरम द्रव्य असंख्यगुणा। उससे चरमांत प्रदेशी असंख्य गुणा, उससे अचरमांत प्रदेश असंख्यगुणा। (यहां पर द्रव्य में खंड रूप स्कंध ग्रहित है और प्रदेश में उन खंडों के अवगाहित आकाश प्रदेश विवक्षित किये है, इसलिये प्रदेशों को असंख्यातगुणा कहा है।

लोक अलोक में चार भंग- - लोक के किनारे भी दंताकार विभाग है क्योंकि लोक समचक्रवाल नहीं है, विषम चक्रवाल हैं। अतः उन दंताकार विभागों को अनेक खंड रूप में विवक्षित करने पर लोक के भी उक्त चार भंग स्वीकृत किये है लोक के दंताकार में अलोक के दंताकार खंड मिल कर रहे हुए हैं। तभी लोक अलोक पूर्ण सलग्न होकर रहे हुए होते हैं। इस कारण अलोक के भी उक्त चार भंग स्वीकृत किये गये हैं। इसलिये इनकी भी अल्पाबहुत्व की गई है। लोक के चारों भंग की अल्पाबहुत्व रत्ना प्रभा के समान ही हैं किन्तु अलोक के चार भगों की अल्पाबहुत्व में अंतर है क्योंकि उसके आकाश प्रदेश असंख्य नहीं है किन्तु अनंत है। अतः उसकी अल्पाबहुत्व इस प्रकार है--

अलोक की अल्पाबहुत्व- सबसे थोड़ा अलोक अचरम द्रव्य (एक है), उससे चरम द्रव्य असंख्य गुणा, उससे चरम द्रव्यों के प्रदेश (आकाश प्रदेश) असंख्य गुणा, उससे अचरम प्रदेश अनंत गुणा।

लोक-अलोक की सम्मिलित अल्पाबहुत्व-

1. सबसे थोड़ा लोक अचरम और अलोक अचरम, (दोनों) आपस में तुल्य (एक-एक है)
2. इससे लोक के चरम द्रव्य असंख्य गुणे।
3. इससे अलोक के चरम द्रव्य विशेषाधिक।
4. इससे लोक के चरम प्रदेश असंख्य गुणे।
5. उससे अलोक के चरम प्रदेश विशेषाधिक।
6. उससे लोक के अचरम प्रदेश असंख्य गुणे।
7. उससे अलोक के अचरम प्रदेश अनंत गुणे।

नोट- यहां अल्पाबहुल्य में समुच्चय लोक और समुच्चय अलोक के विशेषाधिक का बोल नहीं लिया गया है उसे स्वतः समझ लेना चाहिए।

परमाणु पुद्गल आदि की चरमाचरम वक्तव्यता-

परमाणु आदि पुद्गलों के चरम अचरम की विचारणा में 26विकल्पों द्वारा पृच्छा की गई है। वे 26प्रश्न चरम, अचरम और अवक्तव्य इन तीन पदों के असंयोगी द्विसंयोगी तीन संयोगी भंग रूप है।

तीन पदों का स्वरूप- 1. चरम- जिस प्रदेश के समकक्ष में एक दिशा में एक या अनेक प्रदेश हो तो वह उनकी अपेक्षा ''चरम' होता है।

2. अचरम- जिस प्रदेश के समकक्ष में दोनों दिशा में एक या अनेक प्रदेश हो तो वह उनकी अपेक्षा 'अचरम' (मध्यम) होता है।

3. अवक्तव्य- जिस प्रदेश के समकक्ष में अन्य कोई भी प्रदेश नहीं होता है अर्थात् उस ऊपर या नीचे की अपनी प्रतर में वह अकेला ही हो तो वह अवक्तव्य होता है।

असंयोगी 6भंग- 1. चरम 2. अचरम 3. अवक्तव्य 4. अनेक चरम 5. अनेक अचरम 6. अनेक अवक्तव्य।

द्विसंयोगी 12 भंग- 1. चरम एक, अचरम एक 2. चरम एक अचरम अनेक 3. चरम अनेक अचरम एक 4. चरम अनेक अचरम अनेक। 5. चरम एक अवक्तव्य एक 6. चरम एक अवक्तव्य अनेक 7. चरम अनेक अवक्तव्य एक 8. चरम अनेक अवक्तव्य अनेक 9. अचरम एक अवक्तव्य एक 10. अचरम एक अवक्तव्य अनेक 11. अचरम अनेक अवक्तव्य एक 12. अचरम अनेक अवक्तव्य अनेक।

तीन संयोगी 8भंग- 1. चरम एक, अचरम एक, अवक्तव्य एक, 2. चरम एक, अचरम एक, अवक्तव्य अनेक, 3. चरम एक, अचरम अनेक, अवक्तव्य एक, 4. चरम एक, अचरम अनेक, अवक्तव्य अनेक। 5. चरम अनेक, अचरम एक, अवक्तव्य एक 6. चरम अनेक, अचरम एक, अवक्तव्य अनेक 7. चरम अनेक, अचरम अनेक, अवक्तव्य एक 8. चरम अनेक, अचरम अनेक, अवक्तव्य अनेक।

ये कुल 6+ 12 + 8= 26 भंग है।

रत्नप्रभा पृथ्वी आदि चरम अचरम द्रव्य की अपेक्षा अल्प बहुत्व-

	विकल्प	प्रमाण	कारण
1.	अचरम	सबसे अल्प	मध्यवर्त्ती खंड एक है
2.	अनेक चरम	असंख्यात गुणा	पर्यंतवर्ती निष्कूट (खुणा) असंख्यात है।
3.	अचरम अनेक चरम	विशेषाधिक	चरम अचरम मिलकर एक ज्यादा हो गया
चरम अचरम प्रदेश की अल्प बहुत्व-			
1.	चरमांत प्रदेश	सबसे अल्प	खंड छोटे है।
2.	अचरमांत प्रदेश	असंख्यात गुणा	क्षेत्र असंख्यात गुणा। बड़ा है।
3.	चरमांत अचरमांत प्रदेश	विशेषाधिक	दोनों प्रकार के प्रदेशों की गणना साथ में है।
चरम अचरम की द्रव्य प्रदेश की शामिल अल्प बहुत्व-			
1.	अचरम द्रव्य	सबसे अल्प	मध्यवर्त्ती खंड एक है।
2.	अनेक चरम द्रव्य	असंख्यात गुणा	निष्कूट असंख्यात है।
3.	अचरम चरम द्रव्य	विशेषाधिक	अचरम चरम की गणना साथ में है
4.	चरमांत प्रदेश	असंख्यात गुणा	प्रत्येक चरमांत खंड असंख्यात है
5.	अचरमांत प्रदेश	विशेषाधिक	क्षेत्र असंख्यात गुणा बड़ा है
6.	चरमांत अचरमांत प्रदेश	विशेषाधिक	चरमांत अचरमांत प्रदेश की गणना साथ में है।
अलोक की तीन अल्प बहुत्व- **चरम अचरम द्रव्य की अपेक्षा अल्प बहुत्व**			
1.	अचरम	सबसे अल्प (तुल्य)	लोक के समीप निष्कूटों के सिवाय संपूर्ण अलोक एक रूप है।
2.	अनेक चरम	असंख्यात गुणा	लोक के समीप के अलोक के निष्कूट असंख्यात है
3.	अचरम चरम	विशेषाधिक	दोनों की गणना साथ है।
अलोक के चरम अचरम प्रदेश से अल्प बहुत्व			
1.	चरमांत प्रदेश	सबसे कम	निष्कूट के क्षेत्र कम है।
2.	अचरमांत प्रदेश	अनंत गुणा	निष्कूट सिवाय का अलोक क्षेत्र अनंत गुणा बड़ा है।
3.	चरमांत अचरमांत प्रदेश	विशेषाधिक	दोनों की गणना साथ है।

अलोक के चरम अचरम द्रव्य-प्रदेश की शामिल अल्प बहुत्व-			
1.	अचरम	सबसे अल्प	एक खंड रूप है।
2.	अनेक चरम	असंख्यात गुणा	निष्कूट असंख्यात है
3.	अचरम-चरम	विशेषाधिक	दोनों की गणना साथ में है।
4.	चरमांत प्रदेश	असंख्यात गुणा	अलोक के प्रत्येक निष्कूट असंख्यात प्रदेशी है।
5.	अचरमांत प्रदेश	अनंत गुणा	निष्कूट के अतिरिक्त अलोक क्षेत्र अनंत है।
6.	चरमांत अचरमांत प्रदेश	विशेषाधिक	दोनों प्रकार के प्रदेशों की गणना साथ में है।
लोक अलोक की शामिल अल्प बहुत्व तीन (तीन) लोकालोक में चरम-अचरम द्रव्य की अपेक्षा-			
1.	लोक अलोक के अचरम द्रव्य	सबसे अल्प (तुल्य)	दोनों एक-एक अचरम खंड़ है। परस्पर तुल्य है।
2.	लोक के चरम द्रव्य	असंख्यात गुणा	लोक के पर्यंतवर्ती निष्कूट असंख्यात है।
3.	अलोक के चरम द्रव्य	विशेषाधिक	लोक से अलोक के निष्कूट विशेषाधिक है।
4.	लोकालोक के चरम अचरमद्रव्य	विशेषाधिक	उपरोक्त तीनों बोल शामिल हो जाने से।
लोकालोक में चरम अचरम प्रदेश की अपेक्षा से- अल्प बहुत्व-			
1.	लोक के चरमांत प्रदेश	सबसे अल्प	लोक के निष्कूटों का क्षेत्र छोटा है
2.	अलोक के चरमांत प्रदेश	विशेषाधिक	लोक से अलोक के निष्कूट क्षेत्र कुछ बड़े है।
3.	लोक के अचरमांत प्रदेश	असंख्यात गुणा	निष्कूट छोड़कर लोक का क्षेत्र असंख्यात गुणा बड़ा है।
4.	अलोक के अचरमांत प्रदेश	अनंत गुणा	निष्कूट के सिवाय अलोक क्षेत्र अनंत गुणा बड़ा है।
5.	लोकालोक के चरमांत अचरमांतप्रदेश	विशेषाधिक	उपरोक्त चारों बोलों की गणना साथ में है।
लोकालोक में चरम अचरम की द्रव्य प्रदेश से शामिल अल्प बहुत्व-			
1.	लोकालोक के अचरम द्रव्य	सबसे कम परस्पर तुल्य	दोनों एक-एक कुल दो खंड रूप हैं
2.	लोक के चरम द्रव्य	असंख्यात गुणा	लोक के निष्कूट असंख्यात है
3.	अलोक के चरम द्रव्य	विशेषाधिक	लोक से अलोक के निष्कूट विशेषाधिक है
4.	लोकालोक चरम अचरम द्रव्य	विशेषाधिक	उपरोक्त तीनों बोल की गणना शामिल है
5.	लोक के चरमान्त प्रदेश	असंख्यात गुणा	लोक के असंख्य निष्कूट असंख्यात प्रदेशी है
6.	अलोक के चरमान्त प्रदेश	विशेषाधिक	लोक से अलोक के निष्कूट अधिक हैं।
7.	लोक के अचरमांत प्रदेश	असंख्यात गुणा	लोकालोक के निष्कूटों से लोक का मध्य खंड असंख्यात गुणा बड़ा है
8.	अलोक के अचरमांत प्रदेश	अनन्त गुणा	क्षेत्र अनन्त गुणा बड़ा है
9.	लोकालोक के चरमांत अचरमांत प्रदेश	विशेषाधिक	उपरोक्त चारों का समावेश है
10.	सर्व द्रव्य	विशेषाधिक	धर्मास्तिकाय आदि पांच अजीव द्रव्यों का समावेश होता है
11.	सर्व प्रदेश	अनन्त गुणा	लोक की सीध सिवाय अलोक के प्रदेशों का समावेश
12.	सर्व पर्याय	अनन्त गुणा	सर्व द्रव्य सर्व प्रदेशों की अनंत अनंत अगुरू लघु आदि पर्यायें है।

6 भंगों की परमाणु आदि में उपलब्धि-

क्र.	भंग का नाम	आकृति	विवरण
1.	एक चरम	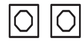	एक प्रतर में दो आकाश प्रदेश पर दो से अनंत प्रदेशी तक के स्कंध
2.	एक अचरम	×	भंग नहीं बनता
3.	एक अवक्तव्य		एक आकाश प्रदेश पर स्थित परमाणु से अनंत प्रदेशी स्कंध
4.	अनेक चरम	×	भंग नहीं बनता
5.	अनेक अचरम	×	भंग नहीं बनता
6.	अनेक अवक्तव्य	×	भंग नहीं बनता
7.	एक चरम एक अचरम		एक प्रतर में पांच आकाश प्रदेश पर पांच प्रदेशी से अनंत प्रदेशी स्कंध
8.	एक चरम अनेक अचरम	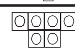	एक प्रतर में 6 आकाश प्रदेश पर 6 से अनंत प्रदेशी स्कंध
9.	अनेक चरम एक अचरम	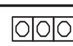	एक प्रतर में तीन आकाश प्रदेश पर तीन से अनंत प्रदेशी स्कंध
10.	अनेक चरम अनेक अचरम		एक प्रतर में 4 आकाश प्रदेश पर चार से अनंत प्रदेशी स्कंध
11.	एक चरम एक अवक्तव्य	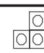	दो प्रतर में तीन आकाश पर तीन से अनंत प्रदेशी स्कंध
12.	एक चरम अनेक अवक्तव्य	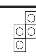	तीन प्रतर में 4 आकाश प्रदेश पर 4 से अनंत प्रदेशी स्कंध
13.	अनेक चरम एक अवक्तव्य	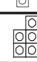	तीन प्रतर में 5 आकाश प्रदेश पर 5 से अनंत प्रदेशी स्कंध
14.	अनेक चरम अनेक अवक्तव्य	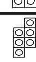	4 प्रतर में 6 आकाश प्रदेश पर 6 से अनंत प्रदेशी स्कंध
15.	एक अचरम एक अवक्तव्य	×	भंग नहीं बनता
16.	एक अचरम अनेक अवक्तव्य	×	भंग नहीं बनता
17.	अनेक अचरम एक अवक्तव्य	×	भंग नहीं बनता
18.	अनेक अचरम अनेक अवक्तव्य	×	भंग नहीं बनता
19.	एक चरम, एक अचरम, एक अवक्तव्य	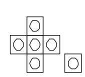	दो प्रतर में 6 आकाश प्रदेश पर 6 प्रदेशी से अनंत प्रदेशी तक
20.	1 चरम 1 अचरम अनेक अवक्तव्य	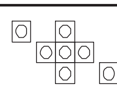	तीन प्रतर में 7 आकाश प्रदेश पर 7 प्रदेश से अनंत प्रदेशी स्कंध
21.	1 चरम अनेक अचरम 1 अवक्तव्य	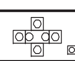	दो प्रतर में 7 आकाश प्रदेश पर 7 से अनंत प्रदेशी स्कंध
22.	1 चरम अनेक अचरम अनेक अवक्तव्य	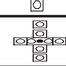	तीन प्रतर में 8 आकाश प्रदेश पर 8 से अनंत प्रदेशी स्कंध
23.	अनेक चरम 1 अचरम 1 अवक्तव्य	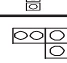	दो प्रतर में 4 आकाश प्र. पर 4 प्रदेश से अनंत प्रदेशी स्कंध
24.	अनेक चरम 1 अचरम अनेक अवक्तव्य	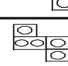	तीन प्रतर में पांच आकाश प्र. पर स्थित पांच प्रदेशी से अनंत प्रदेशी स्कंध
25.	अनेक चरम अनेक अचरम एक अवक्तव्य	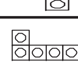	दो प्रतर में 5 आकाश प्र. पर स्थित 5 प्रदेशी से अनंत प्रदेशी स्कंध
26.	अनेक चरम अनेक अचरम अनेक अव.	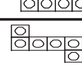	तीन प्रतर में 6 आकाश प्रदेश पर स्थित 6 से अनेक प्रदेशी स्कंध

26 भंग स्वरूप–

1. चरम– द्विप्रदेशी खंड आदि दो आकाश प्रदेश पर समकक्ष में हो तो एक चरम रूप यह भंग होता है। यदि एक आकाश प्रदेश पर अनेकों प्रदेश हो तो भी यहां आकाश प्रदेश की प्रधानता होने से एक ही चरम कहा जायेगा इसलिये दो आकाश प्रदेश पर समकक्ष में रहने वाले सभी स्कंध इस भंग में गिने जाते हैं।

2. अचरम– अचरम का मतलब है मध्यम, बीच का। अकेला अचरम कोई नहीं हो सकता अतः यह भंग शून्य है अर्थात् सभी स्कंधों में इस भंग का निषेध है।

3. अवक्तव्य– अपनी श्रेणी, कक्ष, प्रतर में जो अकेला ही हो वह अवक्तव्य है। परमाणु तो स्पष्ट ही अवक्तव्य है। अन्य स्कंधों में भी शेष प्रदेश समकक्ष में हो और एक प्रदेश अकेला अन्य प्रतर में ऊपर या नीचे हो तो वह भी अवक्तव्य है। किन्तु वह इस तीसरे भंग में नहीं गिना जायेगा। किंतु संयोगी भंगो में समावेश होगा। यह तीसरा भंग तो केवल परमाणु में ही पाया जायेगा अथवा कोई भी द्विप्रदेशी स्कंध आदि एक आकाश प्रदेश पर रहेगा तो वह भी अवक्तव्य नामक इस तीसरे भंग में ही गिना जायेगा।

4. अनेक चरम– बिना अचरम के अनेक चरम होना असंभव है अतः यह भंग भी शून्य है। किसी भी स्कंध में नहीं माना माना गया है।

5. अनेक अचरम– चरम के बिना एक अचरम भी नहीं होता, तो अनेक अचरम होना संभव ही नहीं है। अत यह भंग भी शून्य है।

6. अनेक अवक्तव्य– बिना चरम अचरम के अवक्तव्य अनेक नहीं रह सकते। एक अवक्तव्य रूप परमाणु का तीसरा भंग तो सफल है ही, किन्तु अनेक अवक्तव्य रूप यह भंग सम्भव नहीं है।

7. चरम एक अचरम एक– यदि समकक्ष एक दिशा में रहे प्रदेशों में एक अचरम है तो चरम अनेक होते हैं। अतः यह भंग समकक्ष एक दिशा में रहे प्रदेशों की अपेक्षा नहीं होता किन्तु समकक्ष चारों दिशा में रहे प्रदेशों की अपेक्षा होता है अर्थात् कम से कम पांच प्रदेशी सकंध में हो सकता है। इसमें जो एक प्रदेश बीच में होता है, वह एक अचरम होता है। शेष चार चौतरफ घिरे होने से उन्हें अपेक्षा से एक चरम कहा गया है।

8. चरम एक अचरम अनेक– सातवें भंग के समान ही यह भी भंग है, इसमें दो प्रदेश बीच में दो आकाश प्रदेश पर होते हैं और चार चौतरफ घिरे होते हैं अतः यह भंग कम से कम 6प्रदेशी स्कंध में होता है।

9. चरम अनेक अचरम एक– यह भंग समकक्ष में एक श्रेणी में रहे प्रदेशों के होता हैं। इसमे कम से कम तीन प्रदेश आवश्यक है अर्थात् यह भंग दो प्रदेशी में नहीं होता है। तीन प्रदेशी में और उससे अधिक प्रदेशी स्कंध में होता है।

10. चरम अनेक अचरम अनेक– नवमें भंग के समान यह भंग भी दो प्रदेश बीच में और दो दोनों किनारे यों चार प्रदेश समकक्ष में एक श्रेणी में रहने पर जघन्य चार प्रदेशी में यह भंग होता है।

11. चरम एक अवक्तव्य एक– दो प्रदेश एक श्रेणी में समकक्ष में हो और एक प्रदेश ऊपर या नीचे अन्य प्रत्तर में हो समकक्ष में न हो तो यह भंग होता है इसमें कम से कम तीन प्रदेशी स्कंध होना आवश्यक होता है।

12. चरम एक अवक्तव्य अनेक– ग्यारहवें भंग के समान यह भंग भी है किन्तु उसमें एक प्रदेश भिन्न प्रतर में होता है इसमें दो प्रदेश भिन्न प्रत्तरों में होते हैं अर्थात् एक ऊपर की प्रतर में अकेला, एक नीचे की प्रतर में अकेला और बीच की प्रतर में समकक्ष में दो प्रदेश होते हैं। वे समकक्ष वाले एक चरम है और ऊपर नीचे वाले दो अवक्तव्य है। इस प्रकार यह भंग कम से कम चार प्रदेशी स्कंध में होता है।

13. चरम अनेक अवक्तव्य एक- दो प्रदेश एक प्रतर में समकक्ष हो फिर दो प्रदेश दूसरे प्रतर में समकक्ष और तीसरे प्रतर में एक प्रदेश अकेला हो तब दो प्रतरों में चरम अनेक बने और तीसरे प्रतर में अकेला रहा प्रदेश एक अवक्तव्य है। इस प्रकार यह भंग कम से कम पांच प्रदेशी स्कंध में होता है।

14. चरम अनेक अवक्तव्य अनेक- यह भंग तेरहवें भंग के समान है फर्क यह है कि उसमें अकेला एक तीसरे प्रतर में होता है और इसमें एक अकेला ऊपर के प्रतर में एक अकेला नीचे के प्रतर में होता है बीच के दो प्रतरों में दो दो प्रदेश होते हैं इस प्रकार यह भंग कम से कम 6प्रदेशी स्कंध में पाया जाता है।

15 से 18भंग- ये चार भंग अचरम अवक्त्तव्य के हैं इनमें चरम नहीं है और चरम के बिना अचरम नहीं होता है। अतः अचरम अवक्तव्य के ये चारों भंग शून्य है भंग मात्र है, यहां इनका कोई उपयोग नहीं है।

19. चरम एक अचरम एक अवक्तव्य एक- सातवें भंग के समान यह भंग है इसमें विशेषता यह है कि एक प्रदेश अन्य ऊपर नीचे की प्रतर से अधिक होता है वह अवक्तव्य होता है। तब यह भंग कम से कम 6प्रदेशी स्कंध में बनता है।

20. चरम एक अचरम एक अवक्तव्य अनेक- यह भंग 19वें भंग के समान है किन्तु इसमें अकेला एक प्रदेश ऊपरी प्रतर में, एक नीचली प्रतर में, यों दो अवक्तव्य होते हैं। अतः यह भंग कम से कम सात प्रदेशी स्कंध में पाया जाता है।

21. चरम एक अचरम अनेक अवक्त्तव्य एक- यह भंग 19वें भंग के समान है किन्तु इसमें बीच में दो प्रदेश होते है चौतरफ चार और एक एक ऊपर होता है जिसमें बीच वाले दो अनेक अचरम होते हैं चौतरफ चार एक चरम होते है भिन्न प्रतर में ऊपर रहा एक प्रदेश अवक्तव्य होता है इस प्रकार यह भंग कम से कम सात प्रदेशी स्कंध में पाया जाता है।

22. चरम एक अचरम अनेक अवक्त्तव्य अनेक-- यह भंग 21वें भंग के समान है इसमें विशेषता यह है कि एक ऊपर के प्रतर में और एक नीचे के प्रतर में यो दो अवक्तव्य होते हैं शेष 6समकक्ष में 21वें भंग के समान रहते हैं। इस प्रकार यह भंग 2+4+2 = 8प्रदेशों से अर्थात् कम से कम आठ प्रदेशी स्कंध में पाया जाता है।

23. चरम अनेक अचरम एक अवक्तव्य एक- एक प्रदेश बीच में दो प्रदेश किनारे यों तीन प्रदेश एक प्रतर में एक श्रेणी में हो और एक प्रदेश भिन्न प्रतर में अकेला हो तब बीच का एक अचरम, किनारे के दो चरम और अकेला एक अवक्तव्य होता है। इस प्रकार कम से कम चार प्रदेशी स्कंध में यह भंग बनता है।

24. चरम अनेक अचरम एक अवक्तव्य अनेक- तेबीसवें भंग के समान है किंतु भिन्न प्रतर में ऊपर एक प्रदेश एवं नीचे भी भिन्न प्रतर में एक प्रदेश हो तो ये दो अवक्तव्य हो जाते है अतः यह भंग कम से कम पांच प्रदेशी स्कंध में पाया जाता है।

25. चरम अनेक अचरम अनेक अवक्तव्य एक- दो प्रदेश बीच में दो किनारे यों चार प्रदेश समकक्ष में एक श्रेणी में हो तो दो चरम दो अचरम होते हैं; एक प्रदेश ऊपर या नीचे के प्रतर में अकेला हो तो एक अवक्तव्य होता है इस प्रकार यह भंग कम से कम पांच प्रदेशी स्कंध में पाया जाता है।

26. चरम अनेक अचरम अनेक अवक्तव्य अनेक- पच्चीसवें भंग के समान है फर्क यह है कि उसमें अवक्तव्य एक है इसमें अवक्तव्य दो है। अतः एक ऊपर के प्रतर में एक नीचे प्रतर में अकेला प्रदेश होता है तब अनेक अवक्तव्य होते हैं। शेष चार प्रदेश एक श्रेणी में 25वें भंग के समान रहते हैं तब यह भंग कम से कम 6प्रदेशी स्कंध में पाया जाता है।

नोट- यह 26भंगों का स्वरूप ध्यानपूर्वक समझ लेने पर परमाणु आदि में पाये जाने वाले भंग सहज समझ में आ जाते हैं।

परमाणु आदि में भंग-

नाम	भंग संख्या	विवरण
1. परमाणु में	1	1. तीसरा
2. द्विप्रदेशी में	2	1. पहला 2. तीसरा
3. तीन प्रदेशी में	4	1. पहला 2. तीसरा 3. नवमां 4. ग्यारहवां
4. चार प्रदेशी में	7	1. पहला 2. तीसरा 3. नवमां 4. दसवां 5. ग्यारहवां, 6बारहवां 7. तेबीसवां
5. पांच प्रदेशी में	11	सात ऊपरोक्त एवं 8. सातवां 9. तेरहवां 10. चौबीसवां, 11 पच्चीसवां
6. छः प्रदेशी में	15	ग्यारह ऊपरोक्त एवं 12. आठवां 13. चौदहवां 14. उन्नीसवां 15. छब्बीसवां
7. सात प्रदेशी में	17	15. ऊपरोक्त एवं 16. बीसवां 17. इक्कीसवां
8. आठ प्रदेशी में	18	17 ऊपरोक्त एवं 18बावीसवां।
9. संख्यात प्रदेशी	18	आठ प्रदेशी के समान
10. असंख्यात प्रदेशी	18	,, ,,
11. अनंत प्रदेशी	18	,, ,,

विशेष- 1. कम प्रदेशी स्कंध में पाया जाने वाला भंग अधिक प्रदेशी में अवश्य पाया जाता है। किन्तु अधिक प्रदेशी में पाये जाने वाले भंग कम प्रदेशी में कोई होते हैं कोई नहीं होते हैं। यह ऊपरोक्त वर्णन एवं चार्ट से स्पष्ट होता है।

2. परमाणु आदि में बताये हुए ये भंग कोई भी समझ में न आवे तो उस भंग नं. की परिभाषा अच्छी तरह पढ़ लेनी चाहिए।

3. 26 भंग में से पाने वाले भंग 18 ही कहे गये हैं, शेष भंग किसी भी स्कंध में होना सम्भव नहीं है। वे भंग केवल पृच्छा मात्र ही है। नहीं पाये जाने का कारण उसकी परिभाषा में स्पष्ट कर दिया गया है। वे आठ भंग ये है- 1. दूसरा 2. चौथा 3. पांचवा 4. छट्ठा 5. पंद्रहवा 6. सोलहवां 7. सतरहवां 8. अठारहवा।

संस्थान की चरमा चरम वक्तव्यता-

पुद्‌गलो के संस्थान पांच है- 1. परिमंडल 2. वृत्त 3. त्रिकोण 4. चौकोन 5. आयत इनके भी पुनः पांच प्रकार है--

1. संख्यात प्रदेशी संख्यात प्रदेशावगाढ़
2. असंख्यात प्रदेशी संख्यात प्रदेशावगाढ
3. असंख्यात प्रदेशी असंख्यात प्रदेशावगाढ
4. अनंत प्रदेशी संख्यात प्रदेशावगाढ
5. अनंत प्रदेशी असंख्यात प्रदेशावगाढ

ये कुल संस्थान के 5 × 5 = 25 प्रकार है। इन 25 में चरमादि 6 बोल की पृच्छा रत्नप्रभा पृथ्वी के समान संपूर्ण वक्तव्यता है अर्थात् द्रव्यादेश से 6ही विकल्पों का निषेध है, विभागादेश से चार विकल्प है और उनकी अल्पाबहुत्व है। विशेषता यह है कि संख्यात प्रदेशावगाढ़ में असंख्यात गुणा के स्थान पर संख्यातगुणा कहना। असंख्यात प्रदेशावगाढ़ में पूर्णतया रत्नप्रभा के समान है। अनंत प्रदेशी असंख्यात प्रदेशी के समान है अर्थात् वह क्षेत्रापेक्षया (अवगाहना की अपेक्षा) समान है द्रव्यापेक्षया द्रव्य अनंतगुणे कहना। यथा- सबसे थोड़ा एक अचरम उससे चरम असंख्यात गुणे (क्षेत्रापेक्षा) द्रव्यापेक्षा चरम द्रव्य अनंतगुणे है। उससे अचरम और चरम द्रव्य मिलकर विशेषाधिक है।

इस प्रकार सभी संस्थाओं के चरमाचरम भंग और उनकी अल्पाबहुत्व समझना।

गति आदि में चरिम अचरिम दो पदों की वक्तव्यता-

गति आदि 11 बोल हैं- 1. गति 2. स्थिति 3. भव 4. भाषा 5. श्वासोश्वास 6. आहार 7. भाव 8. वर्ण 9. गंध 10. रस 11. स्पर्श। इन 11 बोलों की अपेक्षा नरकादि 24 दंडक के एक जीव और अनेक जीव चरिम भी होते हैं और अचरिम भी होते हैं। केवल पांच स्थावर में भाषा का बोल नहीं होता है अतः उसकी अपेक्षा 19 दंडक में चरिम अचिरम होते हैं।

यथा- नारकी जीव गति की अपेक्षा चरिम भी है अचरिम भी है यावत् स्पर्श की अपेक्षा चरिम भी है और अचरिम भी है इसी तरह भवनपति देव गति की अपेक्षा चरिम भी है और अचरिम भी है इसी तरह भवनपति देव गति की अपेक्षा चरिम भी है अचरिम भी है चावत स्पर्श की अपेक्षा चरिम भी है अचरिम भी है।

ग्यारहवां 'भाषा' पद

1. भाषा वस्तु-तत्त्व का बोध कराने वाली होती है। किसी भी व्यक्ति के भाव को, आशय को जानने समझने में भाषा अत्यंत सहयोग कारिणी उपकारिणी होती है।

2. भाषा जीव के होती है अजीव के नहीं होती। कभी जीव के भाषा प्रयोग में अजीव माध्यम बन जाता है। किन्तु स्वयं अजीव भाषक नहीं है। उसमें पर प्रयोग से या विकार से ध्वनि शब्द-आवाज हो सकती है किन्तु कंठ ओष्ठ आदि अवयवों के संयोग जन्य वचन विभक्ति रूप भाषा उनके नहीं होती।

3. जीवों में भी एकेन्द्रिय जीव अभाषक है उनके भाषा नहीं होती क्योंकि बोलने का साधन मुख, जीव्हा, कंठ, ओष्ट उनके नहीं होता।

4. पांच शरीर में औदारिक वैक्रिय एवं आहारक शरीर से भाषा की उत्पत्ति हो सकती है।

5. भाषा 4 प्रकार की होती है- 1. सत्य 2. असत्य 3. मिश्र 4. व्यवहार। पर्याप्तिनी अपर्याप्तिनी के भेद यह दो प्रकार की कही गई है। सत्य असत्य भाषा पर्याप्तिनि (परिपूर्ण) है। मिश्र व्यवहार अपर्याप्तिनि कही गई है।

6. नारकी देवता मनुष्य में चारों प्रकार की भाषा है। एकेन्द्रिय में एक भी नहीं है बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौरेन्द्रिय पंचेन्द्रिय तिर्यंच में एक व्यवहार भाषा होती है। सन्नी तिर्यन्च में जो मनुष्यों द्वारा पढ़ाये, अभ्यास कराये हुए, होशियार किये पशु पक्षी होते हैं, उनमें चारों ही भाषा हो सकती है।

7. इह लोक परलोक की आराधना कराने में सहायक होने से मुक्ति प्राप्त करने वाली भाषा 'सत्य भाषा' है। इसके विपरीत मुक्ति मार्ग की विराधना कराने वाली भाषा असत्य है। मिश्र भाषा में दोनों अवस्था होती है अतः वह भी अशुद्ध है आज्ञा देने वाली, संबोधन करने वाली इत्यादि व्यवहारोपयोगी सत्य असत्य से परे रहने वाली भाषा व्यवहार भाषा है यथा- हे पुत्र ! उठो, पढ़ो आदि।

8. अबोध बालक नवजात बच्चा बोलते हुए भी यह नहीं जानता है कि मैं यह भाषा बोल रहा हूँ। वह यह भी नहीं जानता कि यह माता है पिता है आदि। उसी तरह पशु आदि नहीं जानते। यदि किसी को अवधिज्ञान आदि विशेष ज्ञान हो गया हो तो यह बालक, पशु आदि उक्त भाषा बोलने को जान सकते हैं कि यह मैं भाषा बोल रहा हूँ।

9. स्त्री पुरूष आदि को व्यक्तिगत या जातिगत संबोधन करने वाली भाषा 'प्रज्ञापनी' भाषा कहीं गई हैं, जो कि अमृषा भाषा है अर्थात् व्यवहार भाषा है।

10. पुरूष शब्दों के उदाहरण– मनुष्य महिष, बैल, अश्व, हस्ती, सिंह, व्याघ्र, गधा, सियाल, विराल (बिल्ला), कुत्ता, चूहा, खरगोश, चीता आदि।

11. स्त्री शब्दों के उदाहरण– स्त्री भैंस, गाय, घोड़ी, हथिनि, सिंहनी, व्याघ्री, भेड़िनि, गधी, सियालनी (शृंगाली), बिल्ली, कुत्ती, चुहिया, खरगोशनी, चित्रकी आदि।

12. नपुंसक शब्दों के उदाहरण– कांस्य, शैल, स्तूप, तार, रूप, अक्षि, पर्व, दुग्ध, कुण्ड, दही, नवनीत, आसन, शयन, भवन, विमान, छत्र, चामर, भृंगार, अंगन (आंगन), आभरण, रत्न आदि।

13. स्त्री आदि दो प्रकार के होते हैं– 1. वेद मोह के उदय रूप या स्तन आदि अवयव वाली 2. भाषा शास्त्र की अपेक्षा स्त्री वचन आदि। ये उपरोक्त स्त्री आदि शब्द भाषा शास्त्रों की अपेक्षा है। भाषा शास्त्र में कहे स्त्री शब्द आदि के लक्षण उच्चारण प्रत्यय आदि इनमें पाये जाते हैं। स्त्री पुरूष के अवयव (शरीर) की अपेक्षा जो है वह इससे भिन्न है। अतः अपनी (भाषा शास्त्र की) अपेक्षा से ये शब्द असत्य नहीं है।

14. भाषा के पुद्गल स्कंधों का संस्थान आकार वज्र (डमरू) के सदृश होता है।

15. प्रयोग विशेष से बोली जाने वाली, ग्रहण किये भाषा पुद्गलों को अनेक विभाग करके निकालने वाली भाषा उत्कृष्ट लोकांत तक छहों दिशा में जाती है। सामान्य प्रयत्न से बोली जाने वाली भाषा संख्यात असंख्यात योजन तक जाकर नष्ट हो जाती है। प्रयत्न विशेष से एवं पुद्गलों को भेदाती हुई छोड़ी जाने वाली भाषा अन्य भाषा के पुद्गलों को भी भावित (वासित) करती है। भाषा रूप में परिणत करती हुई चलती है।

16. काय योग से भाषा के पुद्गल ग्रहण कर, वचन योग से भाषा बोली जाती है। भाषा वर्गणा के पुद्गल लेने-छोड़ने में कुल दो समय लगते हैं। स्थूल दृष्टि से वचन प्रयोग में कम से कम असंख्य समय लगता है। भाषा से बोले गये शब्द एक दूसरे को वासित करते हुए परंपरा से उत्कृष्ट असंख्यात काल तक लोक में रह सकते हैं। जघन्य अंतर्मुहुर्त रह सकते हैं। इस स्थिति के बाद ये पुद्गल पुनः अन्य परिणाम से परिणत हो जाते हैं।

17. सत्य भाषा के 10 प्रकार– 1. जनपद सत्य - यथा कोंकण देश में 'पय' को 'पिच्च' कह दिया तो यह जनपद सत्य है। 2. सम्मत सत्य - लोक प्रसिद्ध हो यथा पंकज = कमल। सैवाल, कीड़े आदि भी पंकज होते हैं किन्तु वे लोक सम्मत नहीं है। अतः कमल के लिए ''पंकज'' यह लोक सम्मत शब्द है 3. स्थापना सत्य - जो भी नाम रख दिया है वह नाम सत्य। यथा-महावीर, लक्ष्मी आदि। वह अर्थ गुण न भी हो तो वह नाम सत्य है। 5. रूप सत्य - बहुरूपिया जिस रूप में हो, उसे वह कहना रूप सत्य है। 6. प्रतीत्य (अपेक्षा) सत्य - किसी भी पदार्थ को किसी भी अपेक्षा छोटा कहना प्रतीत्य सत्य है। वहीं पदार्थ दूसरे की अपेक्षा बड़ा भी हो सकता है। 7. व्यवहार सत्य - गांव आ गया। ''पहाड़ जल रहा है'' इत्यादि। वास्तव मे गांव नहीं चलता, जीव चलता है। पहाड़ में रहे घास-फूस आदि जलते है। फिर भी यह व्यवहार सत्य भाषा है। 8. भाव सत्य - जो भाव गुण जिसमें प्रमुखता से पाया जाता है उससे उस पदार्थ को कहना भाव सत्य है। यथा - काली गाय। यह भाव सत्य है। यद्यपि पांचों वर्ण अष्ट स्पर्शी में होते है। फिर भी प्रमुख रंग से कहा जाना भाव सत्य है। इसी प्रकार अन्य गुणों की प्रमुखता के शब्द समझ लेना। 1. योग सत्य - दंड रखने वाले को दंडी आदि कहना योग सत्य है। 10 उपमा सत्य - उपमा देकर किसी को कहना यथा - सिंह के समान शौर्य वाले मानव को ''केशरी' कहना आदि। मन को घोड़ा कह देना आदि।

18. असत्य-भाषा के 10 प्रकार– 1. क्रोध 2. मान 3. माया 4. लोभ, 5. राग 6. द्वेष 7. हास्य 8. भय इन आठ के वशीभूत होकर अर्थात् इन विभावों के आधीन होकर जो असत्य भाषण किया जाता है वह क्रमशः क्रोध असत्य यावत् भय

असत्य है। 9. कथा, घटना, आदि वर्णन करते समय बात जमाने के लिये या भाव प्रवाह में अथवा अतिशयोक्ति प्रयोग वश असत्य कथन कर देना ''आख्यायिक असत्य'' है। 10. दूसरी के हृदय को चोट पहुचांने के लिए असत्य वचन प्रयोग करना ''उपघात असत्य'' है।

19. मिश्र भाषा के 10 प्रकार– 1. जन्म 2. मरण 3. जन्म-मरण की संख्या के संबध से कुछ सत्य कुछ असत्य वचन कहना। 4-5-6. जीव, अजीव और जीवजीव के संबंधी किसी प्रकार का सत्यासत्य कथन करना। 7-8. अनंत और प्रत्येक के संबंधी मिश्र भाषा का प्रयोग करना। 9-10 काल, संबंधी और कालांश अर्थात् सूक्ष्म काल संबंधी सत्यासत्य कथन करना इत्यादि मिश्र भाषा के प्रकार है। अन्य भी अनकों प्रकार हो सकते हैं, उन सब का अपेक्षा से इन दस भेदों में समावेश कर लेना चाहिये।

20. व्यवहार भाषा के 12 प्रकार– 1. संबोधन सूचक वचन 2. आदेश वचन 3. किसी वस्तु के मांगने रूप वचन 4. प्रश्न पूछने के वचन प्रयोग 5. उपदेश रूप वचन या तत्त्व ज्ञान प्रदान करने वाले वचन 6. व्रत प्रत्याख्यान के प्रेरक वचन 7. दूसरों को सुखप्रद अनुकूल वचन सम्मान सूचक वचन 8. अनिश्चय कारी भाषा में अर्थात् वैकल्पिक भाषा में सलाह वचन 9. निश्चयकारी भाषा में सलाह वचन यथा- 1. इन-इन तरीकों में से कोई भी तरीका में से कोई तरीका अपना लेना चाहिये 2. यह तरीका अपनाना ही उपयुक्त रहेगा। 10. अनेकार्थक संशयोत्पादक वचन प्रयोग करना 11. स्पष्टार्थक वचन 12. गूढ़ार्थक वचन।

21. विविध प्रसंगोपात ये अनेक प्रकार– की भाषाएं बोली जाती है। गूढ़ार्थक अनेकार्थक (संशयोत्पादक) वचन भी आवश्यक प्रसंग पर बोले जाते हैं। इसके बोलने में असत्य से बचने का भी कारण निहित होता है। ये वचन असत्य नहीं है एवं सत्य के विषय से भी परे हैं। अर्थात् हे शिष्य, इधर आओ, सदा नवकारसी का प्रत्ययाख्यान करना चाहिये। ये वचन सत्य एवं असत्य के अविषयभूत है। किन्तु व्यवहारोपयोगी वचन है।

इसके अतिरिक्त जो पशु पक्षी एवं छोटे जीव जन्तु अव्यक्त वचन प्रयोग करते है, वे भी व्यवहार भाषा के अंतरगत समाविष्ट है क्योंकि उन्हें उन अव्यक्त वचनों का झूठ सत्य या मिश्र भाषा से कोई वास्ता नहीं होता है।

इस प्रकार इस व्यवहार भाषा की परिभाषा यह निष्पन्न हुई कि जो वचन अव्यक्त हो, व्यवहरोपयोगी हो और जिनका झूठ, सत्य एवं मिश्र से कोई वास्ता न हो वह व्यवहार भाषा है। 21. दशवैकालिक सूत्र अध्ययन 4 के अनुसार जीव यतना पूर्वक चलना बोलना खाना आदि प्रवृत्तिये करते हुए भी अपेक्षित पाप कर्म का बंध नहीं करता है। भगवती सूत्र के अनुसार उपयोग पूर्वक ईर्या शोधन करते हुए अणगार के पांव के नीचे सहसा पंचन्द्रिय प्राणी दब जाय तो भी उस अणभार को उस जीव विराधना संबंधी सावध सपाप क्रिया नहीं लगती है।

उसी प्रकार इस भाषा पद में भी यह समझाया गया है कि उपयोग पूर्वक बोलते हुए भी यदि असत्य या मिश्र भाषा का सहसा प्रयोग हो जाय तो भी वह जीव विराधक नहीं होता है किन्तु जो जीव असंयत अविरत है असत्य मिश्र किसी भी वचन का जिसके न त्याग है और न ही वैसे वचन नहीं बोलने का कोई संकल्प है, वह विवेक, और जागरूकता रहित व्यक्ति सत्य एवं व्यवहार भाषा बोलता हुआ भी आराधक नहीं है अपितु विराधक है। अर्थात् जागरूकता वाले एवं भाषा के विवेक में उपयोग वंत व्यक्ति के द्वारा कदाचित चारों में कोई भी भाषा का प्रयोग हो जाये तो भी वह आराधक है। एवं लक्ष्य रहित, विवेक एवं उपयोग रहित, असत्य के त्याग रूप विरति से रहित, व्यक्ति के द्वारा चारों में से कोई भी भाषा का प्रयोग हो जाय तो भी वह आराधक नहीं गिना जाता अपितु विराधक गिना जाता है।

इसका तात्पर्य यह है कि भूल को क्षम्य माना जा सकता है किन्तु अविवेक लापरवाही आदि क्षम्य नहीं गिनी जाती है।

अतः वचन प्रयोग करने वाले सत्यार्थी व्यक्ति को भाषा संबंधी इन प्रयोगों का ज्ञान अवश्य रखना चाहिये तथा वक्ता या प्रवचनकार मुमुक्षु आत्माओं को उक्त चार प्रकार की भाषा के भेद प्रभेद और परमार्थ का ज्ञान एवं अनुभव भी हासिल करना चाहिये। साथ ही इन आगे कहे जाने वाले 16प्रकार के वचन प्रयोगों का भी ज्ञान एवं अभ्यास करना चाहिये।

22. सौलह प्रकार के वचन- 1. एक वचन के प्रयोग 2. द्विवचन के प्रयोग 3. बहुवचन के प्रयोग 4. स्त्री वचन 5. पुरूष वचन 6. नपुंसक वचन 7. आध्यात्म वचन - वास्तविक अंतर भाव के वचन - सहज स्वभाविक सरलता पूर्ण वचन 8. गुण प्रदर्शक वचन 9. अवगुण प्रदर्शक वचन 10. गुण बताकर अवगुण प्रकट करने के वचन 11. अवगुण कह कर फिर गुण प्रकट करने वाले वचन 12. भूतकालिक वचन प्रयोग 13. वर्तमान कालिक वचन प्रयोग 14. भविष्यकालिक वचन प्रयोग 15. प्रत्यक्षीभूत विषय के वचन प्रयोग 16. परोक्ष भूत विषय की कथन पद्धति

इत्यादि प्रकार के वचनों का प्रयोग कब कहां किस प्रकार किया जाता है, कब कौन सी क्रिया का, शब्द लिंग का, वचन का प्रयोग किया जाता है इस विषयक भाषा ज्ञान करना उसका अभ्यास एवं अनुभव करना भी आराधक भाषा प्रयोग के इच्छुक साधक को एवं विशेषकर वक्ताओं को अपना आवश्यक कर्त्तव्य समझना चाहिये।

23. ग्रहण योग्य भाषा द्रव्यों सम्बन्धी तात्त्विक ज्ञान- 1. वचन प्रयोग हेतु भाषा वर्गणा के पुद्‌गल ग्रहण किये जाते है, अन्य वर्गणा के नहीं 2. स्थान-स्थित पुद्‌गल ग्रहण किये जाते, चलायमान नहीं।

3. अनंत प्रदेशी पुद्‌गल ग्रहण किये जाते, असंख्यात प्रदेशी आदि नहीं। 4. असंख्य आकाश प्रदेश की अवगाहना वाले पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं। 5. उन पुद्‌गल समूह में कई स्कंध एक समय की स्थिति वाले भी हो सकते हैं, उत्कृष्ट असंख्य समय की स्थिति वाले भी हो सकते है। 6. वे पुद्‌गल चौफर्शी (चार स्पर्श वाले) होते हैं अर्थात् उनमें वर्णादि 16 बोल (5 वर्ण 2 गंध 5 रस और 4 स्पर्श) पाये जाते हैं। 7. वे पुद्गल एक गुण काले भी हो सकते हैं यावत् अनंत गुण काला भी हो सकते है। इसी प्रकार 16 ही बोल एक गुण यावत् अनंत गुण समझ लेना। 8. जो भाषा वर्गणा के पुद्‌गल जीव के स्पर्श में है अर्थात् जिस शरीर में आत्मा रही हुई उस शरीर से स्पर्शित एवं अवगाहित है उन्हें ग्रहण किया जाता है अन्य अनवगाढ़ या अस्पर्शित को नहीं।

कण्ठ ओष्ट के निकटतम अनंतर है उन्हें ग्रहण किया जाता है परंपर को नहीं, 9. वे पुद्गल छोटे भी हो सकते हैं बड़े भी हो सकते हैं। 10. अवगाढ़ छहों दिशाओं से ग्रहण किये जाते हैं। भाषा प्रयोग के प्रारम्भ में मध्य में और अंत में जब तक बोलना है तब तक सभी समयों में भाषा वर्गणाा के पुद्‌गल ग्रहण करना रूक सकता है। 11. पहले समय में जो भाषा द्रव्य ग्रहण होते हैं उनका दूसरे समय में निःस्सरण (छोड़ना) होता है, दूसरे समय में जिनका ग्रहण होता है उनका तीसरे समय में उनका निस्सरण होता है। 12. लगातार असंख्य समय तक ग्रहण निस्सरण हुए बिना स्वर या व्यजनों की अर्थात् अक्षरों की निष्पत्ति नहीं होती है। 13. प्रथम समय में केवल ग्रहण ही होता है निस्सरण नहीं होता। अंतिम समय में केवल निस्सरण होता है और बीच के समयों में ग्रहण निस्सरण दोनों क्रियाएं होती है। एक समय में उपयोग एक ही होता हैं, मिथ्यात्व और सम्यक्त्व ऐसी विरोधी क्रियाएं एक साथ नहीं होती है किन्तु कई प्रकृति का बंध, उदय, उदीरणा, निर्जरा आदि विभिन्न क्रियाएं होती रहती है।

24. सत्य असत्य आदि जिस रूप में भाषा वर्गणा के पुद्‌गल ग्रहण किये जाते है उसी रूप में उनका निस्सरण होता है अन्य रूप में नहीं।

25. स्वविषय के अर्थात् भाषा के योग्य पुद्‌गल ग्रहण किये जाते है अन्य नहीं। वे पुद्‌गल अनुक्रम प्राप्त ग्रहण किये जाते हैं। व्युत्क्रम से नहीं।

26. भाषा वर्गणा के योग्य पुद्गल भेदाते (भेद होते हुए) निकलते हैं तो वह पुद्गल भेद पांच प्रकार का हो सकता है 1. खण्डा भेद-लोहा ताम्बा चांदी सोना आदि के खंड होने की तरह। 2. प्रतर भेद - बांस, बेंत, कदली, अभरक (भोडल) आदि के भेद की तरह 3. चूर्ण भेद - पीसे हुए पदार्थों के समान चूर्ण बन जाना 4. अणुतडिया भेद - जल स्थानों में पानी के सूख जाने पर मिट्टी में तिराड़े पड़ जाने के समान 5. उक्करिया भेद - मसूर, मूंग, उडद, तिल, चवला आदि फलियों के फटने रूप भेद के समान।

भाषा वर्गणा के पुद्गलों में ये पांच प्रकार के भेद हो सकते है इनकी अल्पाबहुत्व इस प्रकार है- 1. सबसे थोड़ा उक्करिया (उत्कटिका) भेद वाले 2. अनुतदिका भेद वाले अनंत गुणे, 3. चूर्ण भेद वाले उससे अनंत गुणे, 4. उससे प्रतर भेद वाले अनंत गुणा 5. उससे खंडा भेद वाले असंख्य गुणे।

27. यह समुच्चय जीव की अपेक्षा जो भी कथन किया गया है उसे नरकादि 24 दंडक में यथा योग्य समझ लेना चाहिये अर्थात् जहां जो भाषा होती है उस दंडक में उस भाषा के आश्रय से कथन कर लेना चाहिये। एकेन्द्रिय अभाषक है अतः उनका कोई भी कथन नहीं किया जाता है। शेष 19 दंडक कथन करना ही यहां अपेक्षित है।

बारहवां ''बद्ध-मुक्त-शरीर'' पद

चार गति में भ्रमण करने वाले समस्त जीव सशरीरी होते हैं। शरीर रहित बने हुए जीव निज आत्म स्वरूप को प्राप्त कर सदा सदा के लिये जन्म मरण के इस संसार से मुक्त हो जाते हैं। संसार में रहने वाले जीवों के एक ही शरीर या एक समान शरीर नहीं होता है वे विभिन्न अनेक शरीर वाले होते हैं वे शरीर कुल पांच कहे गये है - 1. औदारिक 2. वैक्रिय 3. आहारक 4. तेजस 5. कार्मण।

औदारिक शरीर- उदार = प्रधान शरीर या स्थूल शरीर अथवा विशाल शरीर। यह शरीर संसार में अधिकतम याने अनंतगुणे जीवों के होता है। तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि महापुरूषों के भी यह शरीर होता है। इसलिये भी इस शरीर की प्रमुखता या प्रधानता कही गई है। सबसे बड़ी प्रधानता - महत्ता तो इस शरीर की यह है कि इस शरीर के माध्यम से जीव संसार सागर से तिर कर सदा के लिये मुक्त हो सकता है। अतः देवता भी इस शरीर मय जीवन की चाहना करते हैं, ऐसा यह प्रथम औदारिक शरीर तिर्यंच मनुष्य के होता है।

वैक्रिय शरीर- जो शरीर विविध एवं विशेष प्रकार की क्रिया कर सकता है अर्थात् नये नये अनेक रूप धारण कर सकता है। वह विशेष क्रिया वाला ''वैक्रिय शरीर'' है। यह नारक देवों को जन्म से ही प्राप्त होता है। मनुष्य तिर्यंचों में भी किसी किसी को विशिष्ट क्षयोपशम से प्राप्त होता है। वायुकाय के जीवों को भी यह शरीर स्वभाव से प्राप्त होता है।

आहारक शरीर- जिन प्ररूपित किन्हीं स्थलों को प्रत्यक्ष देखने की जिज्ञासा से अथवा किन्हीं तत्त्वों में उत्पन्न शंका का समाधान प्राप्त करने के लिये यह शरीर बनाया जाता है। आहारक लब्धि संपन्न अणगार के यह शरीर हो सकता है। 14 पूर्वों के ज्ञान वाले को ही यह आहारक लब्धि होती है और वह लब्धि सम्पन्न अणगार सर्वज्ञ वीतराग प्रभू से सुदूर क्षेत्र में प्रत्यक्षीकरण कर तत्त्वों का समाधान प्राप्त करने के लिये लब्धि का प्रयोग कर आहारक शरीर का एक पूतला बना कर भेजता है। वह पूतला ही आहारक शरीर है। समाधान प्राप्त कर वह पूतला पुनः यथास्थान आ जाता है। इसी प्रकार आगम वर्णित नंदीश्वर द्वीप, मेरू पर्वत आदि स्थलों को भी प्रत्यक्ष देख कर यह आहारक शरीर का पुतला पुनः आ जाता है। आने, जाने, देखने, पूछने की समस्त क्रिया में उस आहारक शरीर को अंतमुहुर्त का समय लगता है। क्योंकि इस आहारक शरीर की उत्कृष्ट स्थिति अंतर्मुहुर्त की ही है। अवगाहना उत्कृष्ट एक हाथ की होती है।

तैजस शरीर- यह औदारिक या वैक्रिय शरीर के साथ में रहता है आहार के पाचन क्रिया का, रस रक्त धातु आदि के निर्माण का एवं संचालन का कार्य करता है। औदारिक या वैक्रिय पूरे शरीर में यह व्याप्त रहता है एवं संसार के समस्त जीवों के अनादि काल से होता है। मोक्ष जाने पर ही यह शरीर आत्मा का साथ छोड़ता है। मृत्यु पाकर जीव जब औदारिक या वैक्रिय शरीर को वही छोड़कर पर भव में जाता है तब भी यह शरीर आत्मा के साथ ही रहता है। इसका शरीर में प्रमुख स्थान और कर्तव्य जठराग्नि का है इसलिये इसका नाम तैजस शरीर है।

कार्मण शरीर- कर्मों के भंडार रूप, संग्रह रूप, पेटी रूप, जो शरीर है अर्थात् जिस शरीर में आत्मा के समस्त कर्मों की सभी प्रकार का विभाग का संग्रह रहता है वह कार्मण शरीर है। यह शरीर भी तैजस शरीर के समान संसार के समस्त जीवो के साथ अनादि से है और मुक्त अवस्था प्राप्त करने के पूर्व तक रहेगा। इस प्रकार यह शरीर कर्मों का संग्राहक एवं आत्मा के संसार भ्रमण संचालन का वाहक है।

चौबीस दंडक में शरीर- नारकी देवता में तीन शरीर होते हैं- 1. वैक्रिय 2. तैजस 3. कार्मण। वायुकाय एवं तिर्यंच पंचेन्द्रिय में चार शरीर होते हैं - 1. औदारिक 2. वैक्रिय 3. तेजस 4. कार्मण। सन्नी मनुष्य में पांचों ही शरीर होते हैं। शेष 4. स्थावर 3 विकेन्द्रिय आदि में तीन शरीर होते हैं - 1. औदारिक 2. तैजस 3. कार्मण।

पांचों शरीरों की संख्या प्रमाण उपमा द्वारा-

पांचों शरीर दो दो प्रकार के है- 1. बद्ध (जीव के साथ रहे हुए) 2. मुक्त (जीव से छूटे हुए)

औदारिक बद्धमुक्त शरीर- 1. बद्ध (बद्धेलक) शरीर संख्या माप से असंख्याता है। काल माप से असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के समय तुल्य है। क्षेत्र माप की अपेक्षा सम्पूर्ण लोक का जितना क्षेत्र है वैसे असख्य लोक जितने क्षेत्र के आकाश प्रदेशों की संख्या के तुल्य है।

2. मुक्केलग (जीव से छूटे हुए) औदारिक शरीर अनंत है अर्थात् आत्मा से छूटते ही एक शरीर के अनंत विभाग हो जाते हैं। अतः असंख्य बद्धेलक होते हुए भी मुक्केलग अनंत कहे हैं। ये शरीर के मुक्केलग जब तक अन्य परिणाम को प्राप्त नहीं हो जाते तब तक पूर्व शरीर के मुक्केलग ही गिने जाते हैं ऐसे औदारिक के मुक्केलग संख्या की अपेक्षा अनंत है, काल माप की अपेक्षा अनंत उत्सर्पिणी के समय तुल्य है, क्षेत्र माप की अपेक्षा लोक जितने अनंत लोक हों, उनके जितने आकाश प्रदेश होवें, उसके तुल्य है एवं द्रव्य माप की अपेक्षा ये औदारिक मुक्केलग शरीर अभव्यों की संख्या से अनंतगुणे और सिद्धों की संख्या के अनतवें भाग जितने होते हैं।

वैक्रिय बद्ध मुक्त शरीर- वैक्रिय बद्धेलक शरीर संख्या से-असंख्य। काल से अंसख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के समय तुल्य। क्षेत्र से 14 राजू लम्बा और यत्र तत्र विभिन्न प्रमाण में चौड़ा यह लोक है इसे यदि कल्पना में घन कर दिया जाय ठोस एक पिंड बना दिया जाय तो सात राजू लम्बा चौड़ा जाड़ा घन बन जाता है। जिसका एक प्रतर भी सात राजू का लम्बा चौड़ा और एक प्रदेशी जाड़ा होता है उस प्रतर की एक श्रेणी सात राजू की लम्बी एक प्रदेश चौड़ी और एक प्रदेश जाड़ी होती है। एक प्रतर में ऐसी असंख्य श्रेणियां होती है और उस घन में वैसे असंख्य प्रतर होते हैं। उस सात राजू प्रमाण एक श्रेणी में अंसख्य आकाश प्रदेश होते हैं। ये भी असंख्य उत्सर्पिणी के समय तुल्य होते हैं। वैक्रिय शरीर के बद्धेलक ऐसी असंख्य श्रेणियों के प्रदेश तुल्य होते हैं। वे असंख्य श्रेणियां उस प्रतर की श्रेणियों के असंख्यातवें भाग जितनी समझना चाहिये। अर्थात् सूचि (एक प्रदेशी) प्रतर से असंख्यातवें भाग की असंख्य श्रेणियों के आकाश प्रदेश के तुल्य वैक्रिय शरीर के बद्धेलक होते हैं।

2. मुक्केलग शरीर संख्या से अनंत है जिनका स्वरूप द्रव्य क्षेत्र काल के कथन की अपेक्षा औदारिक के मुक्केलग के समान है अर्थात् अनंत का कथन सभी अपेक्षाओं में समान होते हुए भी उस अनंत में आपस में अंतर हो सकता है। अतः औदारिक के मुक्केलग से ये कम होते हैं।

आहारक बद्ध मुक्त शरीर– ऊपर बताया गया है कि लब्धिधारी मुनिराज के ही यह शरीर होता है अतः आहारक के बद्ध शरीर कभी होते हैं कभी नहीं होते। जब होते हैं तो जघन्य 1-2-3 उत्कृष्ट अनेक हजार हो सकते हैं अर्थात् एक साथ 5 भरत 5 ऐरावत 5 महाविदेह में आहारक शरीर बनाने वाले मुनिराजों का संयोग मिल जाय तो उत्कृष्ट 5-10 हजार भी हो सकते हैं। (1)

टिप्पण– 1. ''पुहुत्त'' शब्द सम्बन्धी जानाकरी एवं चर्चा विचारणा के लिये देखें - जीवाभिगम सूत्र का सारांश - परिशिष्ट विभाग।

2. मुक्केलग अनंत होते है। क्षेत्र काल आदि की कथन पद्धति औदारिक के समान है, फिर भी औदारिक से बहुत कम होते हैं।

तैजस कार्मण के बद्ध मुक्त शरीर– तैजस कार्मण शरीर सदा साथ ही रहते हैं और आत्मा के मोक्ष जाते समय ये दोनों साथ मे छूट जाते हैं। 1. इसके बद्धेलक अनंत है, क्षैत्र आदि का कथन औदारिक मुक्केलग के समान है किन्तु द्रव्य माप की अपेक्षा सर्व संसारी जीवों के तुल्य है, सिद्धों से अनंत गुणे है और सर्व जीवों के अनंतवें भाग (सिद्धों जितने) न्यून है। 2. इनके मुक्केलग भी अनंत हे। अनंत का क्षेत्र काल माप इसके ही बद्धेलक के समान है द्रव्य माप की अपेक्षा सर्व जीवों की संख्या से अनंत गुणा है एवं सर्व जीवों की संख्या का वर्ग किया जाय तो उस वर्ग राशि से अनंतवे भाग तुल्य तैजस कार्मण के मुक्केलग शरीर है।

चौबीस दंडक के बद्ध मुक्त शरीर–

नारकी– औदारिक शरीर का बद्धेलक नहीं है। मुक्केलग समुच्चय वत। वैक्रिय शरीर के बद्धेलक असंख्यात है अर्थात् घनीकृत लोक प्रतर के असख्यातवें भाग की असंख्य श्रेणियों के प्रदेश तुल्य। उन श्रेणियों का माप यह है कि एक अंगुल जितने श्रेणि क्षेत्र में जितने आकाश प्रदेश होते हैं उनका प्रथम वर्ग-मूल जो भी हो उसे दूसरे वर्ग मूल के साथ गुणा करने से जो गुणन फल आवे उतनी (असंख्य) श्रेणियां समझना। इसे कल्पित संख्या से इस प्रकार समझाया जाता है यथा- मानलो कि एक अंगुल क्षेत्र में 256 श्रेणी है। उसका प्रथम वर्गमूल 16 है दूसरा वर्गमूल 4 है। 16 को 4 से गुणा करने पर $16 \times 4 = 64$ गुणनफल आता हैं। इसी प्रकार असंख्य गुणनफल आयेगा।

वैक्रिय के मुक्केलग औदारिक के समान है। आहारक शरीर के बद्धेलक मुक्केलग इनके औदरिक के समान है। तैजस कार्मण के बद्धेलक मुक्केलग वैक्रिय के समान है।

भवनपति देवता– औदारिक और आहारक शरीर नारकी के समान है। वैक्रिय शरीर के बद्धेलक नारकी के समान है किन्तु श्रेणियों का माप - प्रथम वर्गमूल का संख्यातवा भाग समझना। जैसे 256 का प्रथम वर्गमूल 16 है इसकी संख्यातवां भाग 5-6 आदि है इसके समान असंख्य श्रेणियां है। अर्थात् नारकी से असुर कुमार (64/5) इतने कम हैं मुक्केलग नारकी के समान एवं तैजस कार्मण के बद्धेलक मुक्केलग वैक्रिय के समान है।

पांच स्थावर– पांचों स्थावर के औदारिक शरीर के बद्धेलक मुक्केलग समुच्चय औदारिक शरीर के समान है। औदारिक के समान ही तैजस कार्मण शरीर के बद्धेलक मुक्केलग शरीर है। वैक्रिय और आहार के बद्धेलक नहीं होते हैं। मुक्केलग इनके औदारिक के मुक्केलग के समान।

वायुकाय के वैक्रिय के बद्धेलक क्षेत्र पल्योपम के असंख्यातवें भाग के समय तुल्य असंख्य होते हैं। मुक्केलग समुच्चय वैक्रिय के समान है।

वनस्पतिकाय के तैजस कार्मण शरीर के बद्धेलक समुच्चय कार्मण शरीर के समान अनंत है और मुक्केलग भी अनंत है।

तीन विकलेन्द्रिय- औदारिक के बद्धेलक असंख्य है। घनीकृत लोक प्रतर के असंख्यातवें भाग की असंख्य श्रेणी के प्रदेश तुल्य। असंख्य श्रेणी का माप- 1. असंख्यात कोडाकोड योजन में जितनी श्रेणियां होवें, उतनी श्रेणियों के प्रदेश तुल्य बेइन्द्रिय है। 2. एक श्रेणी (एक प्रदेशी) में जितने आकाश प्रदेश है उनके वर्गमूल के वर्गमूल निकालते जावें असंख्य बार वर्गमूल निकलेंगे। असंख्य बार के सभी वर्ग मूलों की संख्या का जो योग आता है उतनी श्रेणियां जानना। 3. अंगुल के असंख्यातवे भाग जितने लम्बे चौड़े क्षेत्र में एक एक बेइन्द्रिय को रखा जाय तो सात राजू लम्बा चौड़ा प्रतर भर जाता है।

तेजस कार्मण औदारिक के समान है। वैक्रिय और आहारक शरीर के बद्धेलक नहीं होते हैं। मुक्केलग समुच्चय औदारिक के समान है।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय- विकलेन्द्रिय के समान ही पंचेन्द्रिय के बद्धेलक है। मुक्केलग भी पूर्व की तरह है। आहारक शरीर नहीं है। तेजस कार्मण के बद्धेलक मुक्केलग इसके औदारिक के समान।

एक श्रेणी के प्रदेशों के प्रथम वर्ग मूल के असंख्यातवें भाग में जितने आकाश प्रदेश हो उतने वैक्रिय शरीर के बद्धेलक होते हैं मुक्केलग समुच्चय के समान है।

मनुष्य- औदारिक शरीर के बद्धेलक कदाचित संख्याता होते हैं कदाचित् असंख्य होते हैं। संख्याता होवे इसका माप इस प्रकार है-

(1) संख्याता क्रोडाक्रोड अर्थात् (2) तीन यमल पद के ऊपर चार यमल पद से नीचे। (3) छट्ठा वर्ग को पांचवे वर्ग से गुणा करने पर जो राशि आवे (4) दो को दो से 96बार गुणा करने पर जो राशि आवे अथवा जिस राशि में 96बार दो का भाग जावे वह राशि। यह राशि सन्नी मनुष्य की अपेक्षा उत्कृष्ट राशि है। जघन्य इससे कुछ कम मनुष्य सदा मिलते है।

असन्नि मनुष्यों की अपेक्षा असंख्याता बद्धेलक होते हैं। उसका माप इस प्रकार है- अंगुल जितने श्रेणी क्षेत्र में जितने आकाश प्रदेश हों उसके पहले वर्गमूल को तीसरे वर्गमूल से गुणा करने पर जो असंख्य राशि आवे उतनी लम्बाई चौड़ाई के क्षेत्र में एक एक असन्नि मनुष्य को रखा जाये, तो एक प्रदेशी 7 रजु की लम्बी श्रेणी सम्पूर्ण भर जाय, उतनी राशि में एक कम करने से जो राशि आती है, उतने असन्नी मनुष्य असंख्यात उत्कृष्ट हो सकते हैं अर्थात् एक प्रदेशी श्रेणी के असंख्यातवें भाग के प्रदेश तुल्य। जघन्य तो एक दो तीन भी हो सकते और पूर्ण विरह भी पड़ता है।

यमल पद-वर्ग- दो को दो से गुणा करने पर प्रथम वर्ग 4 है। चार को चार गुणा करने पर द्वितीय वर्ग 16है इस तरह तीसरा वर्ग 256चौथा वर्ग 65536है पांचवां वर्ग 4294967296और छट्ठा वर्ग 18446744073709591616दो वर्ग का एक यमल होता है इन छः वर्गों के तीन यमल पद हुए। अर्थात् छट्ठे वर्गकी संख्या तीसरा यमल पद है इससे ऊपर और चौथे यमल पद के नीचे मनुष्यों की संख्या है। जो पांचवे वर्ग को छट्ठे वर्ग से गुणा करने पर प्राप्त होने वाली राशि है। वह राशि 29 अंकों में इस प्रकार है- 79228162514264337593543950336

इस राशि में 96बार दो का भाग देने पर अंत में 'एक' प्राप्त होगा अतः इसे छियानवे छेदनक दाई राशि कहा है।

मनुष्य में वैक्रिय शरीर के बद्धेलक संख्याता है और मुक्केलग औदारिक के मुक्केलग के समान है। आहरक शरीर के बद्धेलक मुक्केलग शरीर समुच्चय आहारक समान है। तैजस कार्मण के बद्धेलक मुक्केलग इसके औदारिक शरीर के बद्ध मुक्त के समान होते हैं।

व्यन्तर देव- औदारिक और आहारक के बद्धेलक मुक्केलग नारकी के समान है। वैक्रिय शरीर के बद्धेलक विकलेन्द्रिय के औदारिक बद्धेलक के समान है किन्तु विशेषता यह है कि अंगुल के असंख्यातवें भाग में एक बेइन्द्रिय को रखने का कहा गया किन्तु व्यंतर देव को संख्यात सौ योजन लम्बे चौड़े क्षेत्र में एक एक को रखा जाय तो 7 राजू लम्बा चौड़ा प्रतर क्षेत्र भर जाता है। मुक्केलग समुच्चय वैक्रिय के समान है। तैजस कार्मण के बद्धेलक मुक्केलग शरीर इसके वैक्रिय के समान होते हैं।

ज्योतिषी देव- सम्पूर्ण कथन व्यंतर के समान है, विशेषता यह है कि, 256योजन लम्बे चौड़े क्षेत्र प्रतर में एक ज्योतिषी को रखा जाय तो 7 रज्जू लम्बा चौड़ा प्रतर पूर्ण भर जाता है। इतने (असंख्यात) ज्योतिषी देव के वैक्रिय शरीर के बद्धेलक हैं।

वैमानिक देव- वैक्रिय के असंख्यात बद्धेलक का प्रमाण-अंगुल जितने क्षेत्र की श्रेणी में जितने आकाश प्रदेश है उसके द्वितीय वर्गमूल को तीसरे वर्ग मूल से गुणा करने पर जितनी संख्या आवे उतनी श्रेणियों के प्रदेश तुल्य। तीसरे वर्ग का घन करने पर भी वही श्रेणी राशि प्राप्त होती है।

वैक्रिय के मुक्केलग औदारिक के समान है तैजस कार्मण के बद्धेलक मुक्केलग इसके वैक्रिय के बद्धेलक मुक्केलग के समान है। औदारिक और आहारक के बद्धेलक मुक्केलग नारकी के समान है।

ये सभी बद्धेलक मुक्केलग की उत्कृष्ट संख्या बताई गई है। मुक्केलग शरीर सभी दंडक में अंनत की अपेक्षा प्रायः समान कहे गये है फिर भी अपने अपने बद्धेलकों के अनुपात से उनमें अंतर समझ लेना चाहिये। उक्त वर्णन की संक्षेप में तालिका इस प्रकार है-

जीव-शरीर-बद्ध-मुक्त	विशिष्ट राशि ज्ञान
1. औदारिक बद्धेलक	असंख्य लोक के प्रदेश तुल्य
2. औदारिक मुक्केलग	अनंत लोक के प्रदेश तुल्य - अभव्यों से अनंत गुणे सिद्धों से अनंतवे भाग
3. वैक्रिय बद्धेलक	सूचि प्रतर के असंख्यातवें भाग की असंख्य श्रेणियों के प्रदेश तुल्य
4.अहारक बद्धेलक	जघन्य 1-2-3 उत्कृष्ट अनेक हजार।
5. तेजस कार्मण बद्धेलक	सर्व संसारी जीवों की संख्या के समान। सिद्धों से अनंत गुणे।
6. तेजस कार्मण मुक्केलग	सर्व जीवों के वर्ग के अनंतवें भाग। सर्व जीवों से अनंत गुणे।
7. नारकी वैक्रिय बद्धेलक	अंगुल प्रदेशों का प्रथम वर्गमूल × दूसरा वर्गमूल-प्रतर के असंख्यातवे भाग की असंख्य श्रेणियां, उनके प्रदेशों के प्रदेश तुल्य।
8. भवनपति वैक्रिय बद्धेलक	अंगुल प्रथम वर्गमूल का संख्यातवें भाग जितनी श्रेणियों के प्रदेश तुल्य।
9. पांच स्थावर औदारिक बद्ध	समुच्चय औदारिक के समान। असंख्य लोक के प्रदेश तुल्य।
10. वायुकाय वैक्रिय बद्ध	क्षेत्र पल्योपम के असंख्यातवें भाग के समय तुल्य।
11. वनस्पति के कार्मण बद्धेलक	समुच्चय कार्मण के समान
12. तीन विकलेन्द्रिय औदारिक	एक श्रेणी के सभी वर्गमूलों के योग से प्राप्त राशि प्रमाण असंख्यात श्रेणियों के प्रदेश तुल्य बद्ध। अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना वाले बेइन्द्रियों से 7रजू का एक प्रतर भर जाय उतने बद्धेलक हैं।
13. तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय वैक्रिय बद्ध	अंगुल प्रथम वर्गमूल का असंख्यातवां भाग।

जीव-शरीर-बद्ध-मुक्त	विशिष्ट राशि ज्ञान
14. मनुष्य औदारिक बद्ध	1. 29 अंक 2. 5 वां वर्ग × 6ठा वर्ग 3. 2 (96) 4. तीसरे चौथे यमलपद के बीच में।
15. मनुष्य वैक्रिय बद्ध	1-2-3 उत्कृष्ट संख्याता
16. मनुष्य आहारक बद्ध	1-2-3 उत्कृष्ट अनेक हजार
17. असन्नि मनुष्य औदारिक बद्ध	अंगुल प्रथम वर्गमूल × तृतीय वर्गमूल के जो आकाश प्रदेश होते-होते है उतने लम्बी चौड़ी अवगाहना से लम्बी चौड़ी अवगाहना से भरने पर सूची श्रेणी भर जाय एक कम रहे इतने हैं।
18. व्यंतर वैक्रिय बद्धेलक	संख्यात सौ योजन क्षेत्र में एक एक को रखने पर प्रतर (चौतरा) भर जाय। 7 राजूका
19. ज्योतिषी वैक्रिय बद्धेलक	256 योजन क्षेत्र में एक एक को रखने पर प्रतर भर जाय।
20. वैमानिक वैक्रिय बद्धेलक	अंगुल द्वितीय वर्गमूल × तृतीय वर्गमूल प्रमाण असंख्य श्रेणियों के प्रदेश तुल्य। तीसरे वर्ग का घन करना भी कह सकते हैं।

नोट- विशेष स्पष्टीकरण पहले कर दिया गया है अतः इस तालिका में संक्षिप्त सांकेतिक जानकारी दी है। ताकि दोनों तरह के जिज्ञासु सुविधा एवं लाभ प्राप्त कर सके।

तेरहवां 'परिणाम' पद

1. दो प्रकार के परिणाम- परिणमन कहे गये हैं- 1. जीव परिणाम 2. अजीव परिणाम दोनों के मुख्य 10-10 प्रकार है।

जीव परिणाम- 2. 1. गति 2. इन्द्रिय 3. कषाय 4. लेश्या 5. योग 6. उपयोग 7. ज्ञान 8. दर्शन 9. चारित्र 10. वेद, ये जीव के परिणाम है अर्थात् जीव इनका उपार्जन करता है अथवा जीव इन-इन अवस्थाओं में परिणत होता है।

3. ये दस परिणाम भी पुनः अनेक प्रकार के है- यथा- 1. गति चार 2. इन्द्रिय पांच 3. कषाय चार 4. लेश्या छः 5. योग तीन 6. उपयोग दो 7 ज्ञान पांच अज्ञान तीन 8. दर्शन तीन (सम्यक, मिथ्या, मिश्र) 9. चारित्र पांच, 10 वेद तीन। ये कुल 43 प्रकार है इनमें 1. अनिन्द्रिय 2. अकषायी 3. अलेशी 4. अयोगी 5. अचरित्र 6. चरित्राचरित्र 7. अवेदी ये सात प्रकार और मिलाने से सूत्रोक्त 50 परिणाम होते हैं।

चौबीस दण्डक में परिणाम- गति 24 दंडक में अपनी अपनी होती है। नारकी देवता आदि 22 दंडक के जीव 'असंयत' है। तिर्य्च पंचेन्द्रिय असंयत और संयतासयत है। मनुष्य में संयत आदि सभी परिणाम होते हैं। इन्द्रिय कषाय आदि आठ बोलो का वर्णन जीवाभिगम सूत्र प्रथम प्रतिपत्ति में है। वहां नरकादि में इनके भेद बताये जा चुके हैं। अतः यहां 24 दंडक में उक्त 50 परिणामों में से जितने परिणाम पाये जाते हैं उनकी संख्या बताई जा रही है।

1. नरकी में 29- 1 गति, 5. इन्द्रिय, 4 कषाय, 3. लेश्या, 3 योग, 2 उपयोग, 3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन, 1. असंयत, 1 वेद।

2. भवन पति व्यंतर में 31- 2 वेद, 1 लेश्या यों तीन अधिक होने से 32 और एक वेद कम होने से 31

3. ज्योतिषी और 1-2 देवलोक में 28- तीन लेश्या कम है।

4. 3 से 12 देवलोक में 27- स्त्री वेद कम है।

5. नवग्रैवेयक में 27-

6. पांच अणुत्तर विमान में- 22 मिथ्या दृष्टि और तीन अज्ञान तथा मिश्रदृष्टि कम।

7. तीन स्थावर में 18- 1 गति, 1 इन्द्रिय, 4 कषाय, 4 लेश्या, 1 योग, 2 उपयोग, 2 अज्ञान, 1 दर्शन, 1 अचरित्र (असंयम), 1 वेद,

8. तेउ वायु में 17- एक लेश्या कम है।

9. तीन विकलेन्द्रिय में 22, 23, 24- ऊपरोक्त 17 में वचन योग, 2 ज्ञान, एक दृष्टि बढ़े तो ये 21 हुए फिर एक एक इन्द्रिय बढ़ने से 22, 23, 24 हुए।

10. तिर्य्च पचेन्द्रिय, में 35- 1 गति, 5 इन्द्रिय, 4 कषाय, 6लेश्या, 3 योग, 2 उपयोग, 3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन, 2 चारित्र, 3 वेद।

11. मनुष्य में 47- तीन गति कम है।

इस प्रकार ये इतने इतने जीव परिणाम नरकादि 24 दंडक के जीवों में पाये जाते हैं।

अजीव परिणाम-

अजीव पुद्गलों के परिणमन के मुख्य 10 प्रकार ये हैं- 1. बंधन 2. गति 3. भेदन 4. वर्ण 5. गंध 6. रस 7. स्पर्श 8. संस्थान 9. अगुरू लघु, 10. शब्द।

1. बंधन- पुद्गल बंध के तीन प्रकार है- 1. स्निग्ध-स्निग्ध 2. रूक्ष-रूक्ष 3. स्निग्ध-रूक्ष। स्निग्ध-स्निग्ध में सम और एकाधिक का बंध नहीं होता है वैसे ही रूक्ष-रूक्ष का भी। स्निग्ध-रूक्ष पुद्गलों में जघन्य का (1 गुण के साथ) बंध नहीं होता है।

आपस में दो गुण अधिक स्निग्ध-स्निग्ध का बंध होता है। दो गुण अधिक रूक्ष-रूक्ष का बंध होता है। एक गुण को छोड़कर फिर रूक्ष स्निग्ध का सम विषम कोई भी बंध हो सकता है।

यह बंध पुद्गल स्कंधों के परमाणु आदि के जुड़ने की अपेक्षा कहा गया है। अर्थात् वे परमाणु आदि जुड़कर नया पुद्गल स्कंध बनते हैं।

2. गति- पुद्गलों की गति दो प्रकार की होती है- 1. फुसमाण (स्पर्श करते हुए) 2. अफुसमान (बीच के आकाश प्रदेशों को स्पर्श न करते हुए।) असंख्य समय में जो गति होती है, वह फुसमान होती है, फुसमान गति में असंख्य समय लगते है और अफुसमान गति एक समय में भी हो जाती है। अथवा दीर्घ गति परिणाम और ह्रस्व गति परिणाम ये दो भेद होते हैं। इसका अर्थ है कम दूरी पर पुद्गल का जाना और अधिक दूर पर जाना।

3. भेदन- पुद्गलों का भेदन परिणाम पांच तरह का होता है- 1. खंड, 2. प्रतर 3. चूर्ण 4. अनुतारिका 5. उत्करिका।

4-8. वर्णादि- 5 वर्ण, 2 गंध, 5 रस, 8स्पर्श, 5 संस्थान।

9. अगुरूलघु- कार्मण वर्गणा, भाषा वर्गण, मनोवर्गणा और अरूपी आकाश आदि अजीव द्रव्य में अगुरूलघु परिणाम होता है। औदारिक वैक्रिय आहारक तैजस आदि द्रव्यों का गुरूलघु परिणाम होता है।

10. शब्द- मनोज्ञ शब्द और अमनोज्ञ शब्द यों दो प्रकार का शब्द परिणाम होता है। ये कुल 39 (3 + 2 + 5 + 25 + 1 + 2 = 38) और एक गुरूलघु = 39 पुद्गल परिणाम होते हैं। ये जीव के 50 और अजीव 39 परिणाम अपेक्षा विशेष से कहे गये हैं। अन्य विस्तृत अपेक्षा से जीव अजीव के अनंत परिणाम कहे जा सकते हैं।

चौदहवां 'कषाय' पद

1. कषाय के चार प्रकार- 1. क्रोध 2. मान 3. माया 4. लोभ।

2. क्रोधादि के चार प्रकार- 1. अनंतानुबंधी - क्रोध मान माया लोभ। 2. अप्रत्याख्यानी क्रोधादि 3. प्रत्याख्यानावरण क्रोधादि 4. संज्वलन क्रोधादि। यो 16. भेद होते हैं।

3. इन 16के चार-चार भेद- 1. आभोग से 2. अनाभोग से 3. उपशांत 4. अनुपशांत। यों 64 भेद होते हैं।

4. इन क्रोधादि की उत्पत्ति के निमित्त चार है- 1. क्षेत्र 2. मकान 3. शरीर 4. उपकरण यों निमित्त भेद से इनके 64 × 4 = 256 प्रकार होते हैं।

5. इन कषायों के आधार की अपेक्षा चार प्रकार है- 1. खुद पर 2. दूसरों पर 3. दोनों पर 4. किसी पर भी नहीं (केवल प्रकृति का उदय मात्र होना) यों आधार भेद से क्रोधादि के 256× 4 = 1024 प्रकार होते हैं। समुच्चय जीव और 24 दंडक यों 25 एक वचन और बहुवचन के 50 विकल्प करने पर 1024 × 50 = 51200 भंग होते हैं।

6. इन चार यावत् 1024 प्रकार के कषाय के कारण जीव ने भूत काल में आठ कर्मों का चय (संग्रह) किया। वर्तमान के समान उपचय, बंध करता है। कषायों से बधें कर्मों का उदय में आना भी आवश्यक है। अतः वेदन उदीरणा निर्जरा भी तीन काल की अपेक्षा-की है, करता है और करेगा। इस तरह ये आठ कर्म तीन, काल, छः चयादि के (8× 3 × 6= 144) विकल्प होते हैं। इन्हें ऊपरोक्त 51200 भंग से गुणा करने पर = 7372800 विकल्प कषाय सम्बन्धी पृच्छाओं के होते हैं। यदि केवल चार कषाय से चय आदि के भंग किये जाय तो-

144 × 4 कषाय 25 (जीव + 24 दंडक) × 2 (एक वचन बहुवचन) = 28800 ये चयादि के स्वतंत्र विकल्प होते हैं।

क्रोधादि के द्रव्य निमित्त क्षेत्र आदि चार कहे गये है फिर भी निंदा प्रशंसा ईर्ष्या, सद्व्यवहार, असद्व्यवहार आदि भाव कारणों से भी क्रोधादि की उत्पति समझ लेना चाहिये।

कठिन शब्दों के अर्थ-

चय	-	कर्म योग्य पुद्गलों का ग्रहण करना।
उपचय	-	अबाधा काल छोड़ कर कर्म निषेक रचना करना।
बंध	-	निषिक्त ज्ञानावरणीय आदि को निकाचन - नियत करना।
उदीरणा	-	कर्मों को उदयावलिका में लाना
उदय (वेदना)	-	कर्मों का फल प्राप्त होना भोगना।
निर्जरा	-	उपभोग किये कर्मों को आत्मा से अलग कर देना।

अनंतानुबंधी- जो कषाय समकित का घात करे, जिस कषाय का अन्त-सीमा न हो, जिस कषाय को समाप्त करने का कोई लक्ष्य या मर्यादा न हो, वह अनतानुबंधी गुस्सा घमंड कपट लालच कहा जाता है। अनंत संसार बढ़ाने वाले मिथ्यात्व मोह को प्राप्त कराने वाला कषाय अनंतानुबंधी है।

अप्रत्याख्यानी- जो कषाय प्रत्याख्यान वृत्ति का पूर्णतया नाश करता है। जिसके उदय से त्याग प्रत्याख्यान की रूचि उत्पन्न नहीं होती है। पूर्व में व्रत या व्रत रूचि हो तो उसे यह कषाय नष्ट कर देता है। इस कषाय का शिलशिला अंत रहित नहीं होता है। गुरू सानिध्य आदि किसी निमित्त को पाकर या स्वतः कालक्रम से संवत्सर के भीतर यह शिलशिला परिवर्तित हो जाता है।

प्रत्याख्यानावरण– जो कषाय संयम भाव का बाधक है या नाशक है अर्थात् नये रूप में संयम के भावों को जमने न देवे और पुराने हो तो उन्हें उखेड़ देवें नष्ट कर देवें। कुछ व्रत प्रत्याख्यान या श्रावक वृत्ति में यह बाधक नहीं होवे। इस कषाय का शिलशिला 5-10 दिन उत्कृष्ट 15 दिन से ज्यादा नहीं चले।

संज्वलन– क्षण भर के लिये आवश्यक प्रसंगों, परिस्थितियों से यह कषाय उत्पन्न होता है एवं शीघ्र ही ज्ञान वैराग्य विवेक अथवा सहज स्वभाव से स्वतः नष्ट हो जाता है। अप्रमत्तावस्था के विकास एवं वीतराग अवस्था की प्राप्ति में यह कषाय बाधक होता है। इस कषाय से संयम का सर्वथा नाश नहीं होता है किंचित संयम की हानि अवश्य करता है। इस कारण यह सज्वलन कषाय चारित्र को कषाय कुशील संज्ञा दिलवाता है। इस कषाय का शिलशिला शीघ्रातिशीघ्र या तत्काल नष्ट हो जाता है। उत्कृष्ट एक दिन से आगे नहीं जा सकता है।

संज्जवलन कषाय का स्वभाव पानी की लकीर के समान शीघ्र (मिनटों, घंटों से) मिटने वाला है। प्रत्याख्यानावरण कषाय का स्वभाव बालू रेत की लकीर के समान कुछ समय (दिनों) से मिटने वाला है। अप्रत्याख्यानी कषाय का स्वभाव पानी रहित तालाब की मिट्टी की तराड़ों के समान कुछ देर (महीनों से मिटने वाला है। अनतानुबंधी कषाय पत्थर या चट्टानों की तराड के समान मिटने का कोई समय ही नहीं होता है।

आभोग	-	जानकर, जानकारी में क्रोधादि करना।
अनाभोग	-	अनजाने में क्रोधादि का होना।
उपशांत	-	वचन काया में बाहर अप्रकट रूप क्रोधादि।
अनुपशांत	-	वचन काया में प्रकट रूप क्रोधादि।

ये सभी प्रकार के कषाय और उनके भेद प्रभेद 24 ही दंडक में सूक्ष्म बादर किसी न किसी रूप में या अस्तिव रूप में पाये जाते हैं। अतः सूत्र में सभी दंडकों में इनकी वक्तव्यता कहीं गई है।

पंद्रहवां ''इन्द्रिय'' पद

1. संस्थान– 1. श्रौत्रेन्द्रिय का- कदम्ब पुष्प 2. चक्षुइन्द्रिय का - मसूर दाल 3. घ्राणेन्द्रिय का - अतिमुक्तक (धमण) 4. रसनेन्द्रिय का - क्षुरप्र, खुरपा 5. स्पर्शेन्द्रिय का - विविध।

2. लम्बाई चौड़ाई– जिव्हेन्द्रिय की लम्बाई अनेक अंगुल है और स्पर्शेन्द्रिय की लम्बाई शरीर प्रमाण है, शेष सभी की लम्बाई -चौड़ाई अंगुल के असंख्यातवें भाग है।

3. प्रदेश– पांचों इन्द्रिय अनंत प्रदेशी है, असंख्य आकाश प्रदेश में रहती है।

4. अल्पाबहुत्व– सबसे छोटी अवगाहना चक्षु इन्द्रिय की है, श्रोत्रेन्द्रिय की उससे संख्यात गुणी, घाणेन्द्रिय की उससे संख्यात गुणी, रसनेन्द्रिय की उससे असंख्यात गुणी और स्पर्शेन्द्रिय की उससे संख्यात गुणी है। इसी क्रम से प्रदेश भी अल्पाधिक है।

5. चार स्पर्श– इसके दो विभाग है 1. कर्कश और भारी (गुरू) 2. मृदु और लघु (हल्का) ये एक गुण यावत् अनंत गुण पर्यन्त पांचों इन्द्रियों में होते हैं।

अल्पाबहुत्व– चक्षु इन्द्रिय में कर्कश गुरू सबसे कम है फिर क्रमशः श्रोत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय जिव्हेन्द्रिय स्पर्शेन्द्रिय में अनंत गुणे है।

स्पर्शेन्द्रिय में मृदु लघु सबसे कम है फिर क्रमशः जिव्हेन्द्रिय, घाणेन्द्रिय श्रोत्रेन्द्रिय चक्षुइन्द्रिय में अनंतगुणे है।

स्पेर्शेन्द्रिय में कर्कश गुरु रसनेन्द्रिय में मृदुलघु अनंतगुणे होते हैं।

ऊपरोक्त वर्णन 24 दंडक में भी समझ लेना। विशेष यह है कि- 1. जिसके जितनी इन्द्रिय है उतनी समझना 2. शरीर की अवगाहना संस्थान जो हो वहीं स्पर्शेन्द्रिय की अवगाहना संस्थान समझना।

स्पृष्ट-प्रविष्ट- चक्षु इन्द्रिय अपने विषय के पदार्थों को दूर रहे हुए ही विषय भूत बना कर उनका ज्ञान कर लेती हैं अर्थात् उन पदार्थों का चक्षुइन्द्रिय में प्रवेश एवं स्पर्श दोनों नहीं होते हैं। शेष इन्द्रिया अपने विषय भूत पदार्थों का स्पर्श एवं ग्रहण (प्रवेश) होने पर ही उनका बोध करती है।

विषय क्षेत्र- जघन्य विषय चक्षुइन्द्रिय का अंगुल के संख्यातवें भाग है शेष चार इन्द्रियों का अंगुल के असंख्यातवें भाग हैं। उत्कृष्ट इस प्रकार है-

कर्कश गुरू,लघु मृदु और दोनों का शामिल अल्प बहुत्व द्वार-

क्र सं.	इन्द्रिय	कर्कश गुरू	लघु मृदु	कर्कश गुरू/ लघु मृदु शामिल
1	चक्षुइन्द्रिय	1 अल्प	5 अनंत गुणा	1 अल्प/ 10 अनंत गुणा
2	श्रोत्रेन्द्रिय	2 अनंत गुणा	4 अनंत गुणा	2 अनंत गुणा/ 9 अंनत गुणा
3	घ्राणेन्द्रिय	3 अनंत गुणा	3 अनंत गुणा	3 अनंत गुणा/ 8 अंनत गुणा
4	रसनेन्द्रिय	4 अनंत गुणा	2 अनंत गुणा	4 अनंत गुणा/ 7 अंनत गुणा
5	स्पर्शेन्द्रिय	5 अनंत गुणा	1 अल्प	5 अनंत गुणा/ 6 अंनत गुणा

जीव नाम	श्रोत्रेन्द्रिय	चक्षु इन्द्रिय	घ्राणेन्द्रिय	रसनेन्द्रिय	स्पर्शेन्द्रिय
एकेन्द्रिय	-	-	-	-	400 धनुष
बेइन्द्रिय	-	-	-	64 धनुष	800 धनुष
तेइन्द्रिय	-	-	100 धनुष	128 धनुष	1600 धनुष
चतुरिन्द्रिय	-	2954 धनुष	200 धनुष	256 धनुष	3200 धनुष
असन्नी पंचेन्द्रिय	1 योजन	5908 धनुष	400 धनुष	512 धनुष	6400 धनुष
सन्नी पंचेन्द्रिय	12 योजन	1 लाख योजन साधिक	9 योजन	9 योजन	9 योजन
समुच्चय जीव	12 योजन	1 लाख योजन साधिक	9 योजन	9 योजन	9 योजन

जघन्य उपयोग काल, उत्कृष्ट उपयोग काल, दोनों का शामिल उपयोग काल का अल्प बहुत्व-

क्र.	इन्द्रिय	जघन्य उपयोग काल	उत्कृष्ट उपयोग काल जघन्य	उपयोग उत्कृष्ट /उपयोग शामिल
1	चक्षुइन्द्रिय	1 अल्प	1 अल्प	1 अल्प/ 6 विशेषाधिक
2	श्रोत्रेन्द्रिय	2 विशेषाधिक	2 विशेषाधिक	2 विशेषाधिक/ 7 विशेषाधिक
3	घ्राणेन्द्रिय	3 विशेषाधिक	3 विशेषाधिक	3 विशेषाधिक/ 8 विशेषाधिक
4	रसनेन्द्रिय	4 विशेषाधिक	4 विशेषाधिक	4 विशेषाधिक/ 9 विशेषाधिक
5	स्पर्शेन्द्रिय	5 विशेषाधिक	5 विशेषाधिक	5 विशेषाधिक/ 10 विशेषाधिक

यह इन्द्रिय उत्सेधांगुल से कहा गया है। जघन्य विषय आत्मागुल से समझना चाहिये।

निर्जरा पुद्गल-मुक्त होने वाली आत्मा के अंतिम निर्जरा पुद्गल सर्व लोक में व्याप्त होते हैं। किन्तु उनको इन्द्रियां ग्रहण नहीं कर सकती और जान देख नहीं सकती है। चाहे देव हो या मुनष्य। क्यों कि वे निर्जरा पुद्गल अति सूक्ष्म होते हैं। विशिष्ट अवधिज्ञानी या केवलज्ञानी ही उन्हें जान देख सकते हैं तथा अमुक अमुक के है, ऐसी भिन्नता से एवं अमुक वर्णादि है, ऐसे नाना भेदों को, क्षीणत्व, तुच्छत्व (निःसारत्व), हल्का, भारीपन आदि से जान देख सकते हैं।

नैरयिक आदि इन्हें जान देख नहीं सकते किन्तु ग्रहण कर आहार रूप में परिणमन कर सकते। सम्यग् दृष्टि वैमानिक पर्याप्त उपयोगवंत हो तो जाने, देखे, आहारे। अन्य नहीं जाने नहीं देखे किन्तु आहार रूप में ग्रहण परिणमन करते हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी जो विशिष्ट ज्ञानी उपयोगवंत है वे जाने देखें आहारे। अन्य मनुष्य नहीं जाने नहीं दखें किन्तु आहार रूप में ग्रहण-परिणमन करते हैं। केवल ज्ञानी मनुष्य सदा जाने देखे आहार रूप में कभी परिणमन करते हैं। अणाहारक हो तब नहीं करते हैं। सिद्ध भगवान जानते देखते हैं।

तात्पर्य यह है कि इन्द्रियों के लिये ये पुद्गल अविषय भूत है। विशिष्ट ज्ञान गोचर है और इन्द्रिय अगोचर है।

प्रतिबिंब- दर्पण, मणि आदि को देखने वाला दर्पण आदि को देखता है और प्रतिबिम्ब को देखता है किन्तु स्वयं को नहीं देखता है।

अवगाहन- खुला फैलाया हुआ वस्त्र जितने आकाश प्रदेश अवगाहन करता है समेट कर रख देने पर भी उतने ही आकाश प्रदेश अवगाहन करेगा।

स्पर्श- लोक थिग्गल = लोकालोक रूप वस्त्र में लोक थेगले के रूप में हैं। यह लोक थिग्गल- 1. धर्मास्तिकाय 2. धर्मास्तिकाय के प्रदेश 3. अधर्मास्तिकाय 4. अधर्मास्तिकाय के प्रदेश 5. आकाशास्तिकाय का देश 6. आकाशास्तिकाय के प्रदेश 7. पुद्गलास्तिकाय 8. जीवास्तिकाय 8-13. पृथ्वीकाय आदि 5 से स्पृष्ट है। 14-15 त्रसकाय और अद्धा समय से स्पृष्ट भी है अस्पृष्ट भी है। (कही लोक में त्रस एवं काल है, कहीं नहीं है)

जम्बूद्वीप- 1. धर्मास्तिकाय के देश 2. प्रदेश 3. अधर्मास्तिकाय के देश 4. प्रदेश 5. आकाशास्तिकाय के देश 6. प्रदेश 7-11. पृथ्वी आदि पांच से स्पृष्ट है। 12. त्रसकाय से स्पृष्ट भी है अस्पृष्ट भी है 13. काल से स्पृष्ट है।

इसी तरह अन्य द्वीप समुद्र भी जानना। ढाई द्वीप के बाहर काल से अस्पृष्ट कहना।

अलोक- आकाशास्तिकाय के देश से एवं प्रदेश से स्पृष्ट है। अन्य कोई भी द्रव्यादि नहीं है। एक अजीव द्रव्य देश है।

दूसरा उद्देशक

1. इन्द्रियों के योग्य पुद्गलों का पहले उपचय संग्रह होता है 2. फिर उस इन्द्रिय की निष्पत्ति होती है 3. प्रत्येक इन्द्रिय के निष्पन्न होने में असंख्य समय का अंतर्मुहुर्त प्रमाण काल लगता हैं। ये निष्पन्न होने वाली द्रव्येन्द्रिय हैं।

4. तदावरणीय कर्म का क्षयोपशम जो होता है वह भावेन्द्रिय है 5. उसका उपयोग काल जघन्य और उत्कृष्ट असंख्य समय के अंतर्मुहर्तु प्रमाण होता हैं। जघन्य से उत्कृष्ट काल विशेषाधिक होता हैं।

6. ''अल्पाबहुत्व'' की अपेक्षा पांचों इन्द्रियों के जघन्य उपयोग काल में चक्षुइन्द्रिय का कम और शेष का पूर्वोक्त क्रम से विशेषाधिक होता हैं। उत्कृष्ट में भी इसी क्रम से अल्पाधिक होता हैं। जघन्य उत्कृष्ट की सम्मिलित अल्पाबहुत्व में स्पर्शेन्द्रिय के जघन्य उपयोग काल से चक्षु इन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोग काल विशेषाधिक है।

7. अवग्रह (ग्रहण), ईहा (विचारणा), अवाय (निर्णय), धारणा (स्मृति), पांचों इन्द्रिय का होता हैं। अर्थावग्रह छः प्रकार का होता है- पांच इन्द्रिय एंव मन।व्यंजनावग्रह चक्षुइन्द्रिय को छोडकर चार इन्द्रिय के ही होता है।

ये सभी = निष्पत्ति आदि 24 दंडक में हैं। जिसके जितनी इन्द्रियां होती हैं। उनकी अपेक्षा उक्त विषय इन्द्रिय निष्पत्ति आदि होती हैं। यावत् उपयोगद्धा काल की अल्पाबहुत्व एवं अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा भी 24 ही दंडक में यथा योग्य इन्द्रिय अनुसार हैं।

द्रव्येन्द्रिय विस्तार-

द्रव्येन्द्रिय आठ है- 2 कान, 2 आंख, 2 नाक, 1. जिव्हा 1. स्पर्शेन्द्रिय। चौबीस दंडक में कितनी द्रव्यन्द्रियां हैं, भूतकाल में कितनी की, वर्तमान में कितनी है और भविष्य में मोक्ष जाने के पूर्व कितनी करेगा, यह वर्णन चार्ट से जाने-

1. चौबीस दंडक में त्रैकालिक इन्द्रियां - (एक वचन)

जीव	भूतकाल	वर्त्तमान	भविष्यकालीन
1 से 4 नारकी	अनंत	पांच	5,10,15 संख्यात, असंख्यात अनंत
5 से 7 नारकी	अनंत	पांच	10,15 संख्यात, असंख्यात अनंत
भवनपति से दूसरे देवलोक तक	अनंत	पांच	5,6 संख्यात, असंख्यात अनंत
तीसरे देव. से नव ग्रैवेयक तक	अनंत	पांच	5,10 संख्यात, असंख्यात अनंत
4 अणुत्तर विमान के देव	अनंत	पांच	5,10 संख्यात
सर्वाथ सिद्ध के देव	अनंत	पांच	5
पृथ्वी पानी वनस्पति	अनंत	एक	5,6,7 संख्यात, असंख्यात अनंत
तेउकाय वायुकाय	अनंत	एक	6,7 संख्यात, असंख्यात अनंत
तीन विकलेन्द्रिय	अनंत	2,3,4	6,7 संख्यात, असंख्यात अनंत
तिर्यंच पंचेन्द्रिय	अनंत	पांच	5,6,7 संख्यात, असंख्यात अनंत
मनुष्य	अनंत	पांच	0/5,6,7 संख्यात, असंख्यात अनंत

24 दंडक में अनेक जीवों की भावेन्द्रियां

जीव प्रकार	भूतकालीन	वर्त्तमान	भविष्यकालीन
नारकी से भवनपति से नव ग्रैवेयक तक	अनंत	असंख्यात	अनंत
चार अणुत्तर के देव	अनंत	असंख्यात	असंख्यात
सर्वार्थ सिद्ध के देव	अनंत	संख्यात	संख्यात
4 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचे.	अनंत	असंख्यात	अनंत
वनस्पति	अनंत	अनंत	अनंत
मनुष्य	अनंत	संख्यात, असंख्यात	अनंत

24 दंडक के प्रत्येक जीव की परस्पर 24 दंडक में त्रैकालिक भावेन्द्रियां- (एक जीव)

वर्त्तमान जीव ने	दंडक के जीव पणे	भूतकालीन	वर्त्तमान कालीन	भविष्यकालीन भावेन्द्रियां
1 नारकी, भवनपति, व्यंतर ज्योतिषी, पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय और ति. पं. ने	पांच अणुत्तर संज्ञी मनुष्य छोड शेषस्थानों में सर्व स्थान में	अनंत	स्वस्थान में स्वस्थान प्रमाण 1-2-3-4-5 और परस्थान में नहीं	कोई करेगा, कोई नहीं भी करेगा करे तो जघन्य स्थान प्रमाण से उत्कृष्ट अनंत करेगा
	संज्ञी मनुष्य पणे	अनंत	×	5,10,15संख्य,असंख्य,अनंत
	चार अणुत्तर देव पणे	×	×	0,5,10
	सर्वार्थ सिद्ध देव पणे	×	×	0,5
2 पहले देवलोक से 9 ग्रैवेयक तक के देव ने	पांच अणुत्तर, संज्ञी मनुष्य छोड़ शेष सभी स्थानों में जीव पणे	अनंत	स्वस्थान में पांच परस्थान में नहीं	करेगा, नहीं भी करेगा, करे तो स्थान प्रमाण से
	संज्ञी मनुष्य पणे	अनंत	×	5,10,15 यावत अनंत
	चार अणुत्तर देव पणे	0,5	×	0,5,10
	सर्वार्थ सिद्ध देव पणे	×	×	0,5
3 चार अणुत्तर विमान देव ने	पांच अणुत्तर, संज्ञी मनुष्य छोड़ सभी स्थानों में	अनंत	×	वैमानिक में 0,5,10 संख्याता शेष में नहीं
	संज्ञी मनुष्य पणे	अनंत	×	5,10 यावत संख्यात
	चार अणुत्तर देव पणे	0,5	5	0,5
	सर्वार्थ सिद्ध देव पणे	×	×	0,5
4 सर्वार्थ सिद्ध देव ने	अणुत्तर, संज्ञी मनुष्य छोड़ सभी जगह में	अनंत	×	×
	संज्ञी मनुष्य पणे	अनंत	×	5
	अणुत्तर विमान के देव पणे	0,5	×	×
	सर्वार्थ के देव पणे	×	5	×
5 मनुष्य में	अणुत्तर विमान छोड़ शेष सभी जगह	अनंत	स्वस्थान में 5	0,5,10 यावत अनंत
	चार अणुत्तर विमान देव पणे	0,5,10,	×	0,5,10
	सर्वार्थ सिद्ध देव पणे	0,5	×	0,5

24 दंडक के अनेक जीवों की दंडक में 24 दंडक में त्रैकालिक भावेन्द्रियां- (अनेक जीव परस्पर)

	वर्त्तमान जीव ने	दंडक जीव पणे	भूतकालीन	वर्त्तमानकालीन भावेन्द्रियां	भविष्यकालीन भावेन्द्रियां
1	नरक, भवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी, पांच स्थावर,	अणुत्तर विमान छोड़ सभी जगह	अनंत	वनस्पति में अनंत, शेष में असंख्यात, पर स्थान में नहीं	अनंत
	तीन विकले. तिर्यंच पंचेन्द्रिय में	अणुत्तर विमान देव पणे	×	×	वन.में अ. शेष जीवों में असं.
2	पहले देवलोक से नव ग्रैवेयक तक के देव	अणुत्तर विमान छोड़ सभी जगह	अनंत	स्वस्थान में असंख्यात, परस्थान में नहीं	अनंत
		अणुत्तर विमान देव पणे	असंख्यात		असंख्यात
		सर्वार्थ सिद्ध देव पणे	×	×	संख्यात
3	अणुत्तर विमान देव	वैमानिक देव, संज्ञी मनुष्य छोड़ शेष सभी स्थानों में	अनंत	×	×
		संज्ञी मनुष्य, पहले देव से नवग्रैवेयक तक	अनंत	×	असंख्यात
		चार अणुत्तर विमान देव पणे	असंख्यात	असंख्यात	असंख्यात
		सर्वार्थ सिद्ध देव पणे	×	×	संख्यात
4	सर्वार्थ सिद्ध देव	अणुत्तर विमान, संज्ञी मनुष्य छोड़ शेष सभी स्थानों में	अनंत	×	×
		चार अणुत्तर विमान देवपणे	संख्यात	×	×
		सर्वार्थ सिद्ध देव पणे	×	संख्यात	×
5	मनुष्य	अणुत्तर विमान, संज्ञी मनुष्य छोड़कर शेष सभी स्थानों में	अनंत	स्वस्थान में संख्यात/ असंख्यात	अनंत
		अणुत्तर विमान में देव पणे	संख्यात	×	संख्यात
		मनुष्य पणे	अनंत	संख्यात/ असंख्यात	अनंत

2. चौवीस दंडक में त्रैकालिक इन्द्रियां - (बहुवचन)

भूतकाल की अपेक्षा सभी दंडक में अंनत, भविष्य की अपेक्षा भी सभी दंडक में अंनत। वर्तमान काल में वनस्पति में अनत, मनुष्य में कभी संख्याता कभी असंख्याता, सर्वार्थ सिद्ध विमान में संख्याता, शेष सभी दंडक में असंख्याता इन्द्रियां हैं।

3. एक एक जीव की सभी दंडक में इन्द्रियां -

भूतकाल में- एक नारकी ने पांच अणुत्तर विमान छोड़ कर सभी दंडकों के रूप में भूतकाल में अंनत इन्द्रियां की। उसी तरह सभी दडकों के जीवों ने भी अनंत इन्द्रियां की। अणुत्तर देव रूप में 22 दंडक के जीवों ने एक भी इन्द्रिय नहीं की। मनुष्यों में किसी ने नहीं की और किसी ने की तो आठ अथवा 16। वैमानिक देवों ने अणुत्तर देव रूप में किसी ने नहीं की और किसी ने की तो केवल आठ ही की।

वर्तमान में- स्वंय की अपेक्षा जितनी जिसके द्रव्येन्द्रियां है उतनी कहना और अन्य की अपेक्षा सर्वत्र नहीं है (नत्थि) कहना।

भविष्य में- पंचेन्द्रिय की अपेक्षा 8-16यों अष्टाधिक होती हैं। इसी तरह चौरेन्द्रिय में 6, 12 आदि, तेइन्द्रिय 4-8आदि बेइन्द्रिय में 2-4 आदि एकेन्द्रिय में 1-2-3 आदि। मनुष्य की अपेक्षा सभी को करना जरूरी हैं। शेष की अपेक्षा कोई करेगा या नहीं भी करेगा तो 8-16आदि।

एक एक जीव की सभी दंडक में भविष्य कालिन इन्द्रियां-

एक एक जीव की सभी दंडक में इन्द्रियां-

सर्वार्थ सिद्ध विमान के देव मनुष्य पने द्रव्येन्द्रिय करेगें। शेष कही पर भी कोई द्रव्येन्द्रिय नहीं करेंगे।

एक-एक जीव की सभी दण्डकों में भविष्य कालीन इन्द्रियां (एक जीव परस्पर)

अपेक्षा	नारकी से ग्रैवेयक तक	चार अणुत्तर देव	सर्वार्थ सिद्ध	मनुष्य तिर्यंच
मनुष्य पने	8, 16 आदि अनंत	8, 16 आदि अनंत	08	0,8,16 आदि अनंत
नरक पने	0,8,16 आदि अनंत	×	×	0,8,16 आदि अनंत
तिर्यंच पने	0,8,16 आदि अनंत	×	×	0,8,16 आदि अनंत
भवन. व्य. ज्यो. पणे	0,8,16 आदि अनंत	×	×	0,8,16 आदि अनंत
वैमा. नव ग्रैवेयक तक	0,8,16 आदि अनंत	0,8,16 आदि संख्यात	×	0,8,16 आदि अनंत
चार अणुत्तर देव पणे	0,8 उत्कृष्ट 16	0,8	×	0,8,16 आदि अनंत
सर्वार्थ सिद्ध देव पने	0,8 अधिक नहीं	0,8	×	0,8
एकेन्द्रिय पने	0,1,2 आदि अनंत	×	×	0,1,2 आदि अनंत
बेइन्द्रिय पने	0,2,4 आदि अनंत	×	×	0,2,4 आदि अनंत
तेइन्द्रिय पने	0,4,8 आदि अनंत	×	×	0,4,8 आदि अनंत
चौरेन्द्रिय पने	0,6,12 आदि अनंत	×	×	0,6,12 आदि अनंत

अनेक जीवों की सभी दंडकों में भविष्यकालीन द्रव्येन्द्रिया

क्रम	अनेक जीव	जीवों में	द्रव्येन्द्रियां
1	23 दंडक के जीव	23 दंडक पणे	अनन्त
2	नव ग्रैवेयक तक के देव	23 दंडक पणे	अनन्त
3	4 अणुत्तर विमान के देव	22 दंडक पणे	×
4	4 अणुत्तर विमान के देव	मनुष्य पणे	असंख्यात
5	4 अणुत्तर विमान के देव	नवग्रैवेयक तक देव पणे	असंख्यात
6	4 अणुत्तर विमान के देव	4 अणुत्तर विमान के देव पणे	असंख्यात
7	4 अणुत्तर विमान के देव	सर्वार्थ सिद्ध के देव पणे	संख्यात
8	सर्वाथ सिद्ध के देव	22 दंडक पणे	×
9	सर्वाथ सिद्ध के देव	मनुष्य दंडक पणे	संख्यात
10	सर्वाथ सिद्ध के देव	पांच अणुत्तर विमान के देव पणे	×

4. अनेक जीवों की सभी दंडक में द्रव्येद्रियां-

भूतकाल- सभी दंडक के जीवों ने सभी दंडकों में भूतकाल में अंनत द्रव्येन्द्रियां की हैं। पांचअणुत्तर देव पने 22 दंडक के जीवों ने नहीं की हैं। मनुष्यों ने संख्यात की हैं। और वैमानिक में ग्रैवेयक तक के देवों ने असंख्य की हैं। चार अणुत्तर देवों ने असंख्य की है सर्वार्थ सिद्व के देवों ने नहीं की हैं।

वर्तमान काल- वर्तमान काल में स्वयं दडंक में वनस्पति के अनंत द्रव्येन्द्रियां है शेष 23 दंडक के असंख्य हैं। पर दंडक की अपेक्षा वर्तमान में नहीं हैं। मनुष्य के संख्यात या असंख्यात द्रव्येन्द्रियां हैं। सर्वार्थ सिद्व में- संख्याता है।

भविष्य में- अणुत्तर देव को छोडकर नारकी आदि सभी जीव सभी दंडकों में भविष्य में अनंत द्रव्येन्द्रियां करेगे।

दंडक के जीव	वर्त्तमान में	भूतकाल में	भविष्य में (एक जीव की अपेक्षा)
नारकी 1 से 4	8	अनंता	8, 16, 17 आदि अनंत
नारकी 5 से 7	8	अनंता	16, 17 आदि अनंत
भवनपति से दूसरे देवलोक	8	अनंता	8, 9 आदि अनंत
तीसरे देव. से 9 नव ग्रैवेयक	8	अनंता	8, 16, 17 आदि अनंत
4 अणुत्तर विमान देव	8	अनंता	8, 16, 24 आदि उत्कृष्ट संख्याता
सर्वार्थ सिद्ध विमान देव	8	अनंता	8
पृथ्वी पानी वनस्पति	1	अनंता	8, 9, 10 आदि उत्कृष्ट अनंत
तेउ-वायु	1	अनंता	9, 10 आदि उत्कृष्ट अनंत
बेइन्द्रिय	2	अनंता	9, 10 आदि उत्कृष्ट अनंत
तेइन्द्रिय	4	अनंता	9, 10 आदि उत्कृष्ट अनंत
चौरेन्द्रिय	6	अनंता	9, 10 आदि उत्कृष्ट अनंत
तिर्यंच पंचेन्द्रिय	8	अनंता	8, 9 आदि उत्कृष्ट अनंत
मनुष्य	8	अनंता	0, 8, 9 आदि उत्कृष्ट अनंत

क्र.	वर्त्तमान जीव	दंडक के जीव पणे	एक जीव की द्रव्येंद्रियां	अनेक जीवों की द्रव्येंद्रियां
1	24 दंडक के जीव	23 दंडक में (वैमानिक छोड़)	अनंत	अनंत
2	24 दंडक के जीव	वैमानिक में (नव ग्रैवेयक तक)	अनंत	अनंत
3	22 दंडक (मनुष्य वैमानिक छोड़)	चार अणुत्तर विमान में	नहीं प्राप्त किया	नहीं
4	मनुष्य	चार अणुत्तर विमान में	0/8/16	संख्यात
5	मनुष्य	सर्वार्थ सिद्ध	0/8	संख्यात
6	पहले देव. से 4 अणुत्तर विमान	चार अणुत्तर विमान में	0/8	असंख्यात
7	पहले देव. से 4 अणुत्तर विमान	सर्वाथ सिद्ध विमान में	नहीं	नहीं
8	सर्वार्थ सिद्ध विमान के देव	चार अणुत्तर विमान में	0/8	संख्यात
9	सर्वार्थ सिद्ध विमान के देव	सर्वार्थ सिद्ध विमान में	नहीं	नहीं

24 दंडक जीवों की वर्त्तमान कालीन (बद्ध) एक अनेक जीवों की द्रव्येन्द्रियां-

जीव	एक जीव की		अनेक जीवों की	
	स्वस्थान में	परस्थान में	स्वस्थान में	परस्थान में
एकेन्द्रिय	1	×	असंख्य	×
बेइन्द्रिय	2	×	असंख्य	×
तेइन्द्रिय	4	×	असंख्य	×
चतुरिन्द्रिय	6	×	असंख्य	×
पंचेन्द्रिय 4 गति	8	×	असंख्य	×
मनुष्य	8	×	संख्यात, असंख्यात	×
सर्वार्थ सिद्ध देव	8	×	संख्यात	×
वनस्पति	1	×	असंख्यात	×

वनस्पति के जीव अणुत्तर देव में अनंत द्रव्येन्द्रियां करेगें। शेष सभी दंडक के जीव अणुत्तर देव में असंख्य द्रव्येन्द्रियां करेगे किन्तु मनुष्य संख्याता या असंख्याता करेगे। 5 अणुत्तर देव 22 दंडक में द्रव्येन्द्रियां नही करेगे। चार अणुत्तर देव मनुष्य में एक वैमानिक देव में असंख्य द्रव्येन्द्रियां करेगे। चार अणुत्तर देव पांच अणुत्तर देव पने असंख्य द्रव्येन्द्रियां करेगे। सर्वार्थ सिद्ध के देव मनुष्य में संख्याता द्रव्येन्द्रियां करेंगे। वैमानिक में नहीं करेगें।

भावेन्द्रिय विस्तार-

भावेन्द्रिय क्षयोपशम को कहा गया है, वे 5 हैं। श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय। द्रव्येन्द्रिय के समान इनका भी चार द्वारों से वर्णन है यथा (1) एक एक जीव के त्रैकालिक भावेन्द्रियां (2) सभी (बहुत) जीवों में त्रैकालिक भावेन्द्रियां (3) एक एक जीव की सभी दंडकों में त्रैकालिक भावेन्द्रियां। (4) सभी (बहुत) जीवों की सभी दंडकों में त्रैकालिक भावेन्द्रियां।

भावेन्द्रियों के चारों द्वारों का सम्पूर्ण वर्णन द्रव्येन्द्रिय के चारों द्वार के वर्णन के समान हैं। उत्कृष्ट संख्याओं में अर्थात् संख्याता असंख्याता अनंता कहने में फर्क नहीं है किन्तु जघन्य संख्याओं में फर्क है अर्थात् 8के स्थान पर 5 हैं। 9 के स्थान पर 6हैं। 16के स्थान पर 10 हैं। 6, 12 के स्थान पर 4, 8 हैं। 4, 8 के स्थान पर 3, 6हैं। एक के स्थान पर एक और 2 के स्थान पर 2 हैं।

इन जघन्य संख्याओं के अतिरिक्त कोई फर्क नहीं हैं।

विशेष -इस प्रकरण में एकेन्द्रिय के द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय एक ही कहीं गई हैं। अतः कई चिंतक या व्याख्याकार वनसपति में पांच भावेन्द्रियां कह देवे तो वह कथन आगम सम्मत नहीं हैं। अतः श्रद्धा प्ररूपणा के योग्य नहीं हैं।

सोलहवां ''प्रयोग'' पद

आत्मा के द्वारा विशेष रूप से प्रकर्ष रूप से किया जाने वाला व्यापार, प्रयोग कहा जाता हैं। प्रचलन में इन्हें योग कहा जाता हैं। अन्यत्र आगम में भी इन्हें योग कहा गया हैं। अतः शब्द प्रयोग के अन्तर के अतिरिक्त योग एवं प्रयोग के अर्थ और भावार्थ में कोई विशेष अन्तर नहीं हैं।

प्रयोग पंद्रह–

4 मन के 4 वचन के एवं 7 काया के ये 15 हैं। ग्यारहवें भाषा पद में सत्य आदि चार प्रकार की भाषा कही गई है, वे ही चार प्रकार वचन योग के है एवं मन योग के भी चार प्रकार वे ही है अतः सत्य-असत्य, मिश्र एवं व्यवहार मन और वचन का अर्थ- भावार्थ वही समझना। भाषा में बोलने से प्रयोजन है एवं मन से उसी आशय का भाव का चिन्तन मनन करना हैं। काया के सात प्रयोग इस प्रकार है-

औदारिक काय प्रयोग– औदारिक शरीर की जो भी बाह्म एवं आभ्यंतर हलन-चलन स्पंदन रूप प्रवृत्तियां हैं। वह औदारिक काय प्रयोग हैं। मनुष्य तिर्यञ्च में सभी जीवों के यह प्रयोग होता हैं।

औदारिक मिश्र काय प्रयोग– औदारिक शरीर बनने के लिये उसके पूर्व जो आत्मा का व्यापार (प्रवृति रूप) होता है वही औदारिक मिश्र काय प्रयोग हैं। यह कार्मण के साथ जन्म समय में औदारिक शरीर पूरा न बन जाय तब तक होता है। वैक्रिय और आहारक दोनों लब्धि प्रयोग के बाद जब जीव पुनः औदारिक शरीर में अवस्थित होता है तब उस वैक्रिय या आहारक के साथ औदारिक मिश्र काय प्रयोग होता हैं। केवली समुदघात के प्रारम्भ में और अंत में कार्मण के साथ औदारिक मिश्र काय प्रयोग होता हैं।

वैक्रिय काय प्रयोग– वैक्रिय शरीर की जो भी हलन- चलन स्पंदन रूप बाह्म प्रवृत्तियें होती है, वह वैक्रिय काय प्रयोग हैं। नारकी देवता में सभी जीवों के यह प्रयोग होता हैं। कई मनुष्य तिर्यञ्चों के भी यदा कदा यह प्रयोग होता हैं।

वैक्रिय मिश्र काय प्रयोग– वैक्रिय शरीर बनने के पूर्व जो आत्मा का प्रवृति रूप व्यापार होता हैं। वह वैक्रिय मिश्र काय प्रयोग हैं। नारकी देवताओं के जन्म समय में यह कार्मण के साथ होता है अर्थात् वैक्रिय और कार्मण दोनों शरीर का सहयोगी मिश्रित व्यापार होता हैं। नरक देव में उत्तर वैक्रिय करते समय एवं मनुष्य तिर्यञ्च में वैक्रिय करते समय इच्छित रूप बनने के पूर्व यह प्रयोग होता हैं।

आहारक काय प्रयोग– 14 पूर्वधारी मुनिवरों के आहारक शरीर की जो बाह्म गमनागमन आदि रूप प्रवृति होती है, वह आहारक काय प्रयोग हैं। यह 14 पूर्वी आहारक लब्धि सम्पन्न मुनिवरों के होता हैं।

आहारक मिश्र काय प्रयोग– आहारक शरीर सम्पूर्ण बनने के पूर्व जो आत्मा का व्यापार होता है वह आहारक मिश्र काय प्रयोग हैं। यह भी लब्धि सम्पन्न मुनिवरों के होता हैं।

कार्मण काय प्रयोग– जन्म स्थान में पहुंचने के पूर्व मार्ग में औदारिक वैक्रिय शरीर के अभाव में यह कार्मण काय प्रयोग होता हैं। उस समय जीव के साथ तेजस और कार्मण ये दो शरीर ही होते हैं। दोनों के मिश्र प्रयोग को कार्मण की प्रमुखता मान कर आगम में एक कार्मण काय प्रयोग ही कहा जाता हैं। इसके अतिरिक्त केवली समुद्घात के आठ समयों में से बीच के तीन समय (तीसरा, चौथा, पांचवां) में कार्मण काय प्रयोग होता हैं।

पांचों शरीर का वर्णन स्वरूप बारहवें पद में बताया गया हैं।

चौवीस दडंक में प्रयोग-

1. नारकी देवता सभी में- 11 प्रयोग है- 4 मन के, 4 वचनके, 9. वैक्रिय 10. वेक्रिय मिश्र 11. कार्मण।

2. चार स्थावर में 3 प्रयोग- 1. औदारिक 2. औदारिक मिश्र 3. कार्मण।

3. वायुकाय में 5 प्रयोग- 1. औदारिक 2. औदारिक मिश्र 3. वैक्रिय 4. वैक्रिय मिश्र 5. कार्मण।

4.तीन विकेलन्द्रिय में 4 प्रयोग- 1. औदारिक 2. औदारिक मिश्र 3. कार्मण 4. व्यवहार वचन।

5. तिर्यंच पंचेन्द्रिय में 13 प्रयोग- आहारक और आहारक मिश्र इन दो के अतिरिक्त ।

6. मनुष्यों में- 15 प्रयोग होते हैं।

जीवों में शाश्वत अशाश्वत प्रयोग एवं उनके विकल्प-

शाश्वत प्रयोगों का एक विकल्प (भंग) होता हैं।

एक अशाश्वत प्रयोग के एक वचन बहुवचन से दो भंग बनते हैं।

दो अशाश्वत प्रयोग के एक वचन बहुवचन से असंयोगी चार भंग होते है और द्विसंयोगी भी चार भंग बन जाते हैं।

यथा- 1. दोनों एक वचन, 2. पहला एक वचन दूसरा बहुवचन, 3. पहला बहुवचन दूसरा एक वचन 4. दोनों बहुवचन। यह चौभंगी- चार भंग बनाने का तरीका हैं ये 2 अशाश्वत के कुल 8भंग होते हैं।

तीन अशाश्वत प्रयोगों के एक वचन बहुवचन से असंयोगी 6भंग होते हैं। द्विसंयोगी 12 भंग होते हैं। तीन अशाश्वत के तीन द्विक बनते है यथा- 1. पहला दूसरा 2. पहला तीसरा 3. दूसरा तीसरा। इन प्रत्येक द्विक की ऊपर बताये अनुसार चौभंगी बनती है अतः 3 × 4 = 12 भंग द्विसंयोगी। तीन संयोगी आठ भंग होते हैं यथा- पहले को एक वचन रखते हुए दूसरे तीसरे के द्विक से एक चौभंगी, फिर पहले को अनेक रखते हुए दूसरे तीसरे से पुनः वहीं चौभंगी, इस तरह दो चौभंगी के आठ भंग होते हैं। ये तीन अशाश्वत के कुल (6+ 12 + 8) = 26भंग होते हैं।

चार अशाश्वत प्रयोग हों तो 80 भंग बनते हैं। असंयोगी 8भंग होते हैं। द्विसंयोगी 6 द्विक के 6× 4 = 24 भंग होते हैं। 6द्विक इस प्रकार है- पहला दूसरा (1-2), (1-3), (1-4), (2-3), (2-4), (3-4)। तीन संयोगी चार त्रिक होते है और एकत्रिक के ऊपर बताये अनुसार आठ भंग होते हैं। अतः 8 × 4 = 32 भंग तीन संयोगी होते हैं। चार संयोगी 16भंग होते है, इसमें एक चतुष्क बनता है उसमें प्रथम को एक वचन रखते शेष बचे तीन के त्रिक से ऊपरोक्त विधि अनुसार आठ भंग होते हैं फिर प्रथम को बहुवचन करके शेष बचे तीन की त्रिक से पुनः आठ भंग होते हे यों 8+ 8= 16 भंग चार संयोगी के होते हैं ये चार आशाश्वत के कुल (8+ 24 + 32 + 16) 80 भंग होते है।

इस प्रकार शाश्वत प्रयोगों का एक और अशाश्वत प्रयोगों के अनेक भंग होते हैं। दोनों को मिलाने से-

1. शाश्वत भंग 1+1. अशाश्वत के भंग 2 = 3
2. शाश्वत भंग 1+2. अशाश्वत के भंग 8= 9
3. शाश्वत भंग 1+3. अशाश्वत के भंग 26= 27
4. शाश्वत भंग 1+4. अशाश्वत के भंग 80 = 81
5. सभी शाश्वत भंग (अभंग) = 1

क्रमांक	जीव	प्रयोग	शाश्वत प्रयोग	अशाश्वत प्रयोग	भंग
1.	समुच्चय जीव	15	13	2	9
2.	नारकी देवता	11	10	1	3
3.	चार स्थावर	3	3	×	
4.	वायुकाय	5	5	×	
5.	विकलेन्द्रिय	4	3	10	3
6.	तिर्यंच पंचेन्द्रिय	13	12	1	3
7.	मनुष्य	15	11	4	81

अशाश्वत प्रयोग–

1. समुच्चय जीव में– 1. आहारक 2. आहरक मिश्र। नारकी देवता में विकलेन्द्रिय एवं तिर्यंच पंचेन्द्रिय में एक कार्मण। मनुष्य में - औदारिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, कार्मण में चार अशाश्वत है।

भंग उच्चारण विधि–

समुच्चय जीव के 9 भंग– 1. सभी जीव 13 प्रयोग वाले (अन्य कोई भी नहीं हो) 2. अनेक 13 प्रयोग वाले, एक आहारक प्रयोग वाला 3. अनेक 13 प्रयोगी, अनेक आहारक प्रयोगी 4. अनेक 13 प्रयोगी मिश्र प्रयोगी, एक आहारक मिश्र प्रयोगी 5. अनेक 13 प्रयोगी अनेक आहारक मिश्र प्रयोगी। 6. अनेक 13 प्रयोगी एक आहारक प्रयोगी एक आहारक मिश्र प्रयोगी 7. अनेक 13 प्रयोगी, एक आहारक प्रयोगी, अनेक आहारक मिश्र प्रयोगी 8. अनेक प्रयोगी, अनेक आहारक प्रयोगी, एक आहारक मिश्र प्रयोगी 9. अनेक 13 प्रयोगी, अनेक आहारक प्रयोगी, अनेक आहारक मिश्र प्रयोगी।

इस प्रकार सभी भंगों का उच्चारण कर लेना चाहिये।

गति प्रवाह के भेद प्रभेद–

जीव और पुद्‌गल के हलन चलन स्पंदन रूप प्रवृति गति प्रवाह है। इसमें सभी प्रकार के जीवा जीव की गतियां समाविष्ट हो जाती है। गति प्रवाह के मुख्य पांच भेद है।

1. प्रयोग गति प्रवाह– उक्त 15 प्रयोगों (योगों) से प्रवृत्त मन वचन काय के पुद्‌गलों का हलन-चलन स्पंदन।

2. तत् गति प्रवाह– रास्ते चलते मंजिल पूर्ण होने के पूर्व जो क्रमिक मंद गति होता है वह जीव की सामान्य गति ही ''तत गति प्रवाह'' है।

3. बंधनच्छेद गति प्रवाह– जीव रहित होने पर शरीर की गति या शरीर से रहित जीव की गति अर्थात् मृत्यु होने पर जीव और शरीर की गति (गमन स्पंदन क्रिया) होती है वह बंधनच्छेद गति प्रवाह है।

4. उपपात गति– इसके तीन प्रकार है 1. क्षेत्रोपपात 2. भवोपपात 3. नो भवोपपात।

1. नरक गति आदि क्षेत्रगत आकाश में जीव आदि का ठहरना, रहना उसके लिये गति।

2. किसी भी जन्म स्थान में जन्म धारण कर उस पूरे भव में वहां क्रिया करते हुए रहना।

3. सिद्ध बनने के पूर्व की गमन क्रिया नो भवोपपात गति है।

5. विहायोगति- आकाश में होने वाली गति को विहायोगति कहते हैं। इसके 17 प्रकार है।

1. स्पर्शादगति 2. अस्पर्शाद गति 3. उपसंपद्यमान (आश्रय युक्त) गति 4. अनुपसंपद्यमान गति 5. पुद्गल (युक्त) गति 6. मण्डूक गति (उछलने रूप गति) 7. नावा की गति 8. नय गति (नयों का घटित होना) 9. छाया की गति 10. छायानुपात गति-छाया के समान अनुगमन रूप गति 11. लेश्या की गति 12. लेश्या के अनुरूप गति 13. उद्दिश्य गति (प्रमुखता स्वीकार कर रहना) 14. चार पुरूषों की सम-विषम गति अर्थात् साथ में रवाना होना, साथ में पहुंचना आदि चार भंग। 15. वक्र गति (टेढ़ी मेड़ी) 16. पंक गति 17. बंधन विमोचन गति। आम्र आदि फलों का स्वाभाविक टूट कर गिरना।

ये पांच प्रकार की एवं विविध प्रकार की गतियां जीव की प्रमुखता से कही गई है फिर भी अनेक गतियां अजीव में भी पाई जाता है जिसमें जो पावे यथा योग्य समझ लेना चाहिये।

सत्रहावां ''लेश्या'' पद

प्रथम उद्देशक

लेश्या आत्मा के साथ कर्मों को चिपकाने वाली है। यह जीव का परिणाम विशेष है यह योग निमित्तक है एवं इसके है एवं इसके द्रव्य योगांतर्गत है। यह कषायानुरंजित भी होती है एवं योगानुरंजित भी।

यह द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार की होती है। जीव के परिणाम भाव लेश्या है, अरूपी है। कृष्णादि द्रव्यों का जो ग्रहण होता है वही द्रव्य लेश्या है; रूपी है। योग और कषाय से ग्रहण किये जाने वाले कर्मों को आत्मा के साथ चिपकाने का कार्य कृष्णादि द्रव्य लेश्या से होता है।

द्रव्य भाव दोनों लेश्या के 6-6 प्रकार है- 1. कृष्ण 2. नील 3. कापोत 4. तेजो 5. पद्म 6. शुक्ल।

भाव लेश्या को ही अध्यवसाय एवं आत्म परिणाम कहा जाता है। इन तीनों के पर्याय शब्द समझना चाहिये।

सलेशी में आहार कर्म आदि सम विषम-

1. सलेशी नारकी में ''आहार शरीर उच्छवास'' समान नहीं होते क्योंकि शरीर की अवगाहना छोटी बड़ी होती है। छोटी अवगाहना में ये आहारादि अल्प होते हैं बड़ी अवगाहना में ये अधिक होते हैं।

इसी तरह भवनपति आदि 23 दंडक के जानना। किन्तु मनुष्य युगलिया बड़ी अवगाहना होते हुए भी आहार के पुद्गल अधिक तो ग्रहण करता है किन्तु बारंबार नहीं करता है यह फर्क है। शेष में बड़ी अवगाहना वाले बारंबार करते हैं।

2. सलेशी नारकी में ''कर्म-वर्ण-लेश्या'' समान नहीं होते हैं क्योंकि पूर्वोत्पन्न के ये विशुद्ध होते हैं नूतनोत्पन्न के ये अविशुद्ध होते हैं।

देवताओं में पूर्वोत्पन्न में ये अविशुद्ध होते है नूतनोत्पन्न में ये विशुद्ध होते हैं। शेष दंडकों में नरक के समान हैं।

3. सलेशी नैरयिक में वेदना समान नहीं होती है सन्नी भूत में और सम्यग्दृष्टि में ज्यादा वेदना होती है असन्निभूत में और मिथ्या दृष्टि में अल्प वेदना होती हैं।

देवताओं में इसी तरह कथन हैं। पांच स्थावर तीन विकलेन्द्रिय में वेदना समान है सभी असन्नि भूत होने से। सन्नी तिर्यञ्च मनुष्य के वेदना का कथन नरक के समान हैं।

4. सलेशी नैरयिकों में ''क्रिया'' समान नहीं होती हैं। क्योकि सम्यग्दृष्टि में आरंभिका आदि 4 क्रिया होती है, मिथ्यादृष्टि में पांचों क्रियाएं होती हैं।

देवों में और तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में इसी प्रकार हैं। पांच स्थावर तीन विकलेन्द्रिय में उक्त पांचों क्रिया है अतः समान हैं। मनुष्य में मिथ्या दृष्टि में पांच क्रिया सम्यग्दृष्टि में 4 क्रिया, देश विरत में 3 क्रिया, सर्वविरत में 2 क्रिया, अप्रमत्त संयम में 1 क्रिया, वीतराग में अक्रिया ।

5. सलेशी नैरायिकों में आयुष्य सभी का समान नहीं होता है क्योंकि अल्पाधिक आयुष्य वाले होते है पूर्वोत्पन्न नूतनोत्पन्न भी होते है। अतः सभी नैरायिकों में आयुके सम-विषम सम्बन्धी चार भाग होते है- 1. कई समान आयु वाले और साथ में उत्पन्न। 2. कई समान आयु वाले किन्तु भिन्न समय में उत्पन्न। 3. कई असमान आयु वाले साथ में उत्पन्न। 4. कई असमान आयु वाले और भिन्न समय में उत्पन्न।

इसी तरह सभी दंडक में नरक के समान आयु कहना।

कृष्ण लेश्या वाले-नारकों में सन्नी असन्नी का विकल्प नहीं कहना। मनुष्य में अप्रमत्त आदि आगे के विकल्प नहीं करना। ज्योतिषी वैमानिक का कथन ही नहीं करना क्यों कि यह लेश्या उनमें नहीं है।

नील लेश्या वाले-कृष्ण के समान कथन है।

कापोत लेश्या वाले-कृष्ण के समान कथन है किन्तु नरक में सन्नी असन्नि का विकल्प कहना।

तेजो लेश्या वाले-नारकी, तेउ, वायु, तीन विकेलेन्द्रिय का कथन ही नहीं करना। देवताओं में सन्नीभूत असन्नी भूत का विकल्प नहीं कहना। शेष में सलेषी के समान कथन है किन्तु मनुष्य में अप्रमत्त तक कथन करना आगे का कथन नहीं करना।

पद्म शुक्ल लेश्या वाले-मनुष्य, तिर्य्च, पंचेन्द्रिय एवं वैमानिक का कथन करना। शेष में दोनों लेश्या नहीं है। सम्पूर्ण कथन सलेशी के समान है।

दूसरा उद्देशक

लेश्याओं की अल्पाबहुत्व-

	लेश्या	वर्ण	रस	गंध	स्पर्श	परिणाम
(1)	कृष्ण	खंजन पक्षी, अंजन मेघ भ्रमर मेघ भ्रमर कोकिला हथिनि	नीम, कड़वी ककड़ी कड़वा तूम्बा, नीम की छाल, निम्बोली	अति दुर्गंध, अप्रशस्त	शीत, रूक्ष	संक्लेशयुक्त दुर्गति वाहक
(2)	नील	तोते, पींछ मयूर-कपोत के कंठ, नीलकमल के वन	पीपर, अदरक, मिर्च राई, राजपीपर	उपरोक्त	उपरोक्त	उपरोक्त
(3)	कापोत	खदिर वृक्ष का सार, सण पुष्प वृन्ताक पुष्प	कच्चा बिजोर, कद्दूफल बोर, फणस, आंवला	उपरोक्त	उपरोक्त	उपरोक्त
(4)	तेजो	पद्मरागमणि, उगता सूर्य, संध्या, चणोठी का अर्ध भाग, परवाला के रंग	पके हुए आम्र फल, स्वादिष्ट	अत्यन्त सुवासित प्रशस्त, निर्मल	स्निग्ध, उष्ण	शांतिदायक सुगतिवाहक
(5)	पद्म	सुवर्ण, युथिका पुष्प कनेर पुष्प चम्पापुष्प	द्राक्ष, खजूर, महुड़ा, आसव, चन्द्र प्रभा मदिरा	उपरोक्त	उपरोक्त	उपरोक्त
(4)	शुक्ल	गाय के दूध,दही, समुद्र के झाग शरद् ऋतु के बादल	मिश्री, गुड़, शक्कर गन्नादि अति मधुर वस्तुओं की तरह	उपरोक्त	उपरोक्त	उपरोक्त

लेश्या और जीवों में उनकी अल्पबहुत्व :-

	जीव नाम	लेश्या	कृष्ण	नील	कापोत	तेजो	पद्म	शुक्ल	अलेशी
1	समुच्चय जीव	6	7 विशे.	6 विशे.	5 अनंत	3 सं.	2 सं.	1 अल्प	4 अनंत
2	नारकी	3	1 अल्प	2 असं.	3 असं.	-	-	-	-
3	तिर्यंच	6	6 विशे.	5 विशे.	4 अनं.	3 सं.	2 सं.	1 अल्प	-
4	एकेन्द्रिय	4	4 विशे.	3 विशे.	2 अनं.	1 अल्प	-	-	-
5	पृथ्वीकाय	4	4 विशे.	3 विशे.	2 असं.	1 अल्प	-	-	-
6	अप्काय	4	4 विशे.	3 विशे.	2 अनं.	1 अल्प	-	-	-
7	वनस्पति	4	4 विशे.	3 विशे.	2 अनं.	1 अल्प	-	-	-
8	वायुकाय	3	3 विशे.	2 विशे.	1 अल्प	-	-	-	-
9	तेउकाय	3	3 विशे.	2 विशे.	1 अल्प	-	-	-	-
10	द्वीन्द्रिय	3	3 विशे.	2 विशे.	1 अल्प	-	-	-	-
11	त्रीन्द्रिय	3	3 विशे.	2 विशे.	1 अल्प	-	-	-	-
12	चतुरिन्द्रिय	3	3 विशे.	2 विशे.	1 अल्प	-	-	-	-
13	समु.तिर्यंच पंचे.	6	6 विशे.	5 विशे.	4 असं.	3 सं.	2 सं.	1 अल्प	-
14	असंज्ञी ति. पंचे.	3	3 विशे.	2 विशे.	1 अल्प	-	-	-	-
15	गर्भज ति. पंचे.	6	6 विशे.	5 विशे.	4 असं.	3 सं.	2 सं.	1 अल्प	-
16	गर्भज स्त्री ति. पंचे.	6	6 विशे.	5 विशे.	4 असं.	3 सं.	2 सं.	1 अल्प	-
17	समुच्चय मनुष्य	6	7 विशे.	6 विशे.	5 असं.	4 सं.	3 सं.	2 सं.	1 अल्प
18	समुर्च्छिम मनुष्य	3	3 विशे.	2 विशे.	1 अल्प	-	-	-	-
19	गर्भज मनुष्य	6	7 विशे.	6 विशे.	5 सं.	4 सं.	3 सं.	2 सं.	1 अल्प
20	गर्भज स्त्री	6	7 विशे.	6 विशे.	5 सं.	4 सं.	3 सं.	2 सं.	1 अल्प
21	समुच्चय देव	6	5 विशे.	4 विशे.	3 असं.	6 सं.	2 असं.	1 अल्प	
22	समुच्चय देवी	4	3 विशे.	2 विशे.	1 अल्प	4 सं.	-	-	-
23	भवनपति देव	4	4 विशे.	3 विशे.	2 असं.	1 अल्प	-	-	-
24	भवनपति देवी	4	4 विशे.	3 विशे.	2 असं.	1 अल्प	-	-	-
25	व्यंतर देव	4	4 विशे.	3 विशे.	2 असं.	1 अल्प	-	-	-
26	व्यंतर देवी	4	4 विशे.	3 विशे.	2 असं.	1 अल्प	-	-	-
27	ज्योतिषी देव	1	-	-	-	1 सभी	-	-	-
28	ज्योतिषी देवी	1	-	-	-	1 सभी	-	-	-
29	वैमानिक देव	3 विशुद्ध	-	-	-	3 असं.	2 असं.	1 अल्प	-
30	वैमानिक देवी	1	-	-	-	1 सभी	-	-	-

गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय और तिर्यंच स्त्री के 12 बोल शामिल अल्प बहुत्व- अल्प बहुत्व इस प्रकार हैं-

	लेश्या	कृष्ण	नील	कापोत	तेजो	पदम	शुक्ल
गर्भज तिर्यंच	6	9 विशे.	8 विशे.	7 सं.	5 सं.	3 सं.	1 अल्प
गर्भज तिर्यंचणी	6	12 विशे.	11 विशे.	10 सं.	6 सं.	4 सं.	2 संख्यात

तिर्यंच स्त्री और सम्मुर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय के 9 अल्प बहुत्व-उपरोक्त अनुसार कहना गर्भज तिर्यंच के स्थान स्त्री कहना।

गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय और सम्मुर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय 9 बोल-अल्प बहुत्व-

गर्भज तिर्यंच पं.	6	6 विशे.	5 विशे.	4 सं.	3 सं.	2 सं.	1 अल्प
सम्मुर्च्छिम ति.पं.	3	9 विशे.	8 विशे.	1 असं.	-	-	-

गर्भज ति. पंचेन्द्रिय गर्भज स्त्री और सम्मुर्च्छिम ति. पंचे. 15 बोल अल्प बहुत्व-

	लेश्या	कृष्ण	नील	कापोत	तेजो	पदम	शुक्ल
गर्भज तिर्यंच	6	9 विशे.	8 विशे.	7 सं.	5 सं.	3 सं.	1 अल्प
गर्भज तिर्यंचणी	6	12 विशे.	11 विशे.	10 सं.	6 सं.	4 सं.	2 संख्यात
सम्मुर्च्छिम तिर्यंच	3	15 विशे.	14 विशे.	13 असं.			

समुच्चय तिर्यंच पंचेन्द्रिय, तिर्यंच स्त्री के 12 बोल अल्प बहुत्व-

	लेश्या	कृष्ण	नील	कापोत	तेजो	पदम	शुक्ल
तिर्यंच पंचेन्द्रिय	6	12 विशे.	11 विशे.	10 असं.	5 सं.	3 सं.	1 अल्प
तिर्यंच स्त्री	6	9 विशे.	8 विशे.	7 सं.	6 सं.	4 सं.	2 सं.

समुच्चय तिर्यंच और तिर्यंच स्त्री के 12 बोल अल्प बहुत्व-उपरोक्त समुच्चय तिर्यंच पंचेन्द्रिय तिर्यंच स्त्री की तरह है, किन्तु 10वें बोल में कापोत लेश्या वाले तिर्यंच अनंत कहना।

गर्भज मनुष्य और गर्भज स्त्री के 12 बोल अल्प बहुत्व-

नाम जीव	लेश्या	कृष्ण	नील	कापोत	तेजो	पदम	शुक्ल
गर्भज मनुष्य	6	9 विशे.	8 विशे.	7 सं.	5 सं.	3 सं.	1 अल्प
गर्भज स्त्री	6	12 विशे.	11 विशे.	10 सं.	6 सं.	4 सं.	2 सं.

गर्भज मनुष्य तथा सम्मुर्च्छिम के 9-9 अल्प बहुत्व-

गर्भज मनुष्य/स्त्री	6	6 विशे.	5 विशे.	4 असं.	3 सं.	2 सं.	1 अल्प
सम्मुर्च्छिम	3	9 विशे.	8 विशे.	7 असं.			

गर्भज मनुष्य और गर्भज स्त्री तथा सम्मुर्च्छिम मनुष्य का 15 बोलों का अल्प बहुत्व-

गर्भज मनुष्य	6	9 विशे.	8 विशे.	7 सं.	5 सं.	3 सं.	1 अल्प
गर्भज स्त्री	6	12 विशे.	11 विशे.	10 सं.	6 सं.	4 सं.	2 सं.
सम्मुर्च्छिम मनुष्य	3	15 विशे.	14 विशे.	13 असं.			

सम्मुचय मनुष्य,स्त्री की अल्प बहुत्व 12 बोल-

मनुष्य समुच्चय	6	12 विशे.	11 विशे.	10 असं.	5 सं.	3 सं.	1 अल्प
स्त्री समुच्चय	6	9 विशे.	8 विशे.	7 सं.	6 सं.	4 सं.	2 सं.

देव देवी के 10 बोलों का शामिल अल्प बहुत्व-

	लेश्या	कृष्ण	नील	कापोत	तेजो	पदम	शुक्ल
देव	6	5 विशे.	4 विशे.	3 असं.	9 सं.	2 असं.	1 अल्प
देवी	4	8 विशे.	7 विशे.	6 सं.	10 सं.	-	-

भवनपति देव देवियों के 8 अल्प बहुत्व-

नाम	लेश्या	कृष्ण	नील	कापोत	तेजो
भवनपति देव	4	5 विशे.	4 विशे.	3 असं.	1 अल्प
भवनपति देवी	4	8 विशे.	7 विशे.	6 सं.	2 सं.

व्यंतर देव देवी के 8 बोल- भवनपति की तरह कहना भवनपति देव-देवी की जगह व्यंतर कहना।

ज्योतिषी देव देवी के 2 बोल- 1. सबसे अल्प ज्योतिषी देव 2. देवियां संख्यात गुणा तेजोलेश्या ही होती है।

वैमानिक देव, देवी के 4 बोल-

देव	लेश्या	तेजो	पदम	शुक्ल
वैमानिक देव	3	3 असं.	2 असं.	1 अल्प
वैमानिक देवी	1	1 सं.	-	-

समुच्चय देवों के 12 बोल का अल्प बहुत्व-

देव	लेश्या	कृष्ण	नील	कापोत	तेजो	पदम	शुक्ल
भवनपति देव	4	7 विशे.	6 विशे.	5 असं.	4 असं.	-	-
व्यंतर देव	4	11 विशे.	10 विशे.	9 असं.	8 असं.	-	-
ज्योतिषी देव	1	-	-	-	12 सं.	-	-
वैमानिक देव	3	-	-	-	3 असं.	2 असं.	1 अल्प

समुच्चय देवियों के 10 अल्प बहुत्व-

नाम	लेश्या	कृष्ण	नील	कापोत	तेजो	पदम	शुक्ल
भवनपति देवियां	4	5 विशे.	4 विशे.	3 असं.	2 असं.	-	-
व्यंतर देवियां	4	9 विशे.	8 विशे.	7 असं.	6 असं.	-	-
ज्योतिषी देवियां	1	-	-	-	10 सं.	-	-
वैमानिक देवियां	1	-	-	-	1 अल्प	-	-

देव देवियों के 22 बोल अल्प बहुत्व-

नाम	लेश्या	कृष्ण	नील	कापोत	तेजो	पदम	शुक्ल
भवनपति देव		9 विशेष.	8 विशेष.	7 असं.	5 असं.	-	-
भवनपति देवी		12 विशेष.	11 विशेष.	10 सं.	6 सं.	-	-
व्यंतर देव		17 विशेष.	16 विशेष.	15 असं.	13 असं.	-	-
व्यंतर देवी		20 विशेष.	19 विशेष.	18 सं.	14 सं.	-	-
ज्योतिषी देव		-	-	-	21 सं.	-	-
ज्योतिषी देवी		-	-	-	22 सं.	-	-
वैमानिक देव		-	-	-	3 असं.	2 असं.	1 अल्प
वैमानिक देवी		-	-	-	4 सं.	-	-

गर्भज तिर्यंच तिर्यंचणी की सम्मिलित अल्पाबहुत्व-

1. सबसे थोड़ा शुक्ललेशी तिर्यंच, 2. शुक्ल लेशी तिर्यंचणी संख्यातगुणी 3. पद्मलेशी तिर्यंच संख्यातगुणा 4. पद्मलेशी तिर्यंचणी संख्यातगुणी 5. तेजो लेशी तिर्यंचणी संख्यातगुणा 6. तेजोलेशी तिर्यंचणी संख्यात गुणी 7. कापोत लेशी तिर्यंच संख्यात गुणा 8. नील लेशी तिर्यंच विशेषाधिक 9. कृष्ण लेशी तिर्यंच विशेषाधिक 10. कापोत लेशी तिर्यंचणी संख्यातगुणी 11. नीललेशी तिर्यंचणी विशेषाधिक 12. कृष्णा लेशी तिर्यंचणी विशेषाधिक।

देव देवी की सम्मिलित अल्पाबहुत्व-

1. सबसे थोड़ा शुक्ल लेशी देव 2. पद्मलेशी असंख्यगुणा 3. कापोतलेशी देव असंख्यगुणा 4. नील लेशी देव विशेषाधिक 5. कृष्णलेशी देव विशेषाधिक 6. कापोतलेशी देवियां संख्यात गुणी 7. नील लेशी देवियां विशेषाधिक 8. कृष्णलेशी देवियां विशेषाधिक 9. तेजोलेशी देव संख्यातगुणा 10. तेजो लेशी देवियां संख्यातगुणी।

भवनपति देव देवी की सम्मिलित अल्पाबहुत्व-

1. सबसे थोड़ा तेनो तेजो देव 2. तेजोलेशी देवियां संख्यातगुणी 3. कापोतलेशी देव असंख्यगुणा 4. नीललेशी देव विशेषाधिक 5. कृष्णलेशी देव विशेषाधिक 6. कापोतलेशी देवी संख्यातगुणी 7. नीललेशी देवी विशेषाधिक 8. कृष्णलेशी देवी विशेषाधिक।

इसी प्रकार व्यंतर देव देवी की अल्पाबहुत्व है। ज्योतिषी देव देवी में और वैमानिक देवी में एक तेजो लेश्या ही होती है अतः अल्पाबहुत्व नहीं है।

अल्प ऋद्धि महा ऋद्धि-

जहां जितनी लेश्या है उसमें पूर्व की लेश्या कृष्ण आदि अल्प ऋद्धि वाली है बाद की क्रमशः महा ऋद्धि वाली है।

तीसरा उद्देशक

1. नैरयिक ही नरक में उत्पन्न होता है, अन्य अनैरयिक जीव नरक में उत्पन्न नहीं होते क्योंकि नरक का आयु आरम्भ होने के बाद ही जीव वहां आते हैं। अतः उत्पत्ति स्थान की अपेक्षा यही उत्तर 24 ही दंडक में समझना अर्थात् मनुष्य ही मनुष्य में या देवता ही देव योनि स्थान में उत्पन्न होता है।

2. इसी प्रकार कृष्णा आदि लेश्या वाला ही कृष्ण आदि लेश्या में उत्पन्न होता है। जिस लेश्या में जीव उत्पन्न होता है, नारकी देवता में उसी लेश्या में मरते हैं। और तिर्यंच मनुष्य में उसी लेश्या में या अन्य किसी भी लेश्या में मरता है। किन्तु जिस लेश्या में जीव मरते हैं उसी लेश्या में उत्पन्न होते हैं। यह नियम 24 ही दंडक में है।

3. जिस दंडक में जितनी लेश्या है उनकी अपेक्षा उक्त कथन समझ लेना। पृथ्वी पानी वनस्पति तेजोलेश्या में उत्पन्न होने वाले तेजोलेश्या में नहीं मरते अन्य तीन कृष्णादि में मरते हैं।

4. ज्योतिषी वैमानिक में उवट्टण (मरने) के स्थान पर च्यवन कहा जाता है यह सर्वत्र ध्यान रखना अर्थात् जिस लेश्या में जन्में उसी लेश्या में च्यवे।

नोट- नारकी देवता में प्रत्येक में जीवन भर एक ही लेश्या होती है यह द्रव्य लेश्या की अपेक्षा ही समझना भाव लेश्या कोई भी हो सकती है।

5. कृष्ण लेशी कृष्णलेशी नैरायिकों के अवधि ज्ञान में क्षेत्र आदि की अपेक्षा अत्यल्प अन्तर होता हैं। कृष्ण और नील लेश्या वालों के अवधिज्ञान के क्षेत्र एवं विशुद्धि में कुछ विशेष अन्तर होता है और कृष्ण एवं कापोत में उससे और कुछ अधिक अन्तर होता है । इन तीनों के अन्तर के लिये तीन दृष्टांत-1. समभूमि पर दो व्यक्ति खड़े होकर देखे तो उनकी दृष्टियों में अत्यल्प अन्तर होता हैं। 2. एक व्यक्ति सम भूमि पर दूसरा पहाड़ पर खड़ा रहकर देखें 3. एक सम भूमि पर दूसरा पर्वत के शिखर पर खड़ा रहकर देखे। इस प्रकार का तीनों लेश्या वालों के आपस में अवधि ज्ञान का अन्तर समझना।

नारकी का अवधि क्षेत्र जघन्य आधाकोश और उत्कृष्ट 4 कोश होता हैं। अवधि क्षेत्र के अनुपात से द्रव्य काल एवं विशुद्धि अविशुद्धि में अन्तर होता है।

6. पांच लेश्या में चार ज्ञान तीन अज्ञान हो सकते हैं। शुक्ल लेश्या में 5 ज्ञान 3 अज्ञान हो सकते हैं अर्थात् कृष्णादि पांच लेश्या में 2 ज्ञान 3 ज्ञान 4 ज्ञान हो सकते है एंव शुक्ल लेश्या में दो, तीन, चार एवं एक ज्ञान (केवल ज्ञान) हो सकता हैं।

चौथा उद्देशक-

परिणामांतर- दूध छाछ से परिणामांतर को प्राप्त होता हैं। वस्त्र विविध रंगों में परिवर्तित होता है उसी प्रकार लेश्या भी अन्य लेश्या में परिणत हो सकती हैं।

वैडूर्यमणि में जिस रंग का धागा पिरोया जाय वैसा मणि का रंग दिखता हैं। इस अपेक्षा भी लेश्या में परिणामांतर देखा जाता हैं।

वर्ण- कृष्ण लेश्या का वर्ण काला होता है यथा- अंजन, खंजन, भेंस का सींग, जामुन, गीला अरीठा, घने बादल, कोयल, कौआ, भंवरों की पंक्ति, हाथी का बच्चा, मस्तक के बाल, काला अशोक, काला कनेर आदि।

नील लेश्या का वर्ण नीला होता है यथा- तोता, चास पक्षी, कबूतर की ग्रीवा, अलसी का फूल, नील कमल, नीला अशोक, नीला कनेर आदि।

कापोत लेश्या का ताम्र वर्ण होता है यथा- तांबा, खैर सार, अग्नि, बेंगन का फूल, जवासा का फूल।

तेजोलेश्या का लेश्या का वर्ण लाल होता है यथा- खरगोश आदि पशुओं का खून, मनुष्यों का खून, मखमली वर्षाती कीड़ा, बाल सूर्य, लाल दिशा, चिरमी, हिंगलू, मूंगा, लाक्षारक्ष, लोहिताक्ष मणि, किरमची रंग का कम्बल, हाथी का तालुआ, जपाकुसुम किंशुक (टेसु) का फूल, लाल अशोक, लाल कनेर, लाल बंधुजीवक।

पद्मलेशी का वर्ण पीला होता है यथा- हल्दी, चम्पक छाल, हरताल, स्वर्ण शुक्ति, स्वर्ण रेखा, पीताम्बर, चम्पा फूल, कनेर, फूल, कुष्मांड लता, जूही फूल, कोरंट फूल, पीला अशोक, पीला कनेर, पीला बंधुजीवक।

शुक्ल लेश्या का वर्ण सफेद होता है यथा- अंकरत्न, शंख, चन्द्रमा, स्वच्छ जल फेन, दूध, दही, चांदी, शरद ऋतु के बादल, पुण्डरीक कमल, चावलों का आटा, सफेद अशोक, कनेर, बंधुजीवक।

इन छः लेश्या में कपोत लेश्या का वर्ण मिक्स वर्ण है, शेष के पांच वर्ण स्वतंत्र हैं।

रस- कृष्ण लेश्या का रस कड़वा होता है यथा- नीम, तुम्बा, रोहिणी, कुटज, कड़वी ककड़ी आदि।

नील लेश्या का तिक्त रस होता है यथा- सूंठ, लाल मिर्ची, काली मिर्ची, पीपर, पीपरा-मूल चित्रमूलक, पाठा वनस्पति आदि।

कापोत लेश्या का रस कच्चे फलों के समान खट्टा होता है- आम, बैर, कवीट, बिजोरा, दाडिम, फनस, आदि।

तेजोलेश्या का रस पके फलों के समान कम खट्टा अधिक मीठा होता हैं।

पद्मलेश्या का रस आसव, अरिष्ट, अवलेह, मद्य के समान होता हैं। शुक्ल लेश्या का रस मीठा होता है यथा- गुड़, शक्कर, मिश्री, मिष्ठान्न आदि।

उक्त पदार्थों से कई गुणा अधिक रस इन लेश्याओं का होता हैं।

गंध- कृष्णादि तीन लेश्याएं दुर्गन्धमय होती है और तेजो आदि तीन लेश्याएं सुगंधमय होती है। अर्थात् मृत कलेवरों सी दुर्गन्ध वाली एवं फूलों की खुशबू सदृषा सुगंध वाली होती हैं।

स्पर्श- कृष्णादि तीन लेश्या का स्पर्श खुरदरा होता हैं। तेजोलेश्या आदि तीन का स्पर्श सुहाला (मृदु) होता हैं।

तीन लेश्याए प्रशस्त है, तीन अप्रशस्त हैं। तीन संक्लिष्ट परिणामी है, तीन असंक्लिष्ट परिणामी हैं। तीन दुर्गति गामी है, तीन सद्गति गामी हैं। तीन शीत रूक्ष है, तीन उष्ण स्निग्ध हैं।

परिणाम- जघन्य मध्यम उत्कृष्ट के भेद से लेश्याओं के परिणाम तीन तरह के होते है। इनके भी पुनः जघन्य उत्कृष्ट तीन भेद होते है ये क्रमशः पुनः पुनः तीन- तीन भेद होने से लेश्याओं के परिणाम 3-9-27-81-243 प्रकार के होते हैं।

प्रदेशा आदि- लेश्याओं के अनंत प्रदेशी स्कंध हैं। असंख्य आकाश प्रदेशों की अवगाहना होती हैं। प्रत्येक लेश्या की अनंत वर्गणाएं होती हैं। प्रत्येक लेश्या के असंख्य स्थान असंख्य दर्जे होते हैं।

अल्पबहुत्व -सबसे कम कापोत लेश्या के स्थान द्रव्य से एवं प्रदेश से है उससे नील, कृष्ण, तेजो पद्म एंव शुक्ल लेश्या के स्थान उत्तरोत्तर असंख्य गुण हैं। द्रव्य से प्रदेश अनंतगुणे है।

पांचवा उद्देशक-

एक लेश्या दूसरी लेश्या में जो परिणत होती है वह अपेक्षा मात्र से परिणत होती है अर्थात् वह छाया मात्र से, या आकार मात्र से प्रतिबिम्बित होती है किन्तु वास्तव में स्वरूप की अपेक्षा व लेश्या दूसरी लेश्या नहीं बन जाती है। ऐसा छहों लेश्याओं में परस्पर समझ लेना चाहिए।

छठा उद्देशक-

1. पन्द्रह कर्म भूमि मनुष्य मनुष्यणी में छः लेश्या होती है। अकर्म भूमिज एवं अन्तर द्वीपज मनुष्य मनुष्यणी में चार लेश्या होती है। पद्म और शुक्ल लेश्या नहीं होती है।

2. कोई भी लेश्या वाला मनुष्य हो या मनुष्यणी हो वह छहों लेश्या वाले पुत्र-पुत्री के जनक या जननी हो सकते हैं। कर्म भूमि अकर्म भूमि दोनों में ही इसी तरह समझना अर्थात् लेश्या सम्बन्धी प्रतिबंध माता-पिता, पुत्र-पुत्री में नहीं होता है।

नोट- लेश्याओं के लक्षण उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन 34 में कहे हैं इसकी जानकारी के लिये वहां देखें।

अठारहवां ''कायस्थिति'' पद-

सामान्य रूप अथवा विशेष रूप पर्याय में जीव निरन्तर रहने का काल कायस्थिति है। स्थिति एक भव की उम्र को कहा जाता है। कायस्थिति में अनेकों अनंता भव भी गिने जा सकते हैं और पूरा एक भव भी नहीं होता है। दंडक, गति आदि की एवं जीव के भाव पर्याय ज्ञान दर्शन योग उपयोग कषाय लेश्या आदि की भी कायस्थिति होती है ऐसे यहां मुख्य 22 से कायस्थिति कही गई है। प्रत्येक द्वार में अनेका अनेक प्रकार है। यथा-

अ.अ.=अनादि अनंत। अ.सा.=अनादि सांत। सा.सां.=सादि सांत। अंत.मु.=अन्तर्मुहुर्त। सं.=संख्याता। असं.=असंख्याता।

क्रम.	मार्गणा	जघन्य काय स्थिति	उत्कृष्ट काय स्थिति
1	**जीव द्वार**		
1.	समुच्चय जीव	शाश्वत	शाश्वत
2.	**गति द्वार**		
2.	नारकी	दस हजार वर्ष	33 सागरोपम
3.	देवता	दस हजार वर्ष	33 सागरोपम
4.	देवी	दस हजार वर्ष	55 पल्य
5.	तिर्यंच (नपुंसक)	अन्तर्मुहुर्त	अनंत काल (वनस्पति.)
6.	तिर्यंच पुरुष, तिर्यंचणी	अन्तर्मुहुर्त	3 पल्य और प्रत्येक करोड़ पूर्व
7.	मनुष्य	अन्तर्मुहुर्त	3 पल्य और प्रत्येक करोड़ पूर्व
8.	मनुष्यणी	अन्तर्मुहुर्त	3 पल्य और प्रत्येक करोड़ पूर्व
9.	सिद्ध भगवान	-	सादि अनंत (शाश्वत)
10 से 16	2 से 8 तक के अपर्याप्ता	अन्तर्मुहुर्त	अन्तर्मुहुर्त
17	पर्याप्ता नारकी	अन्तर्मुहुर्त कम दस हजार वर्ष	अन्तर्मुहुर्त कम 33 सागरोपम
18	पर्याप्ता देव	अन्तर्मुहुर्त कम दस हजार वर्ष	अन्तर्मुहुर्त कम 33 सागरोपम
19	पर्याप्ता देवी	अन्तर्मुहुर्त कम दस हजार वर्ष	अन्तर्मुहुर्त कम 55 पल्योपम
20	पर्याप्ता तिर्यंच	अन्तर्मुहुर्त	अन्तर्मुहुर्त कम 3 पल्योपम
21	पर्याप्ता तिर्यंचणी	अन्तर्मुहुर्त	अन्तर्मुहुर्त कम 3 पल्योपम
22	पर्याप्ता मनुष्य	अन्तर्मुहुर्त	अन्तर्मुहुर्त कम 3 पल्योपम
23	पर्याप्ता मनुष्यणी	अन्तर्मुहुर्त	अन्तर्मुहुर्त कम 3 पल्योपम
3	**इन्द्रिय द्वार-**		
24	सइन्द्रिय	-	अनादि अनंत, अ.सा. (1000 सागर सा.)
25	एकेन्द्रिय	अन्तर्मुहुर्त	अनंत काल (वनस्पति)
26	बेइन्द्रिय	अन्तर्मुहुर्त	संख्याता काल
27	तेइन्द्रिय	अन्तर्मुहुर्त	संख्याता काल
28	चतुरिन्द्रिय	अन्तर्मुहुर्त	संख्याता काल

29	पंचेन्द्रिय	अन्तर्मुहुर्त	1000 सागर साधिक
30	अनिन्द्रिय	-	सादि अनंत
31से36	24 से 29 तक के अपर्याप्ता	अन्तर्मुहुर्त	अन्तर्मुहुर्त
37	सइन्द्रिय	अन्तर्मुहुर्त	अनेक सौ सागर
38	एकेन्द्रिय	अन्तर्मुहुर्त	संख्याता हजार वर्ष
39	बेइन्द्रिय	अन्तर्मुहुर्त	संख्याता वर्ष
40	तेइन्द्रिय	अन्तर्मुहुर्त	संख्याता अहोरात्रि
41	चौरेन्द्रिय	अन्तर्मुहुर्त	संख्याता मास
42	पंचेन्द्रिय	अन्तर्मुहुर्त	अनेक सौ सागर
4. 43	**काय द्वार** सकायी	 -	 अ.अ., अ. सांत
44	पृथ्वीकाय	अन्तर्मुहुर्त	असंख्याता काल (पृथ्वीकाल)
45	अप्काय	अन्तर्मुहुर्त	असंख्याता काल (पृथ्वीकाल)
46	तेउकाय	अन्तर्मुहुर्त	असंख्याता काल (पृथ्वीकाल)
47	वायुकाय	अन्तर्मुहुर्त	असंख्याता काल (पृथ्वीकाल)
48	वनस्पति काय	अन्तर्मुहुर्त	अनंत काल (वनस्पति)
49	त्रस काय	अन्तर्मुहुर्त	संख्याता वर्ष साधिक 2000 सागरोपय
50	अकाय	-	सादि अनंत
51 से 57	43 से 49 तक के अपर्याप्ता	अन्तर्मुहुर्त	अन्तर्मुहुर्त
58	सकाय पर्याप्ता	अन्तर्मुहुर्त	प्रत्येक सौ सागर साधिक
59	पृथ्वीकाय पर्याप्ता	अन्तर्मुहुर्त	संख्याता हजार वर्ष
60	अप्काय पर्याप्ता	अन्तर्मुहुर्त	संख्याता हजार वर्ष
61	तेउकाय पर्याप्ता	अन्तर्मुहुर्त	संख्याता दिन
62	वायुकाय पर्याप्ता	अन्तर्मुहुर्त	संख्याता हजार वर्ष
63	वनस्पतिकाय पर्याप्ता	अन्तर्मुहुर्त	संख्याता हजार वर्ष
64	त्रसकाय पर्याप्ता	अन्तर्मुहुर्त	प्रत्येक सौ सागर साधिक
65	समुच्चय बादर	अन्तर्मुहुर्त	असंख्याता काल (बादर)
66	बादर वनस्पति	अन्तर्मुहुर्त	असंख्याता काल (बादर)
67	समुचचय निगोद	अन्तर्मुहुर्त	अनंतकाल (अढ़ाई क्षेत्र पुद्गल परावर्तन)
68	बादर त्रसकाय	अन्तर्मुहुर्त	2000 सागर झाझेरी
69 से 74	पांच पृथ्वीकायादि एवं बादर निगोद (बादर)	अन्तर्मुहुर्त	70 क्रोड़ा क्रोड़ी सागरोपय
65 से 81	सूक्ष्म-समुच्चय, पांच काय, सूक्ष्म निगोद	अन्तर्मुहुर्त	असंख्याता काल (पृथ्वीकाल)
82से98	65 से 81 तक के 17 बोल के अपर्याप्ता (समुच्चय बादर से सूक्ष्म निगोद तक)	अन्तर्मुहुर्त	अन्तर्मुहुर्त
99से105	समुच्चय सूक्ष्म, पांच सू.काय, सू.निगोद के पर्याप्ता (7 बोल के)	अन्तर्मुहुर्त	अन्तर्मुहुर्त
106से110	बादर-पृथ्वी, पानी, वायु, प्रत्येक, साधारण वनस्पति इन पांच बोल का पर्याप्ता	अन्तर्मुहुर्त	संख्याता हजार वर्ष
111	बादर तेउकाय का पर्याप्ता	अन्तर्मुहुर्त	संख्याता दिन रात
112	समुच्चय बादर पर्याप्ता	अन्तर्मुहुर्त	प्रत्येक सौ सागर साधिक
113	समुच्चय निगोद पर्याप्ता	अन्तर्मुहुर्त	अन्तर्मुहुर्त
114	बादर निगोद का पर्याप्ता	अन्तर्मुहुर्त	अन्तर्मुहुर्त
115	बादर त्रस का पर्याप्ता	अन्तर्मुहुर्त	प्रत्येक सौ सागर साधिक

5	**योग द्वार-**		
116	सयोगी	-	अ.अनंत, अनादि सांत
117	मन योगी	1 समय	अन्तर्मुहुर्त
118	वचन योगी	1 समय	अन्तर्मुहुर्त
119	काय योगी	अन्तर्मुहुर्त	अनंत काल/वनस्पति काल
120	अयोगी	-	सादि अनंत
6	**वेद द्वार-**		
121	सवेदी	-	अ.अ., अ.सा., सा.सा.
	सवेदी सादि सांत	अन्तर्मुहुर्त	देशऊणा अर्द्ध पुदगल परावर्त्तन
122	स्त्री वेद	1 समय	110 पल्य, प्रत्येक क्रोड़ पूर्व साधिक
123	पुरुष वेद	अन्तर्मुहुर्त	प्रत्येक सौ सागर साधिक
124	नपुंसक वेद	1 समय	अनंत काल (वनस्पति)
125	अवेदी	-	सा.सां, सा.अ.
	अवेदी सादि सांत	1 समय	अन्तर्मुहुर्त
7.	**कषाय द्वार-**		
126	सकषायी	-	अ.आ., अ.सां., सा.सा.
	सकषायी सा.सां	अन्तर्मुहुर्त्त	देश ऊणा अर्द्ध पुदगल परा.
127	क्रोध कषाय	अन्तर्मुहुर्त्त	अन्तर्मुहुर्त्त
128	मान कषाय	अन्तर्मुहुर्त्त	अन्तर्मुहुर्त्त
129	माया कषाय	अन्तर्मुहुर्त्त	अन्तर्मुहुर्त्त
130	लोभ कषाय	1 समय	अन्तर्मुहुर्त्त
131	अकषायी	-	सा.अ., सा.सां,
	अकषायी सा.सां,	1 समय	अन्तर्मुहुर्त
8.	**लेश्या द्वार-**		
132	सलेशी	-	अ.अ., अ.सां.
133	कृष्ण लेश्या	अन्तर्मुहुर्त्त	33 सागर अन्तर्मुहुर्त अधिक
134	नील	अन्तर्मुहुर्त्त	10 सागर, पल्य का असं. भाग अधिक
135	कापोत	अन्तर्मुहुर्त्त	3 सागर, पल्य का असं. भाग अधिक
136	तेजो	अन्तर्मुहुर्त्त	2 सागर, पल्य का असं. भाग साधिक
137	पद्म	अन्तर्मुहुर्त्त	10 सागर और अन्तर्मुहुर्त अधिक
138	शुक्ल लेश्या	अन्तर्मुहुर्त्त	33 सागर अन्तर्मुहुर्त अधिक
139	अलेशी	-	सादि अनंत
9.	**सम्यक्त्व द्वार-**		
140	सम्यक्त्व दृष्टि	-	सा.अ., सा.सां.
	सम्यक्त्व दृष्टि सा.सां.	अन्तर्मुहुर्त	66 सागर साधिक
141	मिथ्या दृष्टि	-	अ.अ. (अभव्य) अ.सा., सा.सां.
	मिथ्या दृष्टि सा.सां.	अन्तर्मुहुर्त	देशऊणा अर्द्ध पुदगल परावर्त्तन
142	मिश्र दृष्टि	अन्तर्मुहुर्त्त	अन्तर्महुर्त
143	क्षायक सम्यक्त्व	-	सादि अनंत
144	क्षयोपशम सम्यक्त्व	अन्तर्मुहुर्त्त	66 सागर साधिक
145	सास्वादन सम्यक्त्व	1 समय	6 आवलिका
146	उपशम सम्यक्त्व	अन्तर्मुहुर्त	अन्तर्मुहुर्त
147	वेदक सम्यक्त्व	1 समय	66 सागर साधिक

10	**ज्ञान द्वार-**		
148	सज्ञानी	-	सा.अ., सा.सां.,
149	मति ज्ञान	-	सा.अ., सा.सां.,
150	श्रुत ज्ञान तीनों का सा.सां.	- अन्तर्मुहुर्त	सा.अ., सा.सां., 66 सागर साधिक
151	अवधि ज्ञान	1 समय	66 सागर साधिक
152	मनःपर्यव ज्ञान	1 समय	देश ऊणा क्रोड़ पूर्व
153	केवल ज्ञान	-	सादि अनंत
154	अज्ञान	-	अअ., असां., सा.सां.,
155	मति अज्ञान	-	अअ., असां., सा.सां.,
156	श्रुत अज्ञान तीनों अज्ञान का सा.सां.	- अन्तर्मुहुर्त	अअ., असां., सा.सां., देशऊणा अर्द्ध पुदगल परावर्त्तन
157	विभंग ज्ञान	1 समय	33 सागर और देशोन क्रोड़ पूर्व साधिक
11	**दर्शन द्वार-**		
158	चक्षु दर्शन	अन्तर्मुहुर्त	1 हजार सागर साधिक
159	अचक्षु दर्शन	-	अअ., अ.सा.
160	अवधि दर्शन	1 समय	132 सागर अधिक
161	केवल दर्शन	-	सादि अनंत
12.	**संयत द्वार-**		
162	संयत	1 समय	देशोन क्रोड़पूर्व
163	असंयत असंयत सा सां.	- अन्तर्मुहुर्त	अआ., अ.सां., सा.सां. देशोन अर्द्ध पुदगल परावर्त्तन
164	संयता संयत	अन्तर्मुहुर्त	देशोन क्रोड़ पूर्व
165	नो संयत नो असंयत नो संयता संयत	-	सादि अनंत
166से169	सामा., छेदो., परि.,यथा. चरित्र (चार चरित्र)	1 समय	देशोन क्रोड़पूर्व वर्ष (9 वर्ष कम) परि में 29 वर्ष कम
170	सूक्ष्म सम्पराय चरित्र	1 समय	अन्तर्मुहुर्त
13	**उपयोग द्वार-**		
171	साकार उपयोग	अन्तर्मुहुर्त	अन्तर्मुहुर्त
172	अनाकार उपयोग	अन्तर्मुहुर्त	अन्तर्मुहुर्त
14.	**आहारद्वार**		
173	आहारक छदमस्थ	2समय न्यून एक क्षुल्लक भव	असंख्याता काल (बादर काल)
174	आहारक केवली	अन्तर्मुहुर्त्त	देशोन क्रोड़ पूर्व वर्ष
175	अणाहारी छद्मस्थ	1 समय	2 समय
176	भवस्थ सयोगी केवली अणाहारक	-	अजघन्य अनुत्कृष्ट 3 समय
177	भवस्थ केवली अणाहारक (अयोगी)	-	पांच ह्रस्व अक्षर उच्चारण काल (अ.मु.)
178	सिद्ध अणाहारक	-	सादि अनंत
15.	**भाषक द्वार-**		
179	भाषक	1 समय	अन्तर्मुहुर्त्त
180	अभाषक सिद्ध अभाषक संसारी	- अन्तर्मुहुर्त	सादि अनंत अनंत काल (वनस्पति)
16.	**परित्त द्वार-**		
181	काय परित्त (प्रत्येक शरीरीजीव)	अन्तर्मुहुर्त	असंख्यातकाल (पृथ्वीकाल)
182	संसार परित्त (सम्यक्त्वी)	अन्तर्मुहुर्त	देशोन अर्द्ध पुदगल परावर्त्तन

183	काय अपरित्त (निगोदके)	अन्तर्मुहुर्त	अनंत काल (वनस्पति)
184	संसार अपरित्त (मिथ्यात्वी)	-	अअ., अ.सा.
185	नो परित नो अपरित (सिद्ध)	-	सादि अनंत
17. 186.	**पर्याप्ता द्वार** पर्याप्ता	 अन्तर्मुहुर्त	 प्रत्येक सौ सागर साधिक
187	अपर्याप्ता	अन्तर्मुहुर्त	अन्तर्मुहुर्त
188	नो पर्याप्ता नो अपर्याप्त	-	सादि अनंत
18. 189	**सूक्ष्म द्वार-** सूक्ष्म	 अन्तर्मुहुर्त	 असंख्याता काल (पृथ्वीकाल)
190	बादर	अन्तर्मुहुर्त	असंख्याता काल / बादरकाल
191	नो सूक्ष्म नो बादर	-	सादि अनंत
19. 192	**संज्ञी द्वार** संज्ञी	 अन्तर्मुहुर्त	 प्रत्येक सौ सागर साधिक
193	असंज्ञी	अन्तर्मुहुर्त	वनस्पति काल
194	नो संज्ञी नो असंज्ञी	-	सादि अनंत
20. 195	**भव सिद्धिक द्वार** भव सिद्धिया	 -	 अनादि सांत
196	अभव सिद्धिया	-	अनादि अनंत
197	नो भव सिद्धिक नो अभव सिद्धियक	-	सादि अनंत
21. 198-203	**अस्तिकाय द्वार-** धर्मास्तिकाय आदि 6 द्रव्य	 -	 सर्वकाल
22. 204	**चरम द्वार-** चरम (भव्य जीव)	 -	 अनादि सांत
205	अचरम (अभवी, सिद्ध)	-	अनादि अनंत, (अभवी) सादि अनंत (सिद्ध)

अन्तर

गति पद	**जघन्य अन्तर**	**उत्कृष्ट अन्तर**
सिद्ध भगवान	अन्तर नहीं	अन्तर नहीं
नरक, तिर्यंच स्त्री, मनुष्य, मनुष्य स्त्री, देव, देवी 6 समु. इनके पर्याप्त एवं अप. तिर्यंच स्त्री मनुष्य, मनुष्य स्त्री 15 बोल	अन्तर्मुहुर्त	अनन्त काल
अपर्याप्त नारकी, देवी, देवता	अन्तर्मुहुर्त साधिक 10 हजार वर्ष	अनन्त काल (वनस्पति)
शेष समु. तिर्यंच, पर्याप्त तिर्यंच, अपर्याप्त तिर्यंच	अन्तर्मुहुर्त	प्रत्येक सौ सागरोपम
इन्द्रिय पद समुच्चय से इन्द्रिय एवं अनिन्द्रिय	 -	 -
एकेन्द्रिय	अन्तर्मुहुर्त	दो हजार सागरोपम साधिक
शेष चार इन्द्रिय	अन्तर्मुहुर्त	अनन्तकाल (वनस्पति)
काया पद- सकायिक, अकायिक	 -	 -
पृथ्वी पानी तेउवायु त्रसकाय	अन्तर्मुहुर्त	अनंत काल (वनस्पति)
वनस्पतिकाय	अन्तर्मुहुर्त	असंख्याल काल (पृथ्वीकाल)
समुच्चय सूक्ष्म	अन्तर्मुहुर्त	असंख्याता काल (बादर काल)
सृक्ष्म वनस्पति सूक्ष्म निगोद	अन्तर्मुहुर्त	असंख्यात काल (पृथ्वीकाल)

सूक्ष्म पृथ्वी, पानी, तेउ, वायु	अन्तर्मुहुर्त	अनंत काल (वनस्पति काल)
समुच्चय बादर, बादर वनस्पति, बा.निगोद, समु. निगोद	अन्तर्मुहुर्त	पृथ्वीकाल
बादर पृथ्वी,पानी,तेउ,वायु,प्रत्येक वन.,बादर त्रस (6 बोल)	अन्तर्मुहुर्त	अनंत काल (वन. काल)
योग पद- सयोगी, अयोगी	-	-
मनयोगी, वचनयोगी	अन्तर्मुहुर्त	अनन्त काल (वनस्पति)
काय योगी	एक समय	अन्तर्मुहुर्त
वेद पद- सवेदी (अअ., अ.सां.) अवेदी (सा सां)	-	-
सवेदी (सा सां.)	1 समय	अन्तर्मुहुर्त
स्त्रीवेद	अन्तर्मुहुर्त	अनन्तकाल (वनस्पति)
पुरुष वेद	1 समय	अनन्तकाल (वनस्पति)
नपुंसक वेद	अन्तर्मुहुर्त	प्रत्येक सौ सागरोपम साधिक
अवेदी (सा अ.)	अन्तर्मुहुर्त	देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्त्तन
कषाय पद- सकषायी (अअ., असा.) अकषायी (सा.अ.)	-	-
सकषायी (सासा.) क्रोधमान माया	1 समय	अन्तर्मुहुर्त
सकषायी (सासा.) लोभ (जघन्य उत्कृष्ट)	अन्तर्मुहुर्त	अन्तमुहुर्त्त
अकषायी (सा.सा.)	अन्तर्मुहुर्त	देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्त्तन
लेश्या पद- सलेशी, अलेशी	-	-
कृष्ण, नील, कापोत	अन्तर्मुहुर्त	33 सागर अन्तर्मुहुर्त अधिक
तेजो, पद्म, शुक्ल	अन्तर्मुहुर्त	अनंतकाल (वनस्पति)
सम्यक्त्व पद सम्य. दृ. (सा.अ.), मि.दृ.(अ.अ.,अ.सा.) वेदक, क्षयिक स.	-	-
सम्यक दृष्टि(सासां.),उपशम, सास्वा.,क्षयोपशम, मिश्र दृष्टि	अन्तर्मुहुर्त	देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्त्तन
मिथ्या दृष्टि (सासा.)	अन्तर्मुहुर्त	66 सागरोपम साधिक
ज्ञान पद- समुच्चय ज्ञानी (सा.अ.) केवल ज्ञान	-	-
समु. ज्ञानी (सासा.),मति, श्रुत, अवधि, मनःप. ये 5 बोल	अन्तर्मुहुर्त	देशोन अर्द्ध पुदगल परावर्त्तन
समु. अज्ञानी, मति अज्ञ. श्रुत अज्ञ. (तीनों के अअ., अ.सा.)	-	-
तीनों अज्ञान के सादि सांत	अन्तर्मुहुर्त	66 सागरोपम साधिक
विभंग ज्ञान	अन्तर्मुहुर्त	अनंतकाल (वनस्पति)
दर्शन पद- चक्षु दर्शन, अवधि दर्शन	अन्तर्मुहुर्त	अनंतकाल (वनस्पति)
अचक्षु दर्शन, केवल दर्शन	-	-
संयत पद- संयत, संयता संयत, पांच चारित्र ये 7 बोल	अन्तर्मुहुर्त	देशोन अर्द्ध पुदगल परावर्त्तन
असंयत (सासां.)	1 समय	देशोन करोड़ पूर्व
असंयति (अ.अ., अ.सां.) नो संयत नो संयता संयत	-	-
उपयोग पद दोनों उपयोग जघन्य उत्कृष्ट	अन्तर्मुहुर्त	अन्तर्मुहुर्त

आहारक पद- छदमस्थ आहारक	1 समय	2 समय
छदमस्थ अनाहारक	2समय (न्यून क्षुल्लक भव.)	असंख्यात काल (बादरकाल)
सयोगी केवली आहारक	तीन समय	तीन समय
सयोगी केवली अनाहारक	अन्तर्मुहुर्त	अन्तर्मुहुर्त
अयोगी केवली, सिद्ध केवली	-	-
भाषक पद- भाषक	अन्तर्मुहुर्त	अनंतकाल (वनस्पति)
संसारी अभाषक	1 समय	अन्तर्मुहुर्त
सिद्ध अभाषक	-	-
परित्त पद- संसार परित्त, नो परित्त नो अपरित्त, संसार अपरित्त	-	-
काय परित्त	अन्तर्मुहुर्त	अनंतकाल (ढ़ाई पुद्गल परा.)
काय अपरित्त	अन्तर्मुहुर्त	असंख्यात काल (पृथ्वीकाल)
पर्याप्त पद पर्याप्त	अन्तर्मुहुर्त	अन्तर्मुहुर्त
अपर्याप्त	अन्तर्मुहुर्त	प्रत्येक सौ सागर साधिक
नो पर्याप्त नो अपर्याप्त	-	-
सूक्ष्म पद- सूक्ष्म	अन्तर्मुहुर्त	असंख्यात काल (बादरकाल)
बादर	अन्तर्मुहुर्त	असंख्यात काल (पृथ्वीकाल)
नो सूक्ष्म नो बादर	-	-
संज्ञी पद संज्ञी	अन्तर्मुहुर्त	अनंतकाल (वनस्पति)
असंज्ञी	अन्तर्मुहुर्त	प्रत्येक सौ सागर साधिक
नो संज्ञी नो असंज्ञी	-	-
भव्य पद, अस्तिकाय पद, चरम पद	-	-

इस प्रकार ये बावीस द्वार के 195 भेदों की कायस्थिति कही गई है।

1. समुच्चय जीव की कायस्थिति अनादि अनंत अर्थात् सर्व अद्धाकाल की है।

2. छ अस्तिकाय (षट द्रव्यों की कायस्थिति भी अनादि अनंत काल अर्थात् सर्व अद्धाकाल की है।

शेष सभी 20 द्वारों के भेदों की कायस्थिति का वर्णन जीवाभिगम सूत्र सारांश में किया गया है अतः वहीं पर देखना चाहिये।

कायस्थिति के थोकड़े में 5 समकित 5 चारित्र की कायस्थिति कही जाती है वह इस प्रकार है-

नाम	जघन्य	उत्कृष्ट
क्षायिक	×	सादि अनंत
क्षयोपशम	अंतर्मुहुर्त्त	66सागर साधिक
सास्वादन	1 समय	6आवलिका
उपशम	1 समय	अंतर्मुहुर्त्त
क्षयोपशम वेदक	1 समय	अंतर्मुहुर्त्त
क्षायिक वेदक	1 समय	1 समय
सामायिक चारित्र	1 समय	देशोन क्रोडपूर्व
छेदोपस्थापनीय चारित्र	अंतर्मुहुर्त्त	देशोन क्रोडपूर्व
परिहार विशुद्ध चारित्र	अन्तमुहुर्त (18मास)	देशोन क्रोडपूर्व
सूक्ष्म संपराय चारित्र	1 समय	अंतर्मुहुर्त्त
यथाख्यात चारित्र	1 समय	देशोन क्रोडपूर्व

उन्नीसवा ''सम्यक्त्व'' पद

जिनेश्वर प्रणीत जीवादि सम्पूर्ण तत्त्वों के विषय में जिसकी दृष्टि, समझ, बुद्धि अविपरीत हो सम्यग् हो वह सम्यग् दृष्टि है।

जिन प्रज्ञप्त तत्त्वों के विषय में जरा सी भी विपरीत दृष्टि, समझ, श्रद्धा हो वह मिथ्या-दृष्टि है।

जिन प्रज्ञप्त तत्त्वों के विषय में विपरीत एवं अविपरीतयों अस्थिर दृष्टि, बुद्धि समझ, श्रद्धा हो अथवा विपरीत-अविपरीत दोनों तरह की बुद्धि वालों का अनुसरण करने वाला एवं दोनों को सत्य समझने वाला हो वह मिश्र दृष्टि वाला होता है।

इस प्रकार ये तीन दृष्टियां है- 1. सम्यक् दृष्टि 2. मिथ्या दृष्टि 3. मिश्र दृष्टि।

24 दंडक में दृष्टि विचार-

नारकी देवता में नवग्रैवेयक तक तीन दृष्टि, लोकांतिक में सम्यग्दृष्टि अणुत्तर विमान में सम्यग् दृष्टि। पंद्रह परमाधामी एवं तीन किल्विषी में एक मिथ्यादृष्टि।

पांच स्थावर मे मिथ्या दृष्टि, तीन विकलेन्द्रिय असन्नि तिर्य्च में दो दृष्टि, सन्नी तिर्य्च में तीन दृष्टि, खेचर युगलिया तिर्य्च में एक मिथ्या दृष्टि और स्थलचर युगलिया तिर्य्च में दो दृष्टि।

15 कर्म भूमि में तीन दृष्टि, 30 अकर्म भूमि में दो दृष्टि, अंतर्द्वीपों में एक मिथ्यादृष्टि, सम्मुर्च्छिम मनुष्य में एक मिथ्या दृष्टि।

सिद्धों में एक (क्षायिक) सम्यग् दृष्टि।

नोट– एक समय में एक जीव में एक ही दृष्टि होती है।

बीसवां ''अंतक्रिया'' पद

मोक्षाधिकार–

चौवीस दंडकों में से एक मनुष्य में ही मोक्ष जाने की योग्यता है अन्य कोई भी भव से जीव मुक्त नहीं हो सकता है।

भविष्य काल में मुक्त होने की योग्यता सभी दंडक के जीवों की होती है। तेउकाय, वायुकाय, तीन विकलेन्द्रिय, पांचवी, छट्ठी सातवीं नरक के जीव सीधे मनुष्य बनकर मोक्ष नहीं जा सकते हैं। परंपरा से अर्थात् एक दो भव कहीं करके मनुष्य बनकर मोक्ष जा सकते हैं इन्हें परम्पर अन्तक्रिया कहते हैं।

1 से 4 नरक, पृथ्वी पानी वनस्पति, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य, भवनपति आदि 13 दंडक के जीव अनंतर मनुष्य भव से मुक्त हो सकते हैं।

अनंतरागतों की मुक्त संख्या- जघन्य संख्या 1-2-3 है उत्कृष्ट इस प्रकार है-

एक समय में दस	-	तीन नारकी, भवनपति-व्यंतर-ज्योतिषी देव, तिर्यंच (पंचेन्द्रिय), तिर्यंचणी, मनुष्य
एक समय में वीस	-	मनुष्यणी, वैमानिक देवी, ज्योतिषी देवी
एक समय में 108	-	वैमानिक देव
एक समय में पांच	-	भवनपति देवी व्यंतर देवी
एक समय में छः	-	वनस्पति
एक समय में चार	-	चौथी नारकी, पृथ्वी, पानी

उत्पत्ति एवं उपलब्धि–

1. कई नैरयिक जीव तिर्यंच पंचेन्द्रिय में उत्पन्न होते है और वहां किसी को धर्म श्रवण, बोधि, श्रद्धा, मति श्रुत ज्ञान, व्रत प्रत्याख्यान, अवधिज्ञान की प्राप्ति होती है। संयम और मनः पर्यव ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है।

कई नैरयिक जीव मनुष्य में उत्पन्न होते हैं वहां उनमें से किसी को उक्त धर्म श्रवण आदि एवं संयम, मनः पर्यवज्ञान, केवल ज्ञान की प्राप्ति होती है एवं अंत में मुक्ति की प्राप्ति होती है।

2. नरक के समान पृथ्वी पानी वनस्पति एवं सभी देवों का मनुष्य में मुक्ति प्राप्ति तक वर्णन है।

3. तेउ वायु तिर्यंच पंचेन्द्रिय में उत्पन्न होते हैं धर्म श्रवण की प्राप्ति उन्हें होती है किन्तु बोधि आदि की प्राप्ति नहीं होती।

4. तीन विकलेन्द्रिय मनुष्य में उत्पन्न होते हैं धर्म श्रवण आदि मनःपर्यव ज्ञान तक की उपलब्धि उन्हें हो सकती है। केवलज्ञान नहीं होता है।

5. तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव नारकी देवता में उत्पन्न होता है वहां भी धर्म श्रवण, बोधि, श्रद्धा, मति आदि 3 ज्ञान प्राप्त करता है। व्रत प्रत्याख्यान नहीं करता है।

तिर्य्च पंचन्द्रिय में एवं मनुष्य में उत्पन्न होता है वहां नारकी जीव के समान तिर्यंच में अविधज्ञान तक एवं मनुष्य में मोक्ष तक उपलब्धि करता है।

6. मनुष्य का कथन भी तिर्य्च के समान कहना यावत् कई जीव मुक्ति प्राप्त करते हैं।

तीर्थंकरत्व आदि उपलब्धि– 1. पहली दूसरी तीसरी नरक एवं वैमानिक देव, मनुष्य भव में उत्पन्न होकर तीर्थकर बन सकते हैं। इसके अतिरिक्त कोई भी जीव तीर्थकर नहीं बनते किन्तु अन्य धर्म श्रवणादि उपलब्धि ऊपर कहे अनुसार प्राप्त करते हैं।

2. चक्रवर्ती– पहली नरक एवं भवनपति व्यंतर ज्योतिषी वैमानिक देव मनुष्य भव में आकर चक्रवर्ती बन सकते है।

3. बलदेव– पहली दूसरी नरक और सभी देवों से आकार मनुष्य बनने वाले जीव बलदेव बन सकते हैं।

4. वासुदेव– पहली दूसरी नरक के जीव एवं अणुत्तर विमान छोड़कर शेष वैमानिक देव मनुष्य भव में आकर वासुदेव बन सकते हैं अर्थात् भवनपति व्यंतर ज्योतिषी देव वासुदेव नहीं बनते।

5. मांडलिक राजा– सातवीं नरक और तेउकाय वायुकाय को छोड़कर शेष समस्त स्थानों से मनुष्य भव में आने वाला जीव मांडलिक राजा बन सकता है।

6. सेनापति, गाथापति, बढ़ई, पुरोहित एवं स्त्री रत्न ये पांच चक्रवर्ती के पंचेन्द्रिय रत्न- तेउ-वायु, सातवीं नरक, पांच अणुत्तर देव को छोड़कर शेष समस्त स्थानों से आकर मनुष्य बनने वाले जीव सेनापति आदि पांचों बन सकते हैं।

7. हस्तिरत्न एवं अश्वरत्न– नौवें देवलोक के ऊपर के देवों को छोड़कर शेष समस्त स्थानों से आकर तिर्य्च बनने वले हस्तिरत्न एवं अश्वरत्न बन सकते हैं।

8. सात एकेन्द्रिय रत्न– सात नरक एवं तीसरे देवलोक से ऊपर के देवों को छोड़कर समस्त स्थानों से आकर पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने वाले जीव सातों एकेन्द्रिय रत्न बन सकते हैं। सात रत्न ये हैं-

1. चक्र रत्न 2. छत्र रत्न 3. चर्म रत्न 4. दंड रत्न 5. असिरल 6. मणिरत्न 7. कांगिणी रत्न।

ये सात पंचेन्द्रिय और सात एकेन्द्रिय रत्न चक्रवर्ती के अधीनस्थ होते हैं।

देवोत्पत्ति– संयम के आराधक विराधक, संयामासंयम के आराधक विराधक, असंयत, अकाम निर्जरा वाले, तापस, कांदर्पिक, परिव्राजक एवं समकित का वमन कर देने वाले भी देव गति में जा सकते हैं। इसका फलितार्थ यह है कि आंतरिक योग्यता शुद्धि में तो देवत्व एवं मुक्ति की प्राप्ति होती ही है किन्तु केवल बाह्य आचरणों से भी (यदि असंक्लिष्ट परिणाम न हो तो) देवत्व की प्राप्ति हो सकती है।

देवोत्पत्ति के चौदह बोल-

क्र.सं.	नाम	जघन्य गति	उत्कृष्ट गति
1.	असंयत भव्य द्रव्य देव	भवनपति	ग्रैवेयक देव
2.	संयम आराधक	पहला देवलोक	अणुत्तर देव
3.	संयम विराधक	भवनपति	पहला देवलोक
4.	देशविरत आराधक	पहला देवलोक	बारहवां देवलोक
5.	देशविरत विराधक	भवनपति	ज्योतिषि
6.	अकाम निर्जरा वाले एवं असन्नी तिर्यंञ्च	भवनपति	वाणव्यंतर
7.	तापस	भवनपति	ज्योतिषि
8.	कान्दर्पिक	भवनपति	पहला देवलोक
9.	परिव्राजक	भवनपति	पांचवां देवलोक
10.	किल्विषी	पहला देवलोक	छट्ठा देवलोक
11.	सन्नी तिर्यंञ्च	भवनपति	आठवां देवलोक
12.	गौशाला पंथी (आजीविक)	भवनपति	बारहवां देवलोक
13.	आभियोगिक	भवनपति	बारहवां देवलोक
14.	स्वलिंगी समकित रहित	भवनपति	ग्रैवेयक देव

इन साधकों का विस्तृत परिचय औपपातिक सूत्र में है, जिसकी जानकारी के लिये वहां देखें। तथा भगवती सूत्र शतक 1 उद्देशक 2 में संक्षिप्त कथन है।

ऊपरोक्त 14 बोल के जीवों में से पहला दूसरा चौथा नियमा देवगति में ही जाते हैं। शेष बोल देवगति में ही जावे ऐसा नियम नहीं है अर्थात् वे चारों गति में जा सकते हैं। देवगति में जावे तो उक्त देवलोकों में जा सकते हैं ऐसा समझना चाहिये।

भव्य द्रव्य देव के बोल में देव का आयुष्य बंध किये हुए सभी प्रकार के जीवों का समावेश हो जाता है किन्तु उक्त प्रथम बोल में ''असंयत'' विशेषण लगाया गया है अतः देशव्रती और सर्वव्रती को छोड़कर के अन्य देवात्पत्ति वालों का समावेश इसमें समझना चाहिये अर्थात् दूसरे चौथे बोल को छोड़कर शेष 11 बोलों का समावेश असंयत भव्य द्रव्य देव में होता है। इससे यह निष्कर्ष आता है कि पहले गुणस्थान से चौथे गुणस्थान तक के जीव जो भी देवायु बंध किये हुए हैं वे असंयत भव्य द्रव्य देव है।

असन्नि आयुष्य-असन्नि तिर्य्च पंचेन्द्रिय चारों गति का आयुष्य बांधते हैं।

नरक में- प्रथम नरक का , देव में-भवनपति व्यंतर का एवं तिर्य्च में-युगलिया तिर्य्च तक का एवं मनुष्य में अंतर्द्वीपज युगलिक मनुष्य का आयुष्य बंध करते हैं।

चारों गति में पल्योपम के असंख्यातवें भागका उत्कृष्ट आयुष्य बंध करते है। पल्योपम का असंख्यातवां भाग सर्वत्र समान नहीं है। उसमें अंतर है उसकी अल्पाबहुत्व इस प्रकार है-

सबसे थोड़ा देव असन्नि आयुष्य, उससे मनुष्य असन्नि आयुष्य असंख्यगुणा, उससे तिर्य्च यौनिक असन्नि आयुष्य असंख्यगुणा, उससे नैरयिक असन्नि आयुष्य असंख्यगुणा।

तात्पर्य यह है कि असन्नि तिर्य्च देवता का आयुष्य अत्यल्प उपार्जन करता है और नरक का आयु सर्वाधिक उपार्जन करता है।

इक्कीसवां ''अवगाहना-संस्थान'' पद

औदारिक शरीर-मनुष्य एवं तिर्यंच में औदारिक शरीर होता है अतः तिर्यंच की अपेक्षा 46भेद एवं मनुष्य के तीन भेद यों औदारिक शरीर के कुल 49 प्रकार कहे गये हैं।

इन 49 प्रकार के औदारिक शरीर की अवगाहना और उनके संस्थान (आकार) भिन्न-भिन्न है इसका वर्णन जीवाभिगम सूत्र की प्रथम प्रतिपत्ति में कर दिया गया है।

वैक्रिय शरीर-एकेन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय यों वैक्रिय शरीर के मूलभेद दो हैं। वायुकाय में केवल बादर के पर्याप्त का एक ही प्रकार है। देवता नारकी के जितने प्रकार है उतने ही वैक्रिय शरीर के भेद है मुनष्य का एक पर्याप्त और सन्नी तिर्य्च का एक पर्याप्त यों कुल 105 प्रकार होते हैं। यथा-भवनपति व्यंतर ज्योतिषी-46वैमानिक 52 तिर्य्च 5 और मनुष्य का एक भेद।

इन 105 के विभिन्न संस्थान एवं अवगाहनाएं यहां सूत्र में वर्णित है जिन्हें जीवाभिगम सूत्र सारांश के वर्णन एवं चार्ट में देखें।

आहारक शरीर-इसका केवल एक ही प्रकार है- सन्नी मनुष्य पर्याप्त अर्थात् कर्म भूमि ऋद्धि प्राप्त प्रमत्त संयत।

तेजस-कार्मण शरीर- चार गति के जीवों के जितने भेद होते हैं उतने ही तैजस कार्मण शरीर के प्रकार होते हैं। अतः इनके 563 भेद होते हैं। प्रस्तुत प्रकरण के अनुसार इनके 167-167 भेद होते हैं। मनुष्य के 9 भेद मुख्य है। समस्त संसारी जीवों के ये दोनों शरीर होते हैं। अतः इन दोनों के संस्थान एवं अवगाहना एक समान होती है। ये औदारिक वैक्रिय आहारक तीनों शरीरों के साथ में अवश्य होते हैं मारणांतिक समुद्घात में एवं भवातर में जाते समय मार्ग में उन तीनों शरीर के अभाव में स्वतंत्र भी रहते हैं। अतः इनकी अवगाहना दोनों अपेक्षा से है-1. तीनों शरीरों की अवगाहना जितनी 2. तीनों शरीर में स्वतंत्र मारणांतिक समुद्घात में।

तीनां शरीरों की अवगाहना उनके वर्णन में कहे अनुसार है। दोनों की स्वतंत्र अवगाहना निम्न है। आयामविष्कंभ सभी का शरीर प्रमाण है।

तैजस कार्मण शरीर	जघन्य उत्कृष्ट अवगाहना
समुच्चय जीव	जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट सभी दिशाओं में लोकांत से लोकांत तक।
एकेन्द्रिय	जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट सभी दिशाओं में लोकांत से लोकांत तक।
विकेलेन्द्रिय[1]	जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट तिरछालोक से लोकांत तक।
नारकी[2]	जघन्य 1000 योजन साधिक, उत्कृष्ट नीचे सातवीं नरक तक, उपर पंडक वन की बावड़ियों तक, तिरछा स्वयंभूरमण समुद्र वेदिका तक।
तिर्यंञ्च पंचेन्द्रिय	जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट तिरछा लोक से लोकांत तक।
मनुष्य	जधन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट मनुष्य क्षेत्र से लोकांत तक।
भवनपति से दूसरा देवलोक[3]	जघन्य अंगुल के असंख्यात्वें भाग, उत्कृष्ट नीचे तीसरी नरक के चरमांत तक, उपर सिद्धशिला तक, तिरछा स्वभूंरमण समुद्र वेदिका तक।
3 से 8 देवलोक[4]	जघन्य अंगुल के असंख्यात्वें भाग, उत्कृष्ट नीचे महा पाताल कलश के दो तिहाई भाग तक, ऊपर 12वां देवलोक तक, तिरछा स्वयंभूरमण समुद्र वेदिका तक।
9-12 देवलोक[5]	जघन्य अंगुल के असंख्यात्वें भाग, उत्कृष्ट तिरछा मनुष्य क्षेत्र, नीचे वप्रा सलिलावती विजय, ऊपर 12वां देवलोक तक।
ग्रैवेयक अणुत्तर देव[6]	जघन्य विद्याधर की श्रेणी तक, उत्कृष्ट नीचे सलिलावती वप्रा विजय तक ऊपर स्व विमान तक, तिरछा मनुष्य क्षेत्र तक।

विशेष– 1. विकलेन्द्रिय तिरछा लोक में रहे 1000 योजन ऊंडे समुद्रों में एवं मेरू पर्वत आदि की बावड़ियों में होते है; तिरछे स्वयूंभरमण समुद्र की वेदिका तक होते हैं। इन तिरछे लोक के स्थानों में लोकांत तक छः दिशाओं में बेइन्द्रियादि के तेजस कार्मण शरीर की अवगाहना मारणांतिक समुद्घात के समय होती है।

2. पाताल कलशों में भित्ति 1000 यो. की है उसके निकट रहे नैरयिक उसके भीतर रहे जल में पंचन्द्रिय रूप उत्पन्न होवे तब जघन्य तैजस कार्मण की अवगाहना होती है।

3. भवनपति आदि की जघन्य एवं उत्कृष्ट अवगाहना पृथ्वी पानी में उत्पन्न होने को अपेक्षा बनती है। देवताओं के उत्कृष्ट अवगाहना नीचे ऊपर तिरछे स्वस्थान से समझना।

4. अपने मित्र देवों के साथ ऊपर बारहवें देवलोक तक जा सकता है वहां से मांरणांतिक समुद्घात करे उसे अपेक्षा से ऊपर 12 वां देवलोक कहा गया हैं।

5. ये देव मनुष्य में ही उत्पन्न होते हैं। वप्रा, सलिलावती विजय नीचा लोक में है उसमें मनुष्य रूप में उत्पन्न होते है वहां तक मारणांतिक समुद्घात करने पर यह नीचे की अवगाहना होती है। इन देवों की जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना मनुष्यणी की योनि के अति निकट होने पर ही हो सकती है वह किसी कारणवश वहां प्रविष्ट हुए देव के आयुष्य समाप्त होने की अपेक्षा समझना चाहिये। ध्यान रहे कि इन देवों के काय प्रविचारणा नहीं है अतः क्षेत्र शुद्धि करने आदि के कारण ही समझने चाहिये। ये देव केवल मनुष्य में ही उत्पन्न होते है तिर्य्च या एकेन्द्रिय में नहीं होते ।

6. ग्रैवेयक एवं अणुत्तर देव उत्तर वैक्रिय नहीं करते अतः इनकी जघन्य अवगाहना भी स्वस्थान से ही है, मनुष्य में ही उत्पन्न होते है, स्वस्थान से निकटतम मनुष्य क्षेत्र विद्याधरों की श्रेणी होती है अतः उसे जघन्य में कहा हैं।

द्वार	औदारिक शरीर	वैक्रिय शरीर	आहारक शरीर	तैजस कार्मण
1 नाम द्वार	औदारिक	वैक्रिय	आहारक	तैजस, कार्मण
2 अर्थ द्वार	उदार पुद्गल	वैक्रिय पुद्गल	आहारक पुद्गल	तैजस नाम, कर्म पुद्गल
3 स्वामी	मनुष्य, तिर्यंच	नारक देव	मनुष्य 14 पूर्वी	समस्त संसारी जीव
4 संस्थान द्वार	6 संस्थान	समचौरस, हुंडक	समचौरस	6 संस्थान
5 अवगाहना	उ. हजार योजन	उ. लाख योजन	मुंडहाथ, एक हाथ	लोक प्रमाण
6 शरीर संयोग	वैक्रिय, आहारक की भजना	औदारिक भजना आहारक नहीं ते.का.नि.	औ.तेका. नियमा वैक्रिय नास्ति	कार्मण तेजस नियमा (एक दूजे में) अन्य तीन की भजना
7 द्रव्यार्थ	3 असंख्यात गुणा	2 असंख्यात गुणा	1 अल्प	4 अनंत गुणा (तुल्य)
8 प्रदेशार्थ	3 असंख्यात गुणा	2 असंख्यात गुणा	1 अल्प	4 तेजस अनंत 5 कार्मण अनंत गुणा
9 द्रव्यार्थ प्रदेशार्थ	3 असंख्य/6 असंख्य	2 असंख्य/5असंख्य	1 अल्प/4 अनंत गुणा	7 अनंत दोनों/तै.8 अनंत/9 का. अनंत
10 सूक्ष्म बादर	5 बादर/1 सबसे बादर	4 बादर/2 बादर सूक्ष्म	3 बा./3 बासू.	1 अल्प कार्मण/2 तै बा./4 ते./5 का
11 अवगाहना ज./उ.	1 अल्प/6 संख्यात गुणी	3 असं./7 संख्यात	4 असंख्य/5 विशेषा.	2 विशेषा./8 असंख्य (दोनों)
12 प्रयोजन	मोक्ष	अनेक रूप	संशय मिटाना	उष्मा/कर्म संग्रह
13 विषय (शक्ति)	15वां रूचक द्वीप तक	असंख्यात द्वीप समुद्र	अढ़ाई द्वीप	संपूर्ण लोक
14 स्थिति (उत्कृष्ट)	उत्कृष्ट तीन पल्य	33 सागर	अन्तर्मुहुर्त	अनादि अनंत (अभवी) अना. सां. (भवी)
15 अन्तर	1 समय/ 3सागर उत्कृष्ट	अंमु./अनंत.उत्कृष्ट	अं.मु./देशोन अर्द्ध पुद्गल	नहीं होता

शरीर में पुद्गलों का चयन आदि-

औदारिक आदि पांचों शरीर में पुद्गलों की आवश्यकता होती हैं। उनके निर्माण में पुद्गलों का ''चय'' होता हैं। वृद्धिंगत होने में पुद्गलों का उपचय होता है और क्षीण होने में पुद्गलों का ह्रास-अपचय होता हैं।

यह चय उपचय और अपचय रूप पुद्गलों का आगमन और निगमन छहों दिशाओं से होता हैं। लोकांत में रहे हुए जीवों के एक तरफ, दो तरफ या तीन तरफ लोकांत हो सकता है अलोक में पुद्गल नहीं है अतः वहां से पुद्गलों का आगमन निगमन नहीं होता हैं। इस अपेक्षा औदारिक, तैजस, और कार्मण शरीर में अलोक के व्याघात (रूकावट) के कारण कभी तीन, चार या पांच दिशा से पुद्गलों का चय आदि होता हैं लोंकांत के अतिरिक्त कहीं भी रहे हुए जीव के औदारिक तैजस कार्मण शरीर में नियमा छहों दिशाओं के पुद्गलों का आगमन-निगमन होता हैं।

शरीर में शरीर की नियमा भजना–

शरीर	नियमा	भजना	नास्ति
औदारिक में	तैजस, कर्मण	वैक्रिय आहारक	×
वैक्रिय में	तैजस कर्मण	औदारिक	आहारक
आहारक में	औदारिक तैजस कार्मण	×	वैक्रिय
तैजस में	कार्मण	औदारिक, वैक्रिय आहारक	×
कार्मण में	तैजस	औदारिक, वैक्रिय आहारक	×

अल्पाबहुत्व–

तैजस शरीर की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना-

जीव	जघन्य अवगाहना	उत्कृष्ट अवगाहना (तैजस शरीर)
सर्वजीव	अंगुल के असंख्यातवें भाग	लोकपर्यंत (लोकांत तक)
एकेन्द्रिय	,,	,,
विकलेन्द्रिय	,,	तिर्च्छालोक (स्वस्थान), अधोलोक में, अधोग्राम की बावड़ियों, ऊर्ध्वलोक में पंडक वन तक, अधोग्राम से लोकाग्र, पंडक वन से लोकाग्र तक
तिर्यंच पंचेन्द्रिय (सम्मुर्च्छम की अपेक्षा से)		विकलेन्द्रिय के समान,
गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय	,,	8वें देवलोक तक
मनुष्य	अंगुल के असंख्यातवें भाग	मनुष्य क्षेत्र से लोकान्त तक
नारक	एक हजार योजन साधिक	नीचे 7वीं नरक (स्वस्थान), तिर्च्छालोक में स्वयंभू रमण समुद्र तक, ऊर्ध्व लोक में पंडक वन
भवनपति, व्यंतर,	अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण	तीसरी (शीला) नरक तक,
ज्योतिषी, पहला दूसरा	,,	तिर्च्छा स्वयंभू रमण समुद्र के वेदिकांत तक,
देवलोक		ऊर्ध्वलोक में सिद्धशिला पृथ्वी के ऊपरी तल तक
सनत्कुमार देवलोक	अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण	नीचे पाताल कलश के मध्य तीसरे भाग तक (जल तक)
सहस्त्रार देवलोक	--//--	--//--
आणत से अच्युत देव	--//--	नीचे अघोग्राम, तिर्च्छा मनुष्य क्षेत्र, ऊर्ध्व-अच्युत देवलोक
ग्रैवेयक, अणुत्तर विमान	स्वस्थान प्रमाण (विद्याधर श्रेणी पर्यंत)	नीचे-अधोग्राम तक, ऊर्ध्व स्वस्थान पर्यंत, तिर्यग, मनुष्य क्षेत्र पर्यंत

द्रव्य की अपेक्षा- 1. सबसे अल्प आहारक 2. वैक्रिय असंख्य गुणा। 3. औदारिक असंख्यगुणा तैजस कार्मण (दोनों परस्पर तुल्य) अंनत गुणा।

प्रदेश की अपेक्षा- 1 से 3 उपरोक्त, 4 तैजस प्रदेश अनंत गुणा 5. कार्मण प्रदेश अनंतगुणा।

द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा- 1से 3 उपरोक्त, 4 आहारक प्रदेश अनंत गुणा 5. वैक्रिय प्रदेश असंख्यगुणा, 6औदारिक प्रदेश असंख्य गुणा 7. तैजस कार्मण द्रव्य अनंत गुणा 8. तैजस प्रदेश अनंत गुणा, 9. कार्मण प्रदेश अनंतगुणा।

जघन्य अवगाहना की अपेक्षा- 1. सबसे अल्प औदारिक की 2. तैजस कार्मण की विशेषाधिक 3. वैक्रिय की असंख्य गुणी 4. आहारक की असंख्यगुणी (देशोन एक हाथ)।

उत्कृष्ट अवगाहना की अपेक्षा- 1. सबसे अल्प आहारक की (1 हाथ) 2. औदारिक की संख्यातगुणी (साधिक 1000 योजन) 3. वैक्रिय की संख्यातगुणी 4. तैजस कार्मण की असंख्यगुणी।

सम्मिलित अपेक्षा- आहारक की जघन्य से आहारक की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, शेष क्रम पूर्ववत।

बावीसवां ''क्रिया'' पद

क्रिया स्वरूप- कषाय एवं योग जन्य पाप प्रवृत्तियों से क्रिया लगती है और क्रियाओं से कर्मों का बंध होता है कर्म ही संसार है एंव संसार है तो मुक्ति नहीं हैं। आत्मासुख आत्मा आनंद भी नहीं हैं। अतः आत्म विकास के लिये अवरोधक इन क्रियाओं का ज्ञान एवं त्याग करना आवश्यक है, तभी आत्मा मुक्त एवं स्वतंत्र हो सकती हैं।

सर्व त्यागी श्रमण को भी जब तक प्रमाद और योग है तब तक क्रिया लगती है और जब तक क्रिया है वहां तक कर्म बंध भी होता रहता हैं।

आगमों में क्रियाऐं- क्रियाओं के प्रकार विविध रूप से आगमों में उपलब्ध हैं। अधिकतम 25 क्रियाएं ठाणांग सूत्र के पांचवें ठाणे में वर्णित हैं। सूर्यगडांग सूत्र में अपेक्षा से 13 क्रियाएं वर्णित हैं। भगवती सूत्र में संक्षिप्तीकरण करके समस्त क्रियाओं को दो प्रकार में समाविष्ट कर दिया है। यथा- 1. सांपरायिक 2. इरियावहि।

प्रस्तुत प्रकरण में 5-5 करके कुल 10 क्रियाओं का वर्णन हैं। ये पांच-पांच क्रियाएं अन्य आगमों में भी यत्र तत्र वर्णित है जिनका समावेश ठाणांग कथित 25 में हैं।

भगवती सूत्र में बताया गया है कि कायिकी आदि पांच क्रियाएं ऐसी है कि मरण प्राप्त जीव के शरीर से भी होने वाली क्रिया उसके परभव में भी पहुंच जाती हैं। साथ ही उसके नहीं लगने का उपाय भी यह बताया गया है कि मरण समय निकट जानकर इस शरीर का त्याग कर देना चाहिए इस पर से ममत्व हटाकर इसे वोसिरा देना चाहिए।

कायिकी आदि पांच क्रियाएं-

1. कायिकी- शरीर की सूक्ष्म बादर प्रवृत्तियों से होने वाली क्रिया। इसके दो प्रकार हैं यथा- 1. अनुपरत- (प्रवृति का अत्याग), 2. दुष्प्रवृत्त।

2. अधिकरिणिकी- दूषित अनुष्ठान से, जीवों के शस्त्र भूत अनुष्ठान से, होने वाली क्रिया। यह दो प्रकार की हैं।- 1. शस्त्र भूत मन या पदार्थों का संयोजन रूप 2. शस्त्र भूत मन या पदार्थों की निष्पत्ति रूप ।

3. प्रद्वेषिकी- अकुशल परिणाम से होने वाली क्रिया। इसके तीन प्रकार है- 1. अपने पर 2. दूसरों पर 3. दोनों पर अशुभ मन करना।

4. परितापनिकी– कष्ट पहुंचाने, अशाता उत्पन्न करने से होने वाली क्रिया। यह भी स्वपर की अपेक्षा तीन प्रकार की होती हैं।

5. प्राणातिपातिकी– कष्ट पहुंचाने की सीमा का अतिक्रमण होकर जीवों के प्राणों का नाश हो जाने से अर्थात् उनकी मृत्यु हो जाने से लगने वाली क्रिया। यह भी स्व, पर,उभय की अपेक्षा तीन प्रकार की हैं।

क्रियाओं पर अनुप्रेक्षा– प्रथम की तीन क्रियाएं स्वरूप में इतनी सूक्ष्मतम है कि संसार के समस्त जीवों को प्रतिसमय निरंतर लगती रहती है। अप्रमत्तावस्था के बाद दसवें गुणस्थान तक भी इन तीनों क्रियाओं का अस्तित्त्व माना गया हैं।

पिछली दो क्रियाएं तदर्थक प्रवति होने पर या करने पर लगती हैं। अन्य समय में या अन्य जीवों से दोनों क्रियाएं नहीं लगती हैं।

स्वयं को मारने पीटने या शस्त्र प्रहार आदि करने से स्व निमित्तक परितापनिकी क्रिया लगती है एवं आत्म घात करने से स्व निमित्तक प्राणातिपातिकी क्रिया लगती हैं।

पिछली दोनों क्रिया छद्मस्थों को आभंग (मन सहित) एवं अनाभंग (मन बिना भी) दोनों प्रकार से लग जाती है अर्थात् बिना संकल्प किसी जीव को कष्ट हो जाय या मर जाय तो भी चौथी पांचवीं क्रिया लगती हैं।

वीतराग अवस्था में ये पांचों क्रियाएं नहीं कही गई है, किन्तु एक इरियावहि क्रिया कही है जिसे प्रथम कायिकी क्रिया में एक अपेक्षा से लक्षित किया जा सकता हैं। क्योंकि इरियावहि क्रिया भी काया की सूक्ष्म बादर प्रवृतियों से ही सम्बन्धित हैं। फिर भी इसका अलगाव इसलिये आवश्यक है कि इरियावहि क्रिया में कायिकी क्रिया के समान अनुपरत और दुष्प्रवृत्त यों दो विभाग नहीं हो सकते। इन दोनों से स्वंतत्र ही अवस्था इरियावहि क्रिया की वीतराग आत्माओं के होती हैं।

वीतराग छद्मस्थ आत्माओं के अवश्यंभावी पंचेन्द्रिय प्राणी पांव के नीचे सहसा दब जाय तो भी परितापनिकी या प्राणतिपातिकी क्रिया नहीं लग कर केवल इरियावहि क्रिया ही लगती हैं। एवं परिताप या हिंसा जन्य कर्म बंध भी न होकर केवल इरियावहि क्रिया निमित्तक अत्यल्प दो समय का बंध होता हैं।

क्रिया निमित्तक पाप और उनके विषय–

पाप अठरह है यथा- 1. प्राणातिपात यावत् 18मिथ्या दर्शन शल्य।

छः जीवनिकाय अर्थात् 6काया के जीव प्राणातिपात के विषय है, ग्रहण धारण द्रव्य अदत्तादान के विषय रूप हैं। रूप और रूप सहगत द्रव्य मैथुन-कुशील के विषय भूत है अर्थात्-मैथुन क्रिया के कारण भूत अध्यवसाय चित्र , काष्ठ, मूर्ति, पुतला आदि रूपों में या साक्षात स्त्री आदि के विषय में होते हैं।

शेष 15 पाप सर्व द्रव्य (6द्रव्यों) को विषय करते हैं।

24 दंडक में क्रिया– इन अठारह पाप स्थानों से 24 दंडक के जीवों को क्रियाएं लगती हैं। यही भलावण पाठ है जिससे एकेन्द्रिय आदि में भी 18पाप गिनाये गये हैं। यह अव्यक्त भाव की अपेक्षा एवं अविरत भाव की अपेक्षा समझ सकते हैं। व्यक्त भाव की अपेक्षा तो जिनके मन एवं वचन का योग नहीं है, चक्षु एवं चक्षु विषय नहीं है उनके मृषावाद मैथुन आदि पाप दृष्टिगत नहीं होते ।

सक्रिय अक्रिय– जीव और मनुष्य सक्रिय भी होते है एवं अक्रिय भी। शेष 23 दंडक के जीव सक्रिय ही होते है अक्रिय नहीं होते। जीव भी मनुष्य की अपेक्षा और मनुष्य भी 14 वें गुणस्थान की अपेक्षा अक्रिय होते हैं। सिद्ध सभी अक्रिय हैं।

कायिकी आदि क्रिया 24 दंडक में-

चौबीस ही दंडक में कायिकी आदि पांचों क्रियाएं होती हैं। एक जीव में एक समय में कभी तीन कभी चार एवं कभी पांच क्रिया होती हैं। मनुष्य में कभी तीन, कभी चार, कभी पांच एवं कभी अक्रिय भी होते हैं।

नारकी, देवता से किसी को भी प्राणातिपातिकी क्रिया नहीं लगती हैं। अतः इनकी अपेक्षा तेवीस दंडक के जीवों को कभी तीन क्रिया और कभी चार क्रिया लगती हैं। मनुष्य में कभी कभी तीन क्रिया कभी चार क्रिया लगती है एवं कभी अक्रिय भी होता हैं।

औदारिक के दस दंडकों की अपेक्षा 23 दंडक के जीवों को कभी तीन क्रिया कभी चार क्रिया कभी पांच क्रिया लगती हैं। मनुष्य में अक्रिया का विकल्प अधिक होता हैं।

एक जीव को एक जीव की अपेक्षा, एक जीव को अनेक जीव की अपेक्षा, अनेक जीव को एक जीव की अपेक्षा और अनेक जीव को अनेक जीव की अपेक्षा भी 3-4-5 क्रिया का कथन समझ लेना। चौथे विकल्प में कभी तीन कभी चार ऐसी नहीं कह कर तीन भी, चार भी, ऐसा कथन करना चाहिये।

क्रिया में क्रिया की नियमा भजना-

क्रिया	नियमा	भजना
1. कायिकी	दूसरी तीसरी	चौथी पांचवीं
2. अधिकरणिकी	पहली तीसरी	चौथी पांचवीं
3. प्राद्वेषिकी	पहली दूसरी	चौथी पांचवीं
4. परितापनिकी	प्रारम्भ की तीन	पांचवीं
5. प्राणातिपातिकी	प्रारम्भ की चारों	-
6. अक्रिया	नहीं	नहीं

इन क्रियाओं की नियमा भजना से सम्बन्धित सम्पूर्ण जीवों के चार विभाग होते है-

क्रमशः तीन क्रिया वाले 2. क्रम से चार क्रिया वाले 3. पांचों क्रिया वाले 4. पांचों क्रिया रहित

1. जिस जीव के 2. जिस समय में 3. जिस देश में एवं 4. जिस प्रदेश में यों चारों अपेक्षा से भी इन पांचों क्रियाओं में उक्त प्रकार से नियमा भजना होती हैं।

आयोजिता- इन पांचों क्रियाओं को आयोजित क्रिया भी कहा गया है अर्थात् जीवों को संसार में जोड़ने वाली लगाने वाली ये क्रियाएं हैं।

क्रिया और कर्म बन्ध- प्रत्येक जीव प्राणातिपात आदि पाप क्रिया करते हुए सात या आठ कर्मों का बंध करता हैं।

अनेक जीवों की अपेक्षा तीन भंग- 1. सभी सात कर्म बांधने वाले 2. सात कर्म बांधने वाले अधिक और आठ कर्म बांधने वाला एक 3. सात कर्म बांधने वाले भी बहुत और आठ कर्म बांधने वाले भी बहुत।

आयुष्य कर्म जीव एक भव में एक बार बांधता है शेष सात कर्म सदा बंधते रहते है इसलिये उक्त विकल्प बनते हैं।

दंडक की अपेक्षा 19 दंडक में तीन विकल्प होते है समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय में तीन विकल्प नहीं होते क्योंकि उनमें जीवों की संख्या अधिक होने से आयुष्य के बंधक सदा मिलते हैं।

अठारह पाप सेवन से ज्ञानावरणीय आदि बंध करते हुए जीवों के कायिकी आदि क्रियाएं 3-4 या 5 होती है अक्रिय नहीं होते।

अठारह पाप से विरत जीव को ज्ञानावरणीय आदि सात कर्म बंध करते हुए 3-4 या 5 क्रिया लगती है और वेदनीय कर्म बंध करते 3-4-5 क्रिया लगती है अथवा अक्रिय होता हैं।

आरम्भिकी आदि पांच क्रिया-

पांच क्रियाएं इस प्रकार है यथा- 1. आरम्भिकी 2. परिग्रहिकी 3. माया प्रत्यया 4. अप्रत्याख्यान क्रिया 5. मिथ्यादर्शन प्रत्यया।

1. आरम्भिकी- जीव हिंसा के संकल्प एवं प्रयत्न-प्रवृत्ति से एवं अहिंसा में अनुद्यम अनुपयोग से यह क्रिया लगती हैं। संसारस्थ जीवों को एवं प्रमत्त संयत तक के मनुष्यों को यह क्रिया लगती हैं। अप्रमत संयम के यह क्रिया नहीं होती हैं।

2. परिग्रहिकी- पदार्थों में ममत्व-मूर्च्छा भाव हो, उन्हें ग्रहण धारण में आसक्ति भाव हो, तो यह क्रिया लगती है अथवा धार्मिक आवश्यक उपकरणों के अतिरिक्त पदार्थ का संग्रह करने वाले एवं गांवों घरों एवं भक्तों में अथवा शिष्यों में ममत्व भाव मेरा-मेरापन की आसक्ति के परिणाम रखने वाले को परिग्रहिकी क्रिया लगती हैं। पांचवें देश विरत गुण स्थान पर्यन्त यह क्रिया लगती हैं।

3. माया प्रत्ययिकी- सूक्ष्म या स्थूल कषाय के अस्तित्त्व सद्भाव में यह क्रिया लगती हैं। प्रथम गुणास्थान से दसवें गुणास्थान तक यह क्रिया लगती हैं। माया शब्द से यहां चारों कषायों का ग्रहण समझना चाहिये।

4. अप्रत्याख्यान प्रत्ययिकी क्रिया- प्रत्याख्यान नहीं करने वाले समस्त अविरत जीवों को यह क्रिया लगती हैं। अप्रत्याख्यान ही इसका निमित्त कारण हैं। प्रथम गुणस्थान से चतुर्थ गुणस्थान तक यह क्रिया हैं। देशविरत श्रावक में यह क्रिया नहीं होती हैं।

5. मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी- प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती मिथ्या दृष्टि जीवों को यह क्रिया लगती हैं। उनका मिथ्यात्व या असम्यक्त्व ही इस क्रिया का कारण हैं। सन्नी जीवों की अपेक्षा मिथ्या समझ, मान्यता, विपरीत तत्त्वों की श्रद्धान, इसका कारण होता हैं। जिनेश्वर कथित तत्त्वों में अश्रद्धान भी इस क्रिया का कारण होता है मिश्र दृष्टि को भी यह क्रिया लगती हैं।

चौवीस दंडक में आरम्भिकी आदि क्रिया-

सभी दंडकों में उक्त पांचों क्रियाऐं होती हैं।

नियमा भजना की अपेक्षा- नारकी देवताओं में प्रारम्भ की चार क्रिया नियमा होती है पांचवी मिथ्या दर्शन प्रत्ययिकी क्रिया मिथ्यादृष्टि के होती है एवं सम्यग् दृष्टि के नहीं होती हैं।

पांच स्थावर तीन विकलेन्द्रिय में पांचों नियमा होती हैं।

तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में प्रारम्भ की तीन क्रिया नियमा होती है चौथी पांचवी क्रिया भजना से होती है अर्थात् सम्यग् दृष्टि जीवों के पांचवी क्रिया नहीं होती हैं चार नियमा होती हैं। देशविरति श्रावक को अर्थात् कुछ भी व्रत प्रत्याख्यान करने वालों को चौथी पांचवीं क्रिया नहीं होती है तीन क्रिया ही होती हैं।

मनुष्य और समुच्चय जीव में पांचों क्रिया भजना से होती है अर्थात् 1- 2-3-4 या 5 अथवा अक्रिय भी होते हैं।

क्रिया में क्रिया की नियमा भजना-

क्रिया	नियमा	भजना
1. आरम्भिकी	तीसरी	दूसरी चौथी पांचवीं
2. परिग्रहिकी	पहली तीसरी	चौथी पांचवी
3. मायाप्रत्ययिकी	×	चारों
4. अप्रत्याख्यान	पहली दूसरी तीसरी	पांचवी
5. मिथ्या दर्शन	चारों	×
6. अक्रिया	नहीं	नहीं

पापस्थानों की विरति एवं कर्म बंध-

विरति- छः (षड) जीवनिकाय आदि जिन द्रव्यों में पाप किये जाते है, पाप की विरति भी उन्हीं की अपेक्षा होती है अर्थात् 15 पाप की सर्व द्रव्यों की अपेक्षा होती है और 1. हिंसा 2. अदत्त 3. मैथुन की विरति क्रमशः 6काया, ग्रहण धारण योग्य द्रव्य एवं रूप-रूप सहगत द्रव्यों की अपेक्षा होती हैं।

यहां विरति भाव सर्व विरति की अपेक्षा है अतः मनुष्य के अतिरिक्त 23 दंडक में 17 पाप से विरति नहीं हैं। 18वें मिथ्यात्व पाप से विरति पांच स्थावर तीन विकलेन्द्रिय में नहीं है शेष 16दंडक में है अर्थात् नारकी देवता मनुष्य और तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में मिथ्यात्व से विरति सम्यग् दृष्टि जीवों को होती है। 17 पाप से विरति संयत मनुष्य के ही होती हैं।

कर्म बंध- मिथ्या दर्शन से विरत तेवीस दंडक के जीव आठ कर्म बांधने वाले होते हैं कोई सात कर्म बांधने वाले होते है।

18 पाप त्याग वाले मनुष्य 1. सात कर्म बाधने वाले 2. आठ कर्म बांधने वाले 3. छः कर्म बांधने वाले 4. एक कर्म बांधने वाले, और 5. अबंधक भी होते हैं।

सात कर्म बंधक- आयुष्य कर्म नहीं बांधते है। आठ कर्म बंधक- सभी कर्म बांधते हैं। छः कर्म बंधक- आयुष्य और मोह कर्म नहीं बांधते है (10 वां गुण स्थान)। एक कर्म बंधक- वेदनीय कर्म बांधते हैं। (11-12-13 वां गुणस्थान)।

अबंधक- कोई भी नहीं बाधते। (14 वां गुणस्थान)।

इसमें सात के बंधक और एक के बंधक और एक के बंधक दो बोल शास्वत है शेष तीन अशाश्वत है अर्थात् कभी होते है कभी नहीं होते हैं।

1. दोनों शाश्वत का एक भंग।
2. तीन अशाश्वत के एक और अनेक की अपेक्षा असंयोगी 6भंग।
3. तीन अशाश्वत के तीन द्विक की तीन चौभंगी होने से द्विसंयोगी 12 भंग।
4. तीन अशाश्वत की एक त्रिक के तीन संयोगी आठ भंग।

ये कुल (1 + 6+ 12 + 8) 27 भंग होते हैं।

भंग विधि 16 वें प्रयोग पद में समझाई गई हैं।

पापस्थानों की विरति एवं क्रिया-

17 पाप की विरति में जीव, मनुष्य में दो क्रिया- आरम्भिकी एवं माया प्रत्यायिकी इन दो की भजना। परिग्रहिकी आदि तीन क्रिया नहीं होती हैं।

18 वें मिथ्यात्व पाप से विरति जीव मनुष्य में चार क्रिया की भजना एवं मिथ्यात्व की क्रिया नहींहोती हैं। शेष 15 दंडक के जीवों में 4 क्रिया की नियमा होती है मिथ्यात्व की क्रिया नहीं होती हैं। आठ दंडक में एक भी पाप की विरति नहीं हैं।

क्रिया का नाम	कायिकी	आधिकरणिकी	प्राद्वेषिकी	पारितापनिकी	प्राणातिपातिकी
कायिकी	नियमा	नियमा	नियमा	भजना	भजना
आधिकरणिकी	नियमा	नियमा	नियमा	भजना	भजना
प्राद्वेषिकी	नियमा	नियमा	नियमा	भजना	भजना
पारितापनिकी	नियमा	नियमा	नियमा	नियमा	भजना
प्राणातिपातिकी	नियमा	नियमा	नियमा	नियमा	नियमा

क्रिया का नाम	आरंभिकी	पारिग्रहिकी	माया प्रत्यया	अप्रत्याख्यान	मिथ्या दर्शन
आरंभिकी	नियमा	भजना	नियमा	भजना	भजना
पारिग्रहिकी	नियमा	नियमा	नियमा	भजना	भजना
माया प्रत्यया	भजना	भजना	नियमा	भजना	भजना
अप्रत्याख्यान	नियमा	नियमा	नियमा	नियमा	भजना
मिथ्या दर्शन प्रत्यया	नियमा	नियमा	नियमा	नियमा	नियमा

अल्पाबहुत्व-

1. सबसे थोड़ा मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया वाले 2. उससे अप्रत्याख्यान क्रिया वाले विशेशाधिक 3. उससे परिग्रहिकी क्रिया वाले विशेषाधिक 4. उससे आरम्भिकी क्रिया वाले विशेषाधिक 5. उससे माया प्रत्ययिकी क्रिया वाले विशेषाधिक।

तेवीसवां ''कर्म प्रकृति'' पद

प्रथम उद्देशक

मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय और योग इन पांचों में से किसी के भी निमित्त सें आत्मा में जो अचेतन द्रव्य आता है वही कर्म द्रव्य हैं। रागद्वेष के संयोग से वह आत्मा के साथ बंध जाता है और समय पाकर वह कर्म अपने स्वाभावानुसार फल देता हैं

रागद्वेष जनित मानसिक प्रवृत्ति के अनुसार क्रोधादि कषाय वश शारीरिक वाचिक क्रिया होती है वहीं द्रव्य कर्मोपार्जन का कारण बनती है वस्तुतः कषाय प्रेरित अथवा कषाय रहित मन वचन काया की प्रवत्ति से ही आत्मा में कर्मों का आगमन होता हैं। उन कर्म परमाणु का चार प्रकार का बंध होता हैं।

1. प्रकृति बंध– आत्मा के ज्ञान आदि गुणों को आवृत्त करने रूप या सुख-दुख देने रूप मुख्य आठ प्रकार के स्वभावों का बंध, ''प्रकृति बंध'' हैं।

2. स्थिति बंध– कर्मों के विपाक की फल देने की अवधि का निश्चय करना, बंध करना ''स्थिति बंध'' हैं।

3. अनुभाग बंध– कर्म रूप में ग्रहीत पुद्गलों के फल देने की शक्ति का तीव्र मंद होना ''अनुभाग बंध'' हैं।

4. प्रदेश बंध– भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले कर्म प्रदेशों की संख्या का निर्धारण होना आत्मा के साथ बंध होना ''प्रदेश बंध'' हैं।

अष्ट कर्म प्रकृति– कर्मों के स्वभाव से ही उनका विभाजन वर्गीकरण किया या समझा जाता हें। अतः प्रकृति की अपेक्षा कर्मों के प्रमुख आठ प्रकार हैं अर्थात् कर्मों की मूल प्रकृति आठ है। यथा -

1. ज्ञानवरणीय– आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करने वाला।

2. दर्शनावरणीय– दर्शन गुण एवं जागृति को आवृत्त करने वाला।

3. वेदनीय– सुख -दुःख की विभिन्न अवस्थाओं को देने वाला।

4. मोहनीय– आत्मा को मोहित मति बनाकर कुश्रद्धा कुमान्यता असदाचरणों में कषायों एवं विकारों में उलझाने वाला।

5. आयुष्य– किसी न किसी संसारिक गतियों के भव स्थिति में बलात् रोके रखने वाला।

6. नामकर्म– दैहिक विचित्र अवस्थाओं को प्राप्त कराने वाला। सुन्दर-खराब, शक्ति सम्पन्न निर्बल शरीरों को एवं विभिन्न संयोगों को प्राप्त कराने वाला।

7. गौत्र कर्म– ऊंच-नीच जाति कुल एवं हीनाधिक बल, रूप आदि प्राप्त कराने वाला।

8. अन्तरायकर्म– दान लाभ भोग उपभोग में बाधक अवस्थाओं को पैदा करने वाला।

कर्म बंध परम्परा एवं मुक्ति– एक कर्म के उदय से दूसरे कर्म का उदय प्राप्त होता रहता हैं। कर्मों के उदय से जीव की मति और परिणति वैसी होती रहती है अर्थात् कर्मों का उदय अन्य उदय को प्रेरित करता है और उदय से आत्मा की परिणति प्रभावित होती हैं। परिणति की तारतम्यता से पुनः नये कर्म बंध होते रहते हैं। इस प्रकार आठों तरह के कर्म बंध से और उदय से यह संसार चक्र चलता रहता हैं।

किन्तु जब आत्मा अपनी विशिष्ट ज्ञान विवेक शक्ति से सशक्त बन जाती है तो वह कर्मोदय प्रेरित बुद्धि एवं वैसी परिणति वाली नहीं होकर सजग रहती है एवं पूर्ण विवेक के साथ कर्म प्रभाव परम्परा को अवरूद्ध करने में सफल हो जाती हैं। तब क्रमशः कर्मों से मुक्त बनती जाती है, नये कर्म बंध कम होते है, उनका फल भी कम पड़ जाता है। तब एक दिन कर्मों का प्रभाव पूर्ण रूप से ध्वस्त नष्ट हो जाता है और आत्मा सदा के लिये कर्मों से एवं कर्म बंध और उसके फल भोगने से दूर हो जाती है अर्थात् पूर्णतया मुक्त बन जाती हैं। वह शाश्वत सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेती हैं।

कर्मों का वेदन एवं कर्म फल के प्रकार– 24 ही दंडक के समस्त जीव ज्ञानावरणीय आदि आठों कर्मों का वेदन करते हैं। वे कर्म स्वयं जीव के द्वारा बांधे हुए संचित किये हुये होते हैं। स्वतः विपाक प्राप्त उदय प्राप्त होते हैं। इस प्रकार वे कर्म जीव से ही कृत निवर्तित एवं परिणामित होते हैं। स्वतः उदीरित होते है या परतः भी उदीरित होते है एवं तद्योग्य गति, स्थिति, भव को प्राप्त होकर वे कर्म अपना विशिष्ट फल प्रकट करते हैं। यथा- नरक गति को प्राप्त कर विशिष्ट अशाता वेदनीय, मनुष्य तिर्यञ्च भव में विशिष्ट निद्रा, देव भव में विशिष्ट सुख आदि।

आठों कर्मों के विपाक के अनेक प्रकार है यथा-

1. ज्ञानवरणीय कर्म का 10 प्रकार का विपाक-

ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्यव एवं केवल इन पांचों प्रकार के ज्ञान का आवरण होता है किन्तु यहां मति ज्ञानावरणीय के परिणाम रूप 10 प्रकार कहे गये हैं। जो कि पांच इन्द्रियों से सम्बन्धित हैं।

यद्यपि द्रव्येन्द्रियां नाम कर्म से सम्बन्धित है तथापि भावेन्द्रिय का सम्बन्ध ज्ञानावरणीय से हैं। उपकरण रूप जो बाह्म आभ्यंतर श्रोत्रेन्द्रिय (कान) है वह नाम कर्म के उदय से प्राप्त है एवं ''लब्धि और उपयोग भावेन्द्रिय है'' वह ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होती हैं। इसका (भावेन्द्रिय का) आवरण होना यह ज्ञानावरणीय के उदय से होता हैं। इसके क्षयोपशम की प्राप्ति यह ''लब्धि'' रूप है और उससे प्राप्त विषय में उपयुक्त होना, उस विषय को अच्छी तरह ग्रहण करना, समझना, यह ''उपयोग'' रूप हैं।

1 से 5- पांच इन्द्रियों के क्षयोपशम को आवरित (बाधित) करना।

6से 10- पांच इन्द्रियों के उपयोग को अर्थात् उनसे होने वाले ज्ञान को बाधित करना।

यह दस प्रकार का विपाक ज्ञानावरणीय कर्म के उदय का बताया गया हैं। इस कर्म के उदय से जीव जानने योग्य को भी नहीं जान पाता, जानना चाहते हुए भी नहीं जान सकता और जानकर के भी फिर नहीं जानता है अथवा उसका पूर्व ज्ञान लुप्त हो जाता हैं।

2. दर्शनावरणीय कर्म का 9 प्रकार का विपाक-

1-4 चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल इन चार दर्शन को बाधित करना । 5. निद्रा-सामान्य सहज निद्रा आना 6. निद्रा निद्रा- प्रगाढ निद्रा आना 7. प्रचला- बैठे-बैठे निद्रा आना 8. प्रचला-प्रचला-चलते-चलते निद्रा आना 9. सत्यानर्द्धि- महानिद्रा आना, दिन में सोचे हुए असाधारण कार्य रात्रि में उठकर इस निद्रा में ही कर लिये जाते हैं एवं पुनः वह व्यक्ति सो जाता है।

यह 9 प्रकार का दर्शनावरणीय कर्म का उदय जन्य विपाक है। इस कर्म के उदय से जीव देखने योग्य पदार्थों को देख नहीं पाता, देखना चाहते हुए भी नहीं देखता और देखकर भी बाद में नहीं देखता है।

3. वेदनीय कर्म का 16 प्रकार का विपाक-

सातावेदनीय - 1-5 मनोज्ञ शब्द, रूप, गंध, स्पर्श के पदार्थों का संयोग मिलना 6. मन से प्रसन्न रहने के संयोग होना 7. बोलने की परेशानी रहित संयोग होना अर्थात् बोलने में भी आनंद शांति का संयोग होना 8. शरीर के सुख या सेवा का संयोग प्राप्त होना।

असातावेदनीय-उपरोक्त आठों का विपरीत प्राप्त होना।

4. मोहनीय कर्म का 5 प्रकार का विपाक-

1. मिथ्यात्व-मिथ्या मति होना, मिथ्या श्रद्धा मान्यता होना।
2. मिश्र-मिश्र मति, मिश्र मान्यता होना।
3. सम्यक्त्व मोहनीय-क्षायिक समकित प्राप्ति में बाधक होना।
4. कषाय-16प्रकार के कषाय भावों में परिणामों में संलग्न बनना।
5. नोकषाय-वेद हास्य भय आदि 9 प्रकार की विकृत अवस्थाओं में संलग्न होना।

इस प्रकार मुख्य पांच प्रकार का मोह कर्म का विपाक होता है।

5. आयुष्य कर्म का 4 प्रकार का विपाक-

1. नरकायु 2. तिर्यंचायु 3. मनुष्यायु 4. देवायु रूप से आयुष्य कर्म का चार प्रकार का परिणाम है।

6. नाम कर्म का 28प्रकार का विपाक-

शुभ नाम- 1 से 5 स्वयं के शब्द रूप, गंध रस, स्पर्श का ईष्ट होना। इसी प्रकार स्वयं की 6. गति (चाल) 7. स्थिति (अवस्थान) 8. लावण्य 9. यश 10 उत्थान कर्म बल वीर्य पुरूषकार पराक्रम आदि का मन पसंद होना 11-14 ईष्ट, कांत, प्रिय एवं मनोज्ञ स्वर का होना।

अशुभ नाम-उपरोक्त 14 का विपरीत प्राप्त होना।

7. गौत्र कर्म का 16प्रकार का विपाक-

उच्च गौत्र- 1. जाति 2. कुल 3. बल 4 रूप 5. तप 6. श्रुत 7. लाभ 8. ऐश्वर्य इन आठ का श्रेष्ठ श्रेष्ठतम मिलना।

नीच गौत्र- इन उक्त आठ की निम्न स्तरीय उपलब्धि प्राप्त होना।

8. अंतराय कर्म का 5 प्रकार का विपाक-

1. दान 2. लाभ 3. भोग 4 उपभोग 5. वीर्य-पुरूषार्थ में बाधाएं उत्पन्न होना, विध्न होना या संयोग न बनना। चाहते हुए या संयोग मिलते हुए भी न कर पाना यह अंतराय कर्म का विपाक-फल है।

विशेष- 1. मदिरा आदि सेवन से ज्ञान लुप्त होना, ब्राह्मी सेवन से बुद्धि स्मृति विकसित होना, भोज्य पदार्थों से निद्रा-अनिद्रा, रोग-निरोग होना। औषध, चश्में के प्रयोग से दृष्टि का तेज होना, इत्यादि पुद्गल जन्य पर निमित्त कर्म विपाक भी होते हैं एवं स्वतः अवधि आदि ज्ञान का उत्पन्न न होना, स्वतः रोग आ जाना इत्यादि स्वतः कर्म विपाक है।

2. बेइन्द्रिय के कान, नाक, आंख का लब्धि उपयोग का अभाव होता है। इस प्रकार तेइन्द्रिय आदि का भी समझ लेना। कुष्ट रोग से उपहत शरीर या लकवा (पक्षाघात) से उपहत शरीर के स्पर्शेन्द्रिय का लब्धि उपयोग आवरित होता है।

जन्म से अन्धे गूंगे है या बाद में हो गये हों उनके श्रोत, चक्षु, घ्राण आदि इन्द्रियों के लब्धि उपयोग का आवरण समझना चाहिये।

3. चक्षु-अचक्षु दर्शनावरणीय में सामान्य उपयोग बाधित होता है एवं ज्ञानवरणीय में विशेष उपयोग, विशिष्ट अवबोध आवरित होता है।

4. कर्मों के उदय, क्षयोपशम आदि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से भी प्रभावित होते हैं। यथा-सर्दी में या प्रातः काल अध्ययन स्मरण की सुलभता। शांत एकांत स्थान में तत्त्वज्ञान की ध्यान की अनुप्रेक्षा विशेष गुण वर्धक होती है। निद्रा आने या एकाग्रचित हो जाने पर वेदनीय कर्म सुसुप्त हो जाता है। इत्यादि विविध उदाहरण प्रसंग समझ लेने चाहिये।

5. उत्थान-शरीर सम्बन्धी चेष्टा, कर्म = भ्रमण-गमन आदि, बल = शारीरिक शक्ति, वीर्य = आत्मा में उत्पन्न होने वाला सामर्थ्य, पुरूषाकार-आत्मजन्य स्वाभिमान विशेष, पराक्रम-अपने कार्य-लक्ष्य में सफलता प्राप्त कर लेना। यह ''उत्थान कम्म बल वीर्य पुरूषाकार पराक्रम का अर्थ है।''

6. नाम कर्म में इच्छित-स्वयं के मन पसंद शब्दादि होना ''इष्ट शब्द'' आदि है। इष्ट कांत आदि स्वर का मतलब है-वीणा के समान वल्लभ स्वर होना, कोयल के समान कमनीय स्वर होना, इसी प्रकार अन्यों को अभिलषणीय, प्रिय, स्वर का होना। यह ईष्ट शब्द और ईष्ट स्वर आदि में अन्तर समझना चाहिये।

7. वेदनीय कर्म में मनोज्ञ अमनोज्ञ दूसरों के शब्दादि का संयोग मिलना होता है। और नाम कर्म में स्वयं के शरीर से सम्बन्धित शब्दादि है। यह दोनों के मनोज्ञ और ईष्ट शब्दों में अन्तर है।

8. गधा, ऊंट, कुत्ता आदि के शब्द अनिष्ट होता है, कोयल, तोता, मयूर आदि के शब्द ईष्ट होते हैं।

इस प्रकार इस प्रथम उद्देशक में आठ मूल कर्म प्रकृति उसका स्वरूप, बंध स्वरूप एवं उदय के प्रकार अर्थात् कर्म फल देने के प्रकार बताये गये हैं। आगे दूसरे उद्देशक में आठ मूल कर्म प्रकृति की उत्तर प्रकृत्तियें और उनके भेदानुभेदों का वर्णन किया गया है साथ ही उन समस्त प्रकृत्तियों का जघन्य और उत्कृष्ट बंध काल-स्थितियां बताई गई है।

दूसरा उद्देशक

कर्मों की उत्तर प्रकृत्तियें-आठ कर्मों में ज्ञानावरणीय कर्म, आयुकर्म और अंतरायकर्म की केवल उत्तर प्रकृत्तियें कही गई है उनके पुनः भेद नहीं किये गये हैं। शेष पांच कर्मों की उत्तर प्रकृत्तियों के पुनः अनेक भेद किये गये हैं।

1. ज्ञानावरणीय-उत्तर प्रकृति पांच है।
2. दर्शनावरणीय-उत्तर प्रकृति दो है एवं उसके भेद 9 है।
3. वेदनीय-उत्तर प्रकृति 2 है एवं उसके भेद 16भेद है।
4. मोहनीय-उत्तर प्रकृति 2 है एवं उसके भेद 16है।
5. आयुष्य-उत्तर प्रकृति 4 है।
6. नामकर्म-उत्तर प्रकृति 42 है उसके भेद 93 है।
7. गौत्र कर्म-उत्तर प्रकृति 2 है उसके भेद 16है।
8. अंतराय कर्म-उत्तर प्रकृति 5 है।

	आठ कर्म प्रकृतियां	**प्रकृति**	**बांधे**	**भोगे**
1.	ज्ञानवरणीय कर्म	5	6	10
2	दर्शनावरणीय कर्म	9	6	9
3	वेदनीय साता असाता वेदनीय	2	10 12	8 8
4	मोहनीय कर्म	28	6	5
5	आयुष्य	4	16	4
6	नाम	93	8	28
7	गोत्र	16	16	16
8	अन्तराय	5	5	5

50 बोलों की बंधी (भ.श. 63.3)

	द्वार	50 बोल	कर्मबंध
1	वेद द्वार	4–स्त्री, पुरुष, नपुंसक, अवेदी	तीन में 7 की नियमा आयु की भजना, अवेदी 7 की भजना आयु अबंध
2	संजत	4–संजति, असंजति, संजता संजति, नो सं.नो.असं.	संयति 8 की भजना, दो तीन में 7 की नियमा आयु भजना, चौथे में अबंध
3	दृष्टि	3–सम, मिथ्या, मिश्र	सम 8 की भजना, मिथ्या 7 की नियमा आयु भजना, मिश्र 7 नियमा आयु अबंध
4	संज्ञी	3–संज्ञी, असंज्ञी, नो सं.–नो असंज्ञी	संज्ञी 7 की भजना वेद नियमा, असंज्ञी 7 नियमा आयु भजना, तीसरे में वेदनीय भजना 7 अबंध
5	भवी	3–भवी, अभवी, नो भवी–नो अभवी	भवी 8 भजना, अभवी 7 नियमा आयु भजना, तीसरे में 8 अबंध
6	दर्शन	4–चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल	तीन में 7 की भजना वेदनीय नियमा, केवल में वेदनीय भजना 7 अबंध
7	पर्याप्त	3–पर्याप्त, अपर्याप्त, नो पर्याप्ता–नो अपर्याप्त	पर्या. 8 की भजना, अपर्या. 7 की नियमा आयु भजना, तीसरे में अबंध
8	भाषक	2–भाषक, अभाषक.	भा. 7 की भजना वेदनीय नियमा, अभाषक 8 की भजना
9	परित्त	3–परित्त, अपरित्त, नो परित्त–नो अपरित्त	परित्त 8 भजना, अपरित्त 7 नियमा आयु भजना, अंत में 8 अबंध
10	ज्ञान	8–ज्ञान 5, अज्ञान 3	4 ज्ञान 7 भजना वेद. नियमा, केवल में वेद. भजना 7 अबंध। अज्ञान 7 नियमा आयु भजना
11	योग	4–मन, वचन, काय, अयोगी	तीन योग 7 भजना वेदनीय नियमा, अयोगी 8 अबंध
12	उपयोग	2–साकार, अनाकार	आठों की भजना
13	आहारक	2 आहारक, अनाहारक	आहा. 7 भजना वेदनीय नियमा। अना. 7 की भजना आयु अबंध
14	सूक्ष्म	3–सूक्ष्म, बादर, नो सूक्ष्म नो बादर	सूक्ष्म 7 नियमा आयु भजना। बादर 8 भजना। नोसू. नो बादर अबंध
15	चरम	2–चरम अचरम	7 कर्मों की भजना
	योग	**50**	

ये कुल 176 भेद होते हैं। इनमें से 148उत्तर प्रकृतियों की बंध स्थिति बताई गई है। 28 भेदों को कम कर दिये है। वेदनीय और गौत्र कर्म के 16-16 भेद कहे हैं किन्तु बंध स्थिति केवल 2-2 भेदों की ही कहीं गई है। अतः 14 + 14 = 28 कम होने से 176 -28 = 148 होते हैं।

148 कर्म प्रकृतियों की बंध स्थिति-

क्र.सं.	कर्म प्रकृति नाम	जघन्य बंध स्थिति	उत्कृष्ट बंध स्थिति
1-5	मति ज्ञानावरणीय आदि पांच	अंतर्मुहूर्त	30 कोडा-कोडी सागरोपम
6-9	चक्षुदर्शनावरणीयादि चार	अंतर्मुहूर्त	30 कोडा-कोडी सागरोपम
10-14	निद्रा आदि पांच	3/7 सागर (कुछ कम)	30 कोडा-कोडी सागरोपम
15	ईर्यावहि साता वेदनीय	दो समय	दो समय
	सांपरायिक वेदनीय	12 मुहूर्त	15 कोडा-कोडी सागर
16	अशाता वेदनीय	3/7 सागर कुछ कम	30 कोडा-कोडी सागर
17	सम्यक्त्व मोह	अंतर्मुहूर्त	66 सागर साधिक
18	मिथ्यात्व मोह	1 सागरोपम, कुछ कम	70 कोडा-कोडी सागर
19	मिश्र मोह	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त
20-31	तीन कषाय चौक (12)	4/7 सागर, कुछ कम	40 कोडा-कोडी सागर
32-35	संज्जवलन, कषाय चौक	2 मास/1 मास/ अर्द्ध मास/अंतर्मुहूर्त	40 कोडा-कोडी सागर
36	स्त्री वेद	$1\frac{1}{2}$ /7 सागर (कुछ कम)	15 कोडा-कोडी सागर
37	पुरुष वेद	8 वर्ष	10 कोडा-कोडी सागर
38	नपुसंक वेद	2/7 सागर (कुछ कम)	20 कोडा-कोडी सागर
39-40	हास्य, रति	1/7 सागर (कुछ कम)	10 कोडा-कोडी सागर
41-44	अरति, भय, शोक, दुगुंछा	2/7 सागर (कुछ कम)	20 कोडा-कोडी सागर
45-46	नरकायु देवायु	10000 वर्ष साधिक अंतर्मुहूर्त	33 सागर + 1/3 करोड पूर्व
47-48	तिर्यंचायु मनुष्यायु	अंतर्मुहूर्त	3 पल + 1/3 करोड पूर्व
49	नरक गति	2/7 हजार सागर (कुछ कम)	20 कोडा-कोडी सागर
50	तिर्यंञ्च गति	2/7 सागर (कुछ कम)	20 कोडा-कोडी सागर
51	मनुष्य गति	$1\frac{1}{2}$ सागर (कुछ कम)	15 कोडा-कोडी सागर
52	देव गति	1/7 हजार सागर (कुछ कम)	10 कोडा-कोडी सागर
53	एकेन्द्रिय जाति	2/7 सागरोपम (कुछ कम)	20 कोडा-कोडी सागर
54-56	बेन्द्रियादि तीन जाति	9/35 सागरोपम (कुछ कम)	18 कोडा-कोडी सागर
57	पंचेन्द्रिय जाति	2/7 सागरोपम (कुछ कम)	20 कोडा-कोडी सागर
58	औदारिक शरीर	2/7 सागरोपम (कुछ कम)	20 कोडा-कोडी सागर
59	वैक्रिय शरीर	2/7 हजार सागर (कुछ कम)	20 कोडा-कोडी सागर
60	आहारक शरीर	अंतः कोडा-कोडी सागरोपम	अंतः कोडा-कोडी सागर
61-62	तेजस कार्मण शरीर	2/7 सागर (कुछ कम)	20 कोडा-कोडी सागर
63-72	बंधन पांच, संघातन पांच	अपने-अपने शरीर के समान है	
73-75	अंगोपांग तीन	अपने-अपने शरीर के समान है	
76	वज्र ऋषभ नाराच संहनन	5/35 (1/7) सागर (कुछ कम)	10 कोडा-कोडी सागर
77	ऋषभ नाराच संहनन	6/35 सागर (कुछ कम)	12 कोडा-कोडी सागर
78	नाराच संहनन	7/35 (1/7) सागर (कुछ कम)	14 कोडा-कोडी सागर

क्र.सं.	कर्म प्रकृति नाम	जघन्य बंध स्थिति	उत्कृष्ट बंध स्थिति
79	अर्द्ध नाराच संहनन	8/35 सागर (कुछ कम)	16 कोडा-कोडी सागर
80	कीलिका संहनन	9/35 सागर (कुछ कम)	18 कोडा-कोडी सागर
81	सेवार्त संहनन	10/35 (2/7) सागर (कुछ कम)	20 कोडा-कोडी सागर
82-87	संस्थान छः	क्रमशः 6 संहनन के समान है	
88	सफेद वर्ण	4/28 (1/7) सागर (कुछ कम)	10 कोडा-कोडी सागर
89	पीला वर्ण	5/28 सागर (कुछ कम)	12 $\frac{1}{2}$ कोडा-कोडी सागर
90	लाल वर्ण	6/28 सागर (कुछ कम)	15 कोडा-कोडी सागर
91	नीला वर्ण	7/28 (1/4) सागर (कुछ कम)	17 $\frac{1}{2}$ कोडा-कोडी सागर
92	काला वर्ण	8/28 (2/7) सागर (कुछ कम)	20 कोडा-कोडी सागर
93	सुगन्ध	1/7 सागर (कुछ कम)	10 कोडा-कोडी सागर
94	दुर्गन्ध	2/7 सागर (कुछ कम)	20 कोडा-कोडी सागर
95-99	पांच रस	क्रमशः पांच वर्ण के समान है	
100-103	कर्कश, गुरु, रुक्ष, शीत	2/7 सागर (कुछ कम)	20 कोडा-कोडी सागर
104-107	मृदु, लघु, स्निग्ध, उष्ण	1/7 सागर (कुछ कम)	10 कोडा-कोडी सागर
108-110	अगुरु लघु, उपघात पराघात	2/7 सागर (कुछ कम)	20 कोडा-कोडी सागर
111-114	चार आनुपूर्वी	क्रमशः चार गति के समान है।	
115-118	उच्छ्वास, आतप, उद्योत, निर्माण	2/7 सागर (कुछ कम)	20 कोडा-कोडी सागर
119	तीर्थंकर	अंतः कोडा-कोडी सागर	अंतः कोडा-कोडी सागर
120	शुभ विहायोगति	1/7 सागर (कुछ कम)	10 कोडा-कोडी सागर
121	अशुभ विहायोगति	2/7 सागर (कुछ कम)	20 कोडा-कोडी सागर
122-126	त्रस, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक	2/7 सागर (कुछ कम)	20 कोडा-कोडी सागर
127-129	सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण	9/35 सागर (कुछ कम)	18 कोडा-कोडी सागर
130-134	स्थिर, शुभ, अशुभ सुस्वर, आदेय	1/7 सागर (कुछ कम)	10 कोडा-कोडी सागर
135-140	अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुश्वर अनादेय, अयशकीर्ति	2/7 सागर (कुछ कम)	20 कोडा-कोडी सागर
141	यश कीर्ति	आठ मुहूर्त	10 कोडा-कोडी सागर
142	उच्च गोत्र	आठ मुहूर्त	10 कोडा-कोडी सागर
143	नीच गोत्र	2/7 सागर (कुछ कम)	20 कोडा-कोडी सागर
144-148	दानांतरायादि पांच	अंतर्मुहूर्त	30 कोडा-कोडी सागर

148 कर्म प्रकृतियों की बंध स्थिति-

संकेत-सागर = सागरोपम। पल = पल्योपम। को.को. = कोडा कोडी।

(कुछ कम) = पल्योपम का असंख्यातवां भाग कम।

1/7 सागर = एक सागरोपम का एक सातवां भाग।

1/7 हजार सागर = एक हजार सागरोपम का एक सातवां भाग।

9/35 सागर = एक सागर के पेंतीसवें भाग 9

विशेष ज्ञातव्य-

1/7 सागर, 2/7 सागर आदि जो जघन्य बंध स्थिति है वह एकेन्द्रिय की अपेक्षा होती है आयुष्य को छोड़कर आठ मुहुर्त, अंतर्मुहुर्त, का जो जघन्य बंध है वह अप्रमत गुणस्थानों की अपेक्षा है।

जहां उत्कृष्ट बंध 10 कोडी सागर होता है वहां जघन्य 1/7 सागर होता है उसी प्रकार 20 सागर का 2/7, 30 सागर का 3/7 होता है।

जघन्य उत्कृष्ट दो समय का बंध वीतराग अवस्था का है।

जघन्य उत्कृष्ट अंतः कोटाकोटी बंध सम्यक् दृष्टि श्रावक एवं साधु की अपेक्षा है।

नाम कर्म में 14 पिंड प्रकृति है और आठ प्रत्येक प्रकृति है अर्थात् आठ एक भेद वाली और 14 अनेक भेदोंवाली प्रकृत्तियां है।

आठ प्रत्येक प्रकृतियां-1. अगुरू लघु 2. उपघात, 3. पराघात 4. उच्छवास 5. आतप 6. उद्योत 7. तीर्थंकर 8. निर्माण।

चौदह पिंड प्रकृतियां-1. गति-चार 2. जाति-पांच 3. शरीर-पांच 4. अंगोपांग-तीन 5. बंधन-पांच

6. संघातन-पांच, 7. सहनन-छः 8. संस्थान-छः 9. वर्ण-पांच 10. गंध-दो 11. रस-पांच 12. स्पर्श-आठ 13. अनुपूर्वी-चार 14. विहायोगति-दो।

दो दसक- 1. त्रस दसक- त्रस, बादर, पर्याप्त प्रत्येक, स्थिर, शुभ, शुभग, सुस्वर, आदेय, यशः कीर्ति।

2. स्थावर दसक- स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, अयशः कीर्ति।

अबाधा काल-प्रत्येक कर्म प्रकृति की बंध स्थिति के अनुपात से अबाधा काल होता है। जिस कर्म प्रकृति की जितने कोडा कोड सागरोपम की बंध स्थिति है उतने ही सौ वर्ष का आबाधा काल जानना चाहिये यथा-

उत्कृष्ट बंध	उत्कृष्ट अबाधा काल
70 कोड़ा कोड़ सागरोपम का	7000 वर्ष
30 कोड़ा कोड़ सागरोपम का	3000 वर्ष
20 कोड़ा कोड़ सागरोपम का	2000 वर्ष
15 कोड़ा कोड़ सागरोपम का	1500 वर्ष
10 कोड़ा कोड़ सागरोपम का	1000 वर्ष
12 कोड़ा कोड़ सागरोपम का	1200 वर्ष
18 कोड़ा कोड़ सागरोपम का	1800 वर्ष
$17\frac{1}{2}$ कोड़ा कोड़ सागरोपम का	1750 वर्ष
14 कोड़ा कोड़ सागरोपम का	1400 वर्ष
16 कोड़ा कोड़ सागरोपम का	1600 वर्ष
$12\frac{1}{2}$ कोड़ा कोड़ सागरोपम का	1250 वर्ष

जघन्य अबाघाकाल अन्तर्मुहुर्त आदि समझ लेना चाहिय। आयुष्य कर्म का अबाधाकाल जघन्य अन्तर्मुहुर्त, मध्यम 6महिना, उत्कृष्ट करोड़ पूर्व का तीसरा भाग अर्थात् 1/3 करोड़ पूर्व।

एकेन्द्रिय आदि का कर्म बंध काल- एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट बंध एक सागरोपम है, बेइन्द्रिय का 25 सागरोपम, तेइन्द्रिय का 50 सागरोपम, चौरेन्द्रिय का 100 सागरोपम, असन्नि पंचेन्द्रिय का 1000 सागरोपम का उत्कृष्ट बंध है। यह 70 कोडा कोडी सागरोपम वाले मिथ्यात्व मोह कर्म की अपेक्षा है। अन्य जिस प्रकृति का जितना उत्कृष्ट बंध हो उसे इसी अनुपात से समझलेना चाहिये। अर्थात् सन्नी पंचेन्द्रिय का 70 कोड़ा कोड़ी सागरोपम बराबर एकेन्द्रिय का एक सागरोपम।

एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक का जघन्य बंध काल अपने उत्कृष्ट बंध काल से पल्योपम का असंख्यातवां भाग कम होता है।

उत्कृष्ट बंध काल विवरण-

सन्नी का बंध	एकेन्द्रिय
30 कोड़ा कोड़ी सागर	3 / 7 सागर
20 कोड़ा कोड़ी सागर	2 / 7 सागर
15 कोड़ा कोड़ी सागर	$1\frac{1}{2}$ /7 सागर
10 कोड़ा कोड़ी सागर	1 / 7 सागर
40 कोड़ा कोड़ी सागर	4 / 7 सागर

विशेष-

एकेन्द्रिय से बेइन्द्रिय-	25 गुणा
तेइन्द्रिय	50 गुणा
चौरेन्द्रिय	100 गुणा
असन्नि पंचेन्द्रिय-	1000 गुणा बंध होता है।

एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट बंध काल विवरण-

प्रकृति	उत्कृष्ट बंध समुच्चय	एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट बंध
ज्ञानावरणीयादि	30 कोडा कोडी सागरोपम	3 / 7 सागरोपम
सातावेदनीय	15 कोडा कोडी सागरोपम	$1\frac{1}{2}$ / 7 सागरोपम
मिथ्यात्व मोह	70 कोडा कोडी सागरोपम	1 सागरोपम
16 कषाय	40 कोडा कोडी सागरोपम	4 / 7 सागरोपम
पुरूष वेद	10 कोडा कोडी सागरोपम	1 / 7 सागरोपम
बेइन्द्रिय जाति	18 कोडा कोडी सागरोपम	9 / 35 सागरोपम
ऋषभनाराच	12 कोडा कोडी सागरोपम	6 / 35 सागरोपम
नीला वर्ण	$17\frac{1}{2}$ कोडा कोडी सागरोपम	7 / 28 सागरोपम

इस प्रकार सभी प्रकृतियों का एकेन्द्रिय का बंध जान लेना। तेरह प्रकृति का बंध एकेन्द्रिय के नहीं है अतः 148-13 = 135 प्रकृति का बंध होता है। आयुष्य कर्म का बंध जघन्य अंतर्मुहुर्त उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व और 22/3 हजार वर्ष साधिक।

तेरह प्रकृति– नरक त्रिक, देव त्रिक, वैक्रिय द्विक, आहारक द्विक और तीर्थकर नाम कर्म, मिश्र मोह, सम्यक्त्व मोह।

विकलेन्द्रिय आदि के बंध-बेइन्द्रिय में भी इन 135 प्रकृतियों का उत्कृष्ट बंध 25 गुणा अर्थात् 25 सागरोपम के उक्त भाग समझ लेना। जघन्य बंध उत्कृष्ट से पल्योपम का असंख्यातवां भाग कम समझना।

इसी प्रकार तेइन्द्रिय के 135 प्रकृतियों का बंध 50 गुणा, चौरेन्द्रिय का सौ गुणा एवं असन्नि पंचेन्द्रिय का हजार गुणा समझ लेना।

आयुष्य कर्म का बंध एकेन्द्रिय के समान ही विकलेन्द्रिय का है। असन्नि पंचेन्द्रिय में आयु बंध जघन्य अंतर्मुहुर्त (मनुष्य तिर्यंचायु) एवं जघन्य अंतर्मुहुर्त साधिक 1000 वर्ष (देव नरकायु) उत्कृष्ट पल्योपम का असंख्यातवां भाग और 1/3 करोड़ पूर्व अधिक।

असन्नि पंचेन्द्रिय पांच प्रकृति का बंध नहीं करता है यथा- तीर्थकर नाम, आहारक द्विक, मिश्र मोह, सम्यक्त्व मोह। शेष 148-5 = 143 प्रकृति का बंध ऊपरोक्त तरीके से जानना।

सन्नी पंचन्द्रिय में तीन गति में सभी प्रकृतियों का जघन्य अंतः कोडा कोडी सागरोपम का बंध होता है उत्कृष्ट समुच्चय के समान बंध होता है।

जिसका समुच्चय में जघन्य बंध अंतर्मुहुर्त आदि है वह मनुष्य में भी उतना ही है। जिनका जघन्य बंध सागरोपम में उनका मनुष्य में अंतः कोडा कोडी सागरोपम है।

आयुबंध सन्नी में– नारकी देवता में- तिर्यंचायु बंध जघन्य अंतर्मुहुर्त + 6 मास, उत्कृष्ट क्रोडपूर्व + 6मास। मनुष्यायु बंध जघन्य अनेक मास (अथवा अनेक वर्ष) + 6मास, उत्कृष्ट क्रोडपूर्व + 6मास। तिर्यंच में- तीन गति का आयुष्य समुच्चय के समान एवं देवायु बंध उत्कृष्ट 18सागरोपम 1/3 करोड पूर्व है। मनुष्य में- चारों गति के आयुष्य समुच्चय के समान है।

जघन्य कर्म बंधक–

आयुकर्म– असंक्षेपद्धा (अन्तिम अंतर्मुहुर्त) प्रविष्ट जीव सर्व जघन्य आयु बंध करता है।

मोह कर्म– आठवें नवे गुणस्थान वाला मनुष्य सर्व जघन्य मोह कर्म का बंध करता है।

शेष 6कर्म– दसवें गुणस्थान वाला सर्व जघन्य बंध करता है।

उत्कृष्ट कर्म बंधक–

सात कर्म– सन्नी पंचेन्द्रिय पर्याप्त, जागृत, साकारोपयुक्त, मिथ्यादृष्टि कृष्ण लेशी उत्कृष्ट संक्लिष्ट परिणामी और कुछ न्यून (मध्यम) संक्लिष्ट परिणामी नारकी देवता देवी, कर्मभूमि तिर्यंच मनुष्य मनुष्याणी उत्कृष्ट सातों कर्मों का बंध करते हैं।

आयुष्य कर्म– 1. कर्म भूमि सन्नी तिर्यंच मनुष्य (पुरूष) पर्याप्त जागृत साकारोपयुक्त मिथ्यादृष्टि परम कृष्णलेशी उत्कृष्ट परिणामी ही उत्कृष्ट 33 सागर नरक का आयुबंध करता है।

2. तथा मनुष्य सम्यग् दृष्टि, शुक्ललेशी अप्रमत्त संयत विशुद्ध परिणामी भी उत्कृष्ट 33 सागर सर्वार्थसिद्ध अणुत्तर विमान का आयुष्य बंध करता है। अर्थात् मनुष्य नरक देव दोनों का उत्कृष्ट आयुबंध करता है।

3. मनुष्यणी पर्याप्त जागृत सम्यग् दृष्टि शुक्ललेशी अप्रमत्त संयत उत्कृष्ट 33 सागर सर्वार्थ सिद्ध अणुत्तर विमान का आयु बंध करती है। नारकी का नहीं करती है।

चौवीसवां ''कर्मबंध'' पद

एक कर्म बांधते हुए जीव अन्य कितने और किन कर्मों का बंध करता है, यह इस पद में वर्णन किया गया है। अतः इस पद के विषय का संक्षिप्त नाम ''बांधतोबंधे'' ऐसा कहा जाता है।

1. सप्तविध बंधक- आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्म बांधने वाले।

2. अष्ट विध बंधक- सभी कर्म बांधने वाले।

3. छः विध बंधक- आयु और मोह कर्म छोड़कर।

4. एक विध बंधक- वेदनीय कर्म बांधने वाले।

5. अबंधक- 14 वें गुणस्थानवर्ती एवं सिद्ध।

नारकी देवता जीव बांधतो बांधे- ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हुए एक नारकी सप्तविध बंधक है या अष्टविध बंधक है। अनेक नारकी जीव की अपेक्षा- 1. सभी सप्तविध बंधक है अथवा 2. बहुत सप्तविध बंधक और एक अष्टविध बंधक अथवा 3. बहुत सप्तविध बंधक और अनेक अष्टविध बंधक। इस तरह तीन भंग है। इसीप्रकार दर्शनावरणीय आदि छः कर्म के ''बांधतोबांधे'' का कथन है।

नारकी देवता में आयुकर्म बांधते हुए नियमा आठ कर्म का बंध होता है।

पांच स्थावर बांधतो बांधे- ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हुए एक जीव जीव सप्तविध बंधक या अष्टविध बंधक है। अनेक की अपेक्षा सप्तविध बंधक भी बहुत और अष्टविध बंधक भी बहुत होते हैं। शेष छः कर्म बांधते हुए भी इसी तरह है। आयु बांधते नियमा अष्टविध बंधक है।

मनुष्य बांधतों बांधे- ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हुए एक मनुष्य सप्तविध बंधक, या अष्टविध बंधक अथवा षडविध बंधक होता है। अनेक मनुष्य की अपेक्षा 9 भंग होते हैं क्योंकि एक शाश्वत और दो अशाश्वत के 9 भंग, सोलवें पद में कहे अनुसार समझना।

ज्ञानावरणीय के समान दर्शनावरणीय, नामकर्म, गौत्र कर्म और अंतराय कर्म का कथन है।

वेदनीय कर्म बांधते हुए एक मनुष्य सप्तविध बंधक, या अष्टविध बंधक, या अष्टविध बंधक या षड़विध बंधक अथवा एक विध होता है। अनेक मनुष्यों की अपेक्षा 9 भंग होते हैं क्योंकि अष्टविध बंधक और षडविध बंधक ये दो अशाश्वत है।

मोहनीय कर्म बांधते हुए एक मनुष्य सप्तविध बंधक या अष्टविध बंधक होता है अनेक मनुष्य की अपेक्षा तीन भंग नारकी में कहे अनुसार है।

आयुष्य कर्म के साथ नियमा आठ कर्म का बंध होता है।

समुच्चय जीव- ज्ञानावरणीय आदि कर्म बांधते तीन भंग होते हैं शेष मनुष्य के समान है। क्योंकि समुच्चय में अष्टविध बंधक एकेन्द्रिय की अपेक्षा शाश्वत होते हैं अतः एक षडविध बंधक ही अशाश्वत होता है। एक अशाश्वत से कुल तीन भंग ही होते हैं।

मोहनीय कर्म बांधते हुए समुच्चय एक जीव सप्तविध बंधक या अष्टविध बंधक होता है। अनेक जीव की अपेक्षा सप्तविध बंधक भी बहुत और अष्टविध बंधक भी बहुत होते हैं (एकेन्द्रिय की अपेक्षा)।

आयुकर्म बांधते नियमा अष्टविध बंधक होते हैं।

शेष दंडक– तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, भवनपति आदि चारों जाति के देव, इन सभी का आठों कर्म बांधतों बांधे नारकी के समान है।

विशेष ज्ञातव्य– षडविध बंधक 10वें गुण स्थान वाला होता है यह गुणस्थान अशाश्वत है। एकविध बंधक में गुणस्थान 11वां, 12वां, 13वां यों तीन गुणस्थान हैं इनमें 13वां गुणस्थान शाश्वत होने से एकविध बंधक शाश्वत मिलते हैं।

अष्टविध बंधक आयुष्य बांधने वाले होते हैं जो कि 19 दंडक में अशाश्वत है अतः तीन भंग होते हैं पांच स्थावर में अष्टविध बंधक से ये भंग नहीं बनते हैं।

दो बोल अशाश्वत होने से– अशाश्वत का एक भंग दोनों अशाश्वत के असंयोगी चार भंग और द्विसंयोगी 4 भंग यों कुल 1+4+4 = 9 भंग होते हैं।

यथा मनुष्य के 9 भंग– 1. सभी सप्तविध बंधक 2. सप्तविध बंधक बहुत, अष्टविध बंधक एक 3. सप्तविध बंधक बहुत, अष्टविध बंधक बहुत 4. सप्तविध बंधक बहुत, षडविध बंधक एक 5. सप्तविध बंधक बहुत, षडविध बंधक बहुत। 6. सप्तविध बंधक बहुत, अष्टविध बंधक एक, षडविध बंधक एक 7. सप्तविध बंधक बहुत, अष्टविध बंधक एक, षडविध बंधक बहुत 8. सप्तविध बंधक बहुत, अष्टविध बंधक बहुत, षडविध बंधक एक 9. सप्तविध बंधक बहुत, अष्टविध बंधक बहुत, षडविध बंधक बहुत।

पच्चीसवां ''कर्मबंध वेद'' पद

1. ज्ञानावरणीय आदि कर्म बांधते हुए जीव कितनी प्रकृति का वेदन करता है। यह इस पद का विषय है जिसे ''बांधतों वेदे'' नाम से कहा जाता है।

2. ज्ञानावरणीय आदि सात कर्म बांधते हुए (24 दंडक के) सभी जीव आठ कर्मों का वेदन करते हैं। इसमें अन्य कोई विकल्प नहीं है।

3. वेदनीय कर्म बांधते हुए समुच्चय जीव और मनुष्य आठ वेदे या सात वेदे अथवा चार वेदे। सात कर्म वेदने वाले अशाश्वत है अतः तीन भंग होते हैं। शेष 23 दंडक में वेदनीय कर्म बांधते हुए आठ ही कर्म वेदते हैं।

विशेष– दसवें गुणस्थान तक आठों ही कर्मों का वेदन नियमतः होता है। अतः 23 दंडक में तो कोई विकल्प ही नहीं है। सात कर्मों का वेदन 11 वें, 12 वें, गुणस्थान में होता है। ये गुणस्थान मनुष्य में ही होते है। दोनों गुणस्थान अशाश्वत होने से सप्तविध वेदक अशाश्वत होते हैं, अतः तीन भंग बनते हैं।

चार विध वेदक केवली होते हैं जिनमें 13 वां, 14 वां गुणस्थान है। तेरहवां गुणस्थान शाश्वत होने से चारविध बंधन शाश्वत होते हैं।

छव्वीसवां ''कर्मवेद बंध'' पद

ज्ञानावरणीय आदि कर्म वेदते हुए जीव कितनी प्रकृति का बंध करता है यह इस पद का विषय है। जिसे ''वेदतो बांधे'' नाम से कहा जाता है।

नारकी आदि 18दंडक– आठों ही कर्म वेदते हुए नारकी आदि एक जीव सप्तविध बंधक होताहै या अष्टविध बंधक। अनेक जीव की अपेक्षा अष्टविध बंधक अशाश्वत हाने से तीन-तीन भंग होते हैं।

पांच स्थावर– आठों की कर्म वेदते हुए एक जीव सप्तविध बंधक या अष्टविध बंधक होता है। अनेक जीव की अपेक्षा बहुत सप्तविध बंधक और बहुत अष्टविध बंधक होते हैं।

मनुष्य– ज्ञानावरणीय कर्म वेदते हुए एक मनुष्य सप्तविध बंधक या अष्टविध बंधक या षडविध बंधक अथवा एक विध बंधक होता है। अनेक मनुष्यों की अपेक्षा सप्त विध बंधक शाश्वत है और शेष तीन बंधक अशाश्वत है। तीन अशाश्वत के 27 भंग होते हैं जो सोलहवें पद से समझ लेना। इस प्रकार दर्शनावरणीय और अंतरायकर्म के वेदतो बांधे का वर्णन है।

वेदनीय कर्म वेदते हुए एक मनुष्य सप्तविध बंधक या अष्ट विधबंधक या षडविध बंधक या एकविध बंधक अथवा अबंधक होता है। अनेक मनुष्य की अपेक्षा तीन बंधक अशाश्वत है। सप्तविध बंधक और एकविध बंधक शाश्वत है। तीन अशाश्वत होने से 27 भंग होते हैं जो सोलहवें पद से समझ लेना। इसी तरह आयु नाम गौत्र कर्म का कथन है।

मोहनीय कर्म वेदते हुए एक मनुष्य सप्तविध बंधक या अष्टविध बंधक अथवा षडविध बंधक होता है। अनेक मनुष्य की अपेक्षा 9 भंग होते हैं क्योंकि अष्टविध बंधक और षडविध बंधक दो बोल आशाश्वत है।

समुच्चय जीव– मनुष्य में जहां 27 भंग कहे वहां 9 भंग कहना अष्टविध बंधक शाश्वत होते हैं। 9 भंग कहे वहां तीन भंग होते हैं।

विशेष ज्ञातव्य– मोहनीय कर्म का वेदन 10वें गुणस्थान तक है। ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय और अंतरायकर्म का वेदन 12वें गुणस्थान तक है और वेदनीय आयु नाम गौत्र कर्म का वेदन 14वें गुणस्थान तक है।

दसवें गुणस्थान की अपेक्षा षडविध बंध होता है, 11वें, 12वें गुणस्थान की अपेक्षा एक विध बंध होता है। 13वें गुणस्थान की अपेक्षा एक विध बंध और चौदहवें गुणस्थान की अपेक्षा अबंध होता है।

सताईसवां ''कर्म वेद वेदक'' पद

ज्ञानावरणीय आदि कर्म वेदन हुए जीव अन्य कितने कर्मों का वेदन करता है। यह इस पद में बताया गया है अतः इसके विषय को ''वेदतो वेदे'' इस संज्ञा से कहा जाता है।

समुच्चय जीव एवं मनुष्य– ज्ञानावरणीय कर्म वेदते हुए समुच्चय जीव और मनुष्य आठ वेदे या सात वेदे। जिसमें सात वेदक अशाश्वत होने से बहुवचन की अपेक्षा तीन भंग होते हैं। दर्शनावरणीय और अंतराय कर्म भी इसी प्रकार है।

वेदनीय कर्म वेदते हुए समुच्चय जीव और मनुष्य आठ वेदे, सात वेदे या चार वेदे। बहुवचन की अपेक्षा एक सात वेदक अशाश्वत होने से भंग होते हैं। आयु, नाम और गौत्र कर्म भी इसी प्रकार है।

शेष दंडक– शेष 23 दंडक के जीव आठों कर्म वेदते हुए नियमा आठ ही कर्म वेदते हैं क्योंकि 10वें गुणस्थान तक के सभी जीवों के आठ कर्मों का उदय होता है। 11वें, 12वें गुणस्थान में मोह कर्म का उदय नहीं रहता है। इसके सिवाय सात कर्मों का उदय यहां रहता है फिर 13वें, 14वें गुणस्थान में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय एवं अंतराय का भी उदय नहीं रहता है, केवल चार अघाति कर्म आयु, नाम, गौत्र, अंतराय का उदय वहां अन्तिम समय तक रहता है।

कर्म	बंध में गुण स्थान	उदय में गुण स्थान
ज्ञानावरणीय, दर्शना. अन्तराय	10	12
मोहनीय	9	10
वेदनीय	13	14
आयुष्य	1 से 7 (तीसरा छोड़कर)	14
नाम, गोत्र	10	14

एक कर्म बंध में कर्म बंध (एक जीव)

कर्म	बंधक	सात के बंधक	आठ के बंधक	6 के बंधक	एक कर्म बंधक
1 ज्ञाना, दर्शना, अन्त., नाम, गोत्र	समुच्चय	✔	✔	✔	✘
	मनुष्य	✔	✔	✔	✘
	23 दंडक जीव	✔	✔	✘	✘
2 मोहनीय कर्म	समुच्चय	✔	✔	✘	✘
	24 दंडक जीव	✔	✔	✘	✘
3 वेदनीय कर्म	समुच्चय जीव	✔	✔	✔	✔
	मनुष्य	✔	✔	✔	✔
	23 दंडक जीव	✔	✔	✘	✘
4 आयुष्य कर्म	सर्व जीव	✘	✔	✘	✘

एक कर्म बंध में अन्य कर्म बंध (एक जीव) 453 भंग बांधतो बांधे-

कर्म	बंधक जीव (अनेक)	आठ के बंधक	सात बंधक	6 बंधक	एक बंधक	भंग संख्या×कर्म ×जीव=कुल भंग
1 ज्ञाना.,दर्शना.,अंत., नाम गोत्र ये 5 कर्म	समुच्चय जीव अनेक	✔	✔	विकल्प	✘	3×5×1=15
	मनुष्यों	विकल्प	✔	विकल्प	✘	9×5×1=45
	पांच स्थावरों	✔	✔	✘	✘	अभंग
	18 दंडक जीवों (ना.दे.तिपं.विकले.)	विकल्प	✔	✘	✘	3×5×18=270
2 मोहनीय कर्म	समुच्चय जीवों	✔	✔	✘	✘	अभंग
	मनुष्यों	विकल्प	✔	✘	✘	3×1×1=3
	पांच स्थावरों	✔	✔	✘	✘	अभंग
	18 दंडक के जीवों	विकल्प	✔	✘	✘	3×1×18=54
3 वेदनीय कर्म	समुच्चय जीवों	✔	✔	विकल्प	✔	3×1×1=3
	मनुष्यों	विकल्प	✔	विकल्प	✔	9×1×1=9
	पांच स्थावरों	✔	✔	✘	✘	अभंग
	18 दंडक जीवों	विकल्प	✔	✘	✘	3×1×18=54
4 आयुष्य कर्म	सर्व जीवों	✔	✘	✘	✘	अभंग। **कुल भंग 453**

एक कर्म बंध में कर्म वेदन (एक जीव)

कर्म	बंधक जीव	आठ कर्म वेदक	सात कर्म वेदक	चार कर्म वेदक
7 कर्म-ज्ञाना.,दर्शना.,मोह.,अंत,आयु,नाम गोत्र	सर्व जीव	✔	✘	✘
1 कर्म-वेदनीय कर्म	समुच्चय/मनुष्य	✔	✔	✔
	23 दंडक के जीव	✔	✘	✘

कर्म बंध में कर्म वेदन (अनेक जीव)

कर्म	बंधक	आठ के वेदक	सात कर्मवेदक	चार कर्म वेदक	भंग संख्या कर्म×जीव=कुल भंग
सात कर्म	जीव, मनुष्य	✔	✘	✘	अभंग (कोई विकल्प नहीं एक ही भंग है)
वेदनीय	जीव, मनुष्य	✔	विकल्प	✔	3×1×2=6 भंग
आठ कर्म	23 दंडक	✔	✘	✘	अभंग, कुल 6 भंग

अब इसे चार्ट से भी समझें- एक जीव

	कर्म	वेदक जीव	आठ के बंधक	सात के बंधक	छ के बंधक	एक के बंधक	अबंधक
3 कर्म	ज्ञाना.दर्शना.अंतराय	समु.जीव और मनुष्य	✔	✔	✔	✔	✘
		23 दंडक के जीव	✔	✔	✘	✘	✘
1 कर्म	मोहनीय कर्म	समुच्चय/मनुष्य	✔	✔	✔	✘	✘
		23 दंडक के जीव	✔	✔	✘	✘	✘
4 कर्म	वेदनीय कर्म आयुष्य	समुच्चय/मनुष्य	✔	✔	✔	✔	✔
	और नाम गौत्र	23 दंडक के जीव	✔	✔	✘	✘	✘

एक कर्म वेदन में कर्म बंधन (अनेक जीव) वेदता बांधे- (696 भंग)

कर्म	वेदक जीव (अनेक)	आठ के बंध	सात का बंध	छ का बंधक	एक के बंधक	अबंधक	भंग×कर्म×जीव	कुल भंग
ज्ञाना.दर्शना.अंत.	समुच्चय जीवों	✔	✔	विकल्प	विकल्प	✘	9×3×1	27
	मनुष्यों	विकल्प	✔	विकल्प	विकल्प	✘	27×3×1	81
	पांच स्थावरों	✔	✔	✘	✘	✘	अभंग	-
	18 दंडक के जीवों	विकल्प	✔	✘	✘	✘	3×3×18	162
मोहनीय कर्म	समुच्चय जीवो	✔	✔	विकल्प	✘	✘	3×1×1	3
	मनुष्यों	विकल्प	✔	विकल्प	✘	✘	9×1×1	9
	पांच स्थावरों	✔	✔	✘	✘	✘	अभंग	-
	18 दंडक के जीवों	विकल्प	✔	✘	✘	✘	3×1×18	54
वेद.आयु नाम-गौत्र	समुच्चय जीवो	✔	✔	विकल्प	✔	विकल्प	9×4×1	36
	मनुष्यों	विकल्प	✔	विकल्प	✔	विकल्प	27×4×1	108
	पांच स्थावरों	✔	✔	✘	✘	✘	अभंग	-
	18 दंडक के जीवों	विकल्प	✔	✘	✘	✘	3×4×18	216
							कुल भंग	**696**

एक जीव की अपेक्षा एक कर्म वेदते अन्य कर्म वेदन-

कर्म	वेदक जीव	आठ के वेदक	सात के वेदक	चार के वेदक
ज्ञाना. दर्शना. अन्तराय	समुच्चय जीव/ मनुष्य	✔	✔	✘
	23 दंडक के जीव	✔	✘	✘
मोहनीय कर्म	24 दंडक के जीव	✔	✘	✘
वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र	समुच्चय जीव/ मनुष्य	✔	✔	✔
	23 दंडक के जीव	✔	✘	✘

कर्म वेदन में कर्म वेदन (अनेक जीव की अपेक्षा) भंग 42

कर्म	वेदक जीव	आठ के वेदक	सात के वेदक	चार के वेदक	भंग×कर्म×जीव	कुल भंग
ज्ञाना.दर्शना.अंत	जीव/मनुष्य	✔	विकल्प	✘	3×3×2	18
	23 दंडक	✔	✘	✘	अभंग	-
मोहनीय	सभी जीव	✔	✘	✘	अभंग	-
वेदनीय,आयु,नाम गौत्र	जीव/मनुष्य	✔	विकल्प	✔	3×4×2	24
	23 दंडक	✔	✘	✘	अभंग	
					भंग कुल	**42**

अट्ठाईसवां ''आहार'' पद

प्रथम उद्देशक- जीवाभिगम सूत्र की प्रथम प्रतिपत्ति में 24 दंडक के जीवों का आहार सम्बन्धी कुछ वर्णन है वहां आहार के पुद्गलों के प्रदेश, अवगाहना, स्थिति, वर्णादि, छः दिशाओं सम्बन्धी एवं आत्मावगाढ़ आदि 288प्रकार का आहार बताया गया है वह जीवाभिगम में दिया गया है। यहां पर आहार सम्बन्धी अन्य अनेक विषयों का वर्णन है।

1. चौवीस ही दंडक के जीव आहारक अणाहारक दोनों तरह के होते हैं।
2. नारकी देवता अचित्त आहारी होते हैं। मनुष्य तिर्यंच सचित्त अचित्त तीनों तरह का आहार करते हैं।
3. चौबीस दंडक में आभोग अनाभोग दोनों तरह का आहार है। अणाभोग आहार स्वतः होने से सभी जीवों के पूरे भव में निरन्तर चलता है।
4. आभोग आहार इच्छा होने पर होता है अतः उसकी का मर्यादा है वह इस प्रकार है-यथा-

नारकी मे– असंख्य समय के अंतर्मुहुर्त से आहारेच्छा होती है।

पांच स्थावर– आभोग आहार भी निरन्तर चालू रहता है।

तीन विकलेन्द्रिय- नरक के समान असंख्य समय के अंतर्मुहुर्त्त से आहारेच्छा उत्पन्न होती है किन्तु विमात्रा से उत्पन्न होती है अर्थात् अंतर्मुहुर्त्त भी छोटा बड़ा निश्चित नहीं है एवं कितनी बार होती है कितनी देर रहती है इत्यादि कोई निश्चित मर्यादा नहीं होती है।

सन्नी तिर्यंच– जघन्य अंतर्मुहुर्त्त, उत्कृष्ट दो दिन (बेले) के अन्तर से आहारेच्छा होती है।

सन्नी मनुष्य– जघन्य अंतर्मुहुर्त्त, उत्कृष्ट तीन दिन (तेले) के अन्तर से।

असुर कुमार– जघन्य एक दिन से, उत्कृष्ट साधिक 1000 वर्ष से।

नवनिकाय, व्यंतर– जघन्य एक दिन से उत्कृष्ट अनेक दिनों से।

ज्योतिषी– जघन्य अनेक दिन उत्कृष्ट भी अनेक दिनों से।

वैमानिक– जघन्य अनेक दिन से उत्कृष्ट हजारों वर्षों से अर्थात् जितने सागरोपम की स्थिति है उतने हजार वर्षों से अहारेच्छा होती है। यथा-सर्वार्थ सिद्ध देवों को 33 हजार वर्ष से आहरेच्छा होती है। जिस तरह सातवें श्वासोच्छवास पद में पक्ष कहे हैं उसी तरह यहां उतने हजार वर्ष समझना चाहिये।

5. नैरयिक प्रायः करके अशुभ वर्णादि का अर्थात् काला, नीला, दुर्गन्ध वाले, तिक्त, कटुक, खुरदरा, भारी, शीत, रूक्ष, पुद्गलों को आहार रूप में ग्रहण कर विपरिणामित करके सर्वात्मना आहार करते हैं।

देवता प्रायः करके शुभ वर्णादि का अर्थात् पीला, सफेद, सुगंधमय, खट्टा, मीठा, मृदु, हल्का, स्निग्ध, उष्ण पुद्गलों को ग्रहण कर इच्छित मनोज्ञ रूप में परिणमन कर आहार करते हैं, जो कि उनके सुखरूप होता है।

औदारिक दंडकों में सामान्य रूप से अशुभ शुभ सभी वर्णादि वाले पुद्गलों का आहार होता है।

6. नैरियकों का आहार, श्वासोच्छ्वास बारंबार एवं कभी-कभी यों दोनों तरह से होता है अर्थात् सांतर निरन्तर दोनों तरह का होता है। इसी तरह औदारिक के सभी दंडक में समझना। देवताओं में बहुत समय से कभी-कभी आहार होता है।

7. जो आहार पुद्गल लिये जाते हैं उसका संख्यातवां भाग (असंख्यातवा) आहार-रस रूप में परिणत कर ग्रहण करते हैं और उन पुद्गलों का आस्वाद तो द्रव्य एवं गुणों की अपेक्षा अनंतवें भाग ही होता है। चौबीस दंडक में इसी प्रकार है।

8. नैरयिक आहार हेतु जितने पुद्गल लेते हैं वे अपरिशेष ग्रहण करते हैं अर्थात् गिरना बिखेरना बचाना अथवा तो खल भाग रूप से छोड़ना आदि नहीं होता है। उसी प्रकार सभी देव एवं एकेन्द्रिय के अपरिशेष आहार होता है क्योंकि कवलाहार नहीं है।

विकलेन्द्रिय एवं तिर्य्च मनुष्य के रोमाहार से तो अपरिशेष आहार ही होता है किन्तु कवलाहार में ग्रहीत आहार में से संख्यातवें भाग का आहार रस रूप में परिणत होता है एवं अनेक हजारों भाग यों ही विध्वंस को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् उनका शरीर में कोई उपयोग नहीं होता। उनमें कितनों का आस्वादन और स्पर्श भी नहीं होता अर्थात् अनंता अनंत प्रदेशी स्थूल पुद्गलों में अनेक अपेक्षा आस्वाद स्पर्श नहीं होता। यथा-चक्रवर्ती की दासी पूर्ण शक्ति से निरन्तर खर पृथ्वीकाय को पीसे तो भी कई जीवों को शस्त्र का स्पर्श भी नहीं होता है। ऐसा ही कारण यहां कवलाहार के पुद्गलों के लिये समझना चाहिये।

नोट– यहां परिशेष कवलाहार के प्रसंग में परिशेष पुद्गलों के लिये संख्याता (अनेक) हजारों भाग कहा है तो जो ग्रहण किया आहार है वह भी संख्यातवां भाग ही संभव है क्योंकि असंख्यातवां भाग प्रक्षेप आहार का ग्रहण करना कहा जाय तो परिशेष अनेक असंख्यातवें भाग होगा जबकि अनेक असंख्याते भाग परिशेष नहीं कह कर अनेक हजारों भाग परिशेष रखना बताया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रक्षेप आहार से ग्रहित पुद्गलों का संख्यातवां भाग आहार होता है चाहे वह हजारवां भाग भी हो किन्तु असंख्यातवां भाग संभव नहीं है एवं बुद्धि गम्य भी नहीं है। अतः यहां पर ''अ'' लिपि दोष या भ्रान्ति से प्रक्षिप्त समझना चाहिये।

जीव प्रकार	जघन्य	उत्कृष्ट
नारकी	असंख्यात समय का अंतर्मुहुर्त	असंख्यात समय का अन्तर्मुहुर्त
भवनपति-असुर कुमार	एक दिवस	साधिक एक हजार वर्ष
नवनिकाय-व्यंतर देव	एक दिवस	प्रत्येक दिवस (2 से 9)
ज्योतिषी	प्रत्येक दिवस	प्रत्येक दिवस (2 से 9)
पहला देव लोक	प्रत्येक दिवस	दो हजार वर्ष
दूसरा देवलोक	साधिक प्रत्येक दिवस	साधिक दो हजार वर्ष
तीसरे से सर्वार्थ सिद्ध तक	जितने सागर की आयु उतने हजार वर्ष से दो से 33 हजार वर्ष	जितने सागर आयु उतने हजार वर्ष से आहरेच्छा 7 से 33 हजार वर्ष
पांच स्थावर	निरंतर	निरंतर
तीन विकलेन्द्रिय	विमात्रा से	विमात्रा से
तिर्यंच पंचेन्द्रिय	अंतर्मुहुर्त	दो दिवस (युगलिये की अपेक्षा)
मनुष्य	अन्तर्मुहुर्त	तीन दिवस (युगलिये की अपेक्षा)

सचित्त आहारादि आहार संबंधी 11 द्वार-

द्वार	नारकी	देवता	एकेन्द्रिय	विकले. ति.पं. मनुष्य
1 सचित्ताहारादि	अचित्ताहारी	अचित्ताहारी	सचित अचित मिश्र	सचित अचित मिश्र
2 आहारार्थी	हां	हां	हां	हां
3 अनाभोग/आभोग	निरंतर/ अंतर्मुहुर्त	निरंतर/जघन्य एकांतर उ. 33 हजार वर्ष	निरंतर/निरंतर	निरंतर/विकले. अंमु. तिपं. दो दिन, मनुष्य-तीन दिन
4 कैसा आहार	अशुभ	शुभ	शुभाशुभ	शुभाशुभ
5 सर्वतः / दिशा	सर्वआत्मना/6दिशा	सर्वात्मना/6दिशा	सर्वात्मना/3,4,5,6 दिशा	सर्वात्मना/6 दिशा
6 कितना भाग आहार/ आस्वादन	असं.भाग/अनंतवा भाग	असं. भाग/अनंतवा भाग	असं. भाग/अनंतवा भाग	असं. भाग/अनंतवा भाग
7 सर्वतः परिणमन	अपरिशेष परिणमन	अपरिशेष परिणमन	अपरिशेष परिणमन	लोमा. सर्वतः/ प्रक्षेपा. सं. भाग
8 परिणाम	पांच इन्द्रिय पणे अशुभ पणे	पांच इन्द्रियपणे अशुभपणे	एकेन्द्रिय शुभाशुभ पणे	2,3,4 पांच यथायोग्य इंद्रिय पणे. शुभाशुभपणे
9 पूर्व पर्यायापेक्षा एकेन्द्रियादि वर्त्तमान पर्याय प्रज्ञापना	एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रि के पुद्. पंचेन्द्रिय के पुद्गलों	एके. से पंचे. के पुद्. पं. पंचेन्द्रिय के पुद्गलों	एके. से पंचे. के पुद्. एकेन्द्रिय के पुद्गलों	एके. से पंचे. के पुद् यथायोग्य बे,तीन,चौरे. पुद्
10 लोमाहारिआदि	लोमाहार	लोमहार	लोमाहार	लोमाहार, प्रक्षेपाहार
11 ओजाहारिआदि	ओजाहारी	ओजाहारी, मनोभक्षी	ओजाहारी	ओजाहारी

व्यवहार से भी कोई समझना चाहे तो प्रक्षेप आहार का संख्यातवां भाग शरीर में आहार रूप में काम आना उपयुक्त लगता है। असंख्यातवें भाग ही यदि शरीर के काम आवे तो जो औदारिक शरीर की वृद्धि होती हुई प्रत्यक्ष दिखाई देती है वह होना भी संभव नहीं हो सकता क्योंकि असंख्यातवें भाग का आहार एक महिने में 300 बार भी शरीर में जावे तो वह शरीर की वृद्धि एक ग्राम जितनी भी नहीं कर सकता है। अतः असंख्यातवें भाग के पाठ को यहां अशुद्ध समझना चाहिये एवं ''संख्यावतें भाग'' ऐसा पाठ सुधार कर अर्थ परमार्थ समझना चाहिये।

इसी आशय अनुप्रेक्षण से प्रस्तुत प्रकरण में संख्यातवें भाग ही कहा है।

9. इन परिशेष हजारों भाग वाले पुद्गलों में घ्राण के अविषय भूत अल्प होते उससे रसना के अविषय भूत होने वाले अंनत गुण और उससे स्पर्श के अविषय भूत होने वाले अनंत गुण हैं। बेइन्द्रिय में घ्राण का विषय नहीं कहना तेइन्द्रिय चौरेन्द्रिय पंचेन्द्रिय में समझना।

10. ये आहार रूप ग्रहण किये पुद्गल शरीर पने अर्थात् अंग उपांग इन्द्रियों के रूप में परिणत हो जाते हैं। नारकी में अशुभ और दुःख रूप में, देवताओं में शुभ और सुख रूप में और मनुष्य तिर्यञ्च में सुख दुख विभिन्न रूपों में विमात्रा में परिणत हो जाते हैं।

11. सभी जीव पूर्व भाव की अपेक्षा एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय के शरीर के त्यक्त पुद्गलों का आहार करते हैं और वर्तमान भाव की अपेक्षा स्वयं का परिणामित आहार करने से एकेन्द्रिय एकेन्द्रिय के शरीर का ही आहार करते हैं। यावत् पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय के शरीर का ही आहार करते हैं।

12. नैरायिकों के और एकेन्द्रिय के रोमाहार एवं ओजाहार होता हैं। देवों के रोमाहार ओजाहार एवं मणभक्खी आहार होता हैं। विकलेन्द्रिय आदि शेष सभी के रोमाहार ओजाहार और प्रक्षेपाहार होता हैं।

द्वितीय उद्देशक– चौबीस दंडक के जीव तो आहारक अणाहारक दोनों प्रकार के होते है, फिर भी दृष्टि, कषाय, संयत, भावी, वेद आदि के अहारक अनाहारक के बोध हेतु यहां 13 द्वारों से आहारक अनाहारक की विचारणा की गई हैं। साथ ही 24 दंडक पर भी एक वचन बहुवचन से वर्णन किया गया हैं।

1. जीव– समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय जीव आहारक भी बहुत होते है एवं अणाहारक भी बहुत होते हैं। शेष 23 दंडक में तीन भंग होते है अणाहारक अशाश्वत होने से। सिद्ध सभी अणाहारक ही होते है। (एक वचन में सर्वत्र स्वतः समझ लेना कि आहारक है या अनाहारक)।

2. भव्य– भवी अभवी दोनों में समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय प्रथम द्वार के समान एक भंग और 23 दंडक में तीन भंग आहारक अनाहारक से होते है। नो भवी नो अभवी नियमा अणाहारक होते हैं।

3. सन्नी– सन्नी जीव और 16दंडक (एकेन्द्रिय विकलेनिद्रय के आठ दंडक छोड़कर) आहारक अणाहारक से तीन भंग होते हैं।

असन्नी जीव और एकेन्द्रिय में एक भंग। विकलेनिद्रय पंचेन्द्रिय में तीन भंग। नारकी भवनपति व्यंतर एवं मनुष्य में 6भंग होते हैं। अनेक असन्नि की अपेक्षा होने से वे अनेक असन्नि या तो अनेक आहारक होते हैं या अनेक अनाहारक होते हैं।

अतः असंयोगी में बहुवचन के ही दो भंग होते है एक वचन का भंग नहीं होता है क्योकि असन्नि का बोल ही नारकी देवता में अशाश्वत हैं। इसी प्रकार अन्य भी अशाश्वत बोल में बहुवचन की पृच्छा में एक वचन के असंयोगी भंग नहीं होते हैं।

छः भंग– 1. आहारक अनेक, 2. अणाहारक अनेक 3. आहारक एक अणाहारक एक, 4. आहारक एक अणाहारक अनेक, 5. आहारक अनेक अणाहारक एक 6. दोनों ही अनेक।

नो सन्नी नो असन्नि मनुष्य में तीन भंग। सिद्ध में सभी अणाहारक।

4. लेश्या– जिस लेश्या में एकेन्द्रिय के सिवाय जितने दंडक होते हैं उनमें बहुवचन की अपेक्षा तीन भंग होते हैं।

जीव और एकेन्द्रिय में सलेशी एवं कृष्णादि तीन लेश्या में एक भंग होता है। तेजो लेश्या में एकेन्द्रिय (पृथ्वी पानी वनस्पति) में छः भंग (असन्निवत्)। तेजो आदि तीन लेश्या में समुच्चय जीव में तीन भंग होते हैं।

अलेशी सभी अनाहारक ही होते हैं।

5. दृष्टि– सम्यग् दृष्टि जीव और 16दंडक में तीन भंग। विकलेन्द्रिय में छः भंग।

मिथ्यादृष्टि जीव एकेन्द्रिय में एक भंग। शेष सभी में तीन भंग।

मिश्र दृष्टि के 16दंडक सभी नियमा आहारक ही होते हैं।

6. संयत– असंयत में जीव और एकेन्द्रिय में एक भंग। 19 दंडक में तीन भंग। संयतासंयत जीव मनुष्य तिर्यंच पंचेन्द्रिय आहारक ही होते हैं। संयत जीव मनुष्य में तीन भंग। नो संयत नो असंयत नो संयता संयत-जीव और सिद्ध भगवान अनाहारक ही होते हैं।

7. कषाय– समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय में सकषायी एवं क्रोधी मानी मायी लोभी सब में एक भंग। शेष सभी दंडक में तीन तीन भंग है। परन्तु नारकी में मान माया लोभ में छः भंग होते हैं औ देवता में क्रोध मान माया में छः भंग होते हें अर्थात् देवता नारकी में तीन तीन कषाय अशाश्वत है।

अकषायी जीव में एक भंग, मनुष्य में तीन भंग। सिद्ध अनाहारक ही होते हैं।

8. ज्ञान– सज्ञानी मति, श्रुत, अवधिज्ञानी में जितने दंडक है उसमें तीन भंग होते हैं किन्तु विकलेन्द्रिय में छः भंग होते हैं। सनाणी जीव में एक भग होता है (केवल ज्ञान की अपेक्षा आहारक अणाहारक दोनों बहुत होते है।)।

मनः पर्यव ज्ञानी नियमा आहारक होते हैं। केवल ज्ञानी मनुष्य में तीन भंग। जीव में एक भंग। सिद्ध अणाहारक ही होते हैं।

अज्ञान– अज्ञानी, मति, श्रुत अज्ञानी जीव एकेन्द्रिय में एक भंग। शेष सभी में तीन भंग। विभंग ज्ञानी में मनुष्य तिर्यंच आहारक ही होते हैं। शेष सभी (14 दंडक) में तीन भंग।

9. योग– सयोगी, काययोगी में जीव एकेन्द्रिय में एक भंग, शेष सभी में तीन भंग, वचन योगी मन योगी आहारक ही होते हैं। अयोगी अणाहारक ही होते हैं।

10. उपयोग– दोनों उपयोग में जीव और एकेन्द्रिय के एक भंग। शेष में तीन भंग होते हैं। सिद्ध अणाहारक ही होते हैं।

11. वेद– सवेदी और नपुंसक जीव एकेन्द्रिय में एक भंग शेष सभी में तीन भंग।

स्त्रीवेद पुरूष वेद सभी दंडक में तीन भंग। अवेदी जीव में एक भंग। मनुष्य में तीन भंग सिद्ध अणाहारक ही होते हैं।

12. शरीर– सशरीरी एवं तैजस कार्मण शरीरी जीव और एकेन्द्रिय में एक भंग, शेष सभी दंडक में तीन भंग।

औदारिक, वैक्रिय, आहारक तीनों शरीर आहारक ही होते हैं किन्तु औदारिक शरीर मनुष्य में आहारक, अणाहरक दोनों होते हैं, उसमें तीन भंग होते हैं।

13. पर्याप्ति– छहों पर्याप्ति के पर्याप्त सभी आहारक ही होते हैं मनुष्य में आहारक-अनाहारक दोनों होते हैं उसमें तीन भंग होते हैं। जिस दंडक में जितनी पर्याप्ति हो वही समझना।

आहार पर्याप्ति के अपर्याप्त सभी दंडक में अणाहारक होते हैं।

शेष पांच पर्याप्ति के अपर्याप्त आहारक अणाहारक दोनों होते हैं उसमें एकेन्द्रिय में एक भंग होते हैं। जिस दंडक में जितनी पर्याप्ति हो वही समझना।

आहार पर्याप्ति के अपर्याप्त सभी दंडक में अणाहारक होते हैं।

शेष पांच पर्याप्ति के अपर्याप्त आहारक अणाहारक दोनों होते हैं उसमें एकेन्द्रिय में एक भंग। नारकी देवता मनुष्य में 6भंग। शेष में तीन भंग होते हैं। समुच्चय जीव के भाषा मनः पर्याप्ति के अपर्याप्त में तीन भंग होते हैं, तीन पर्याप्ति के अपर्याप्त में एक भंग होता है और आहार पर्याप्ति का अपर्याप्त अणाहारक ही होता है।

विशेष ज्ञातव्य– 1. एक जीव में कोई भंग नहीं बनते हैं और उसमें आहारक या अनाहारक या दोनों जो भी होता है वह कहा जाता है। अतः यहां उसे सभी द्वार में बार बार नहीं कहा गया है स्वतः समझने का संकेत किया है।

2. बहुत जीव की अपेक्षा एकेन्द्रिय जिस किसी बोल में होता है या समुच्चय जीव के साथ होता है तो एक भंग बनता है। वह जिस बोल में या जीव के साथ नहीं होता है तो प्रायः तीन भंग बनते हैं। क्वचित कहीं नहीं बनते वह उपरोक्त वर्णन में ध्यान से देख लें।

3. तेरह द्वारों का जो भी भेद स्वयं आशाश्वत होता है वहां 6भंग बनते हैं। उदाहरण उपरोक्त वर्णन में देखें।

4. जो बोल केवल आहारक ही होता है या केवल अणाहारक ही होता है उसके एक वचन या बहुवचन में कहीं भी भंग नहीं बनते हैं।

5. तेरह द्वार का कोई भी भेद कितने दंडक में होता है यह जीवाभिगम सूत्र के प्रथम प्रतिपति से जान कर याद रखना चाहिये।

अनेक जीवों की अपेक्षा 13 द्वारों में आहारक अनाहारक- (समुच्चय एक जीव पांच स्थावर अभंग होते हैं।)

	जीव	आहारक	अनाहारक	भंग
1	**जीव द्वार**- समुच्चय जीव/पांच स्थावर जीवों	✔	✔	अभंग
	19 दंडक के जीव	✔	विकल्प	तीन भंग
2	**भवी द्वार**- भवसिद्धिक समुच्चय जीवों/पांच स्थावरों/दोनों के अभवी	✔	✔	अभंग
	भवसिद्धिक 19 दंडक के जीवों/अभवी	✔	विकल्प	तीन भंग
3	**संज्ञी द्वार** संज्ञी समुच्चय और 16 दंडक जीवों/तीन विकलेन्द्रिय असं. ति.पं.	✔	विकल्प	तीन भंग
	असंज्ञी समुच्चय और पांच स्थावरों/ नो संज्ञी नो असंज्ञी समु.	✔	✔	अभंग
	असंज्ञी नारकी, भवनपति, व्यंतर, समुच्छिम मनुष्यों	विकल्प	विकल्प	6 भंग
	नो संज्ञी नो असंज्ञी मनुष्यों	✔	विकल्प	तीन भंग
4	**लेश्या द्वार**- सलेशी समुच्चय, पांच स्थावरों, कृष्ण नील कापोत पांच स्थावर	✔	✔	अभंग
	सलेशी 19 दंडक, यथायोग्य लेशी 19 दंडक	✔	विकल्प	तीन भंग
	तेजोलेशी पृथ्वी पानी वनस्पति	विकल्प	विकल्प	6 भंग
5	**दृष्टि द्वार**-समदृष्टि समुच्चय, मिथ्यादृष्टि समुच्चय और पांच स्थावर	✔	✔	अभंग
	समदृष्टि नारक, देव, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य/मिथ्यादृष्टि 19 दंडक के जीव	✔	विकल्प	तीन भंग
	समदृष्टि विकलेन्द्रिय	विकल्प	विकल्प	6 भंग
	मिश्रदृष्टि समुच्चय और 16 (पंचेन्द्रिय) के दंडक	✔	✘	-
6	**संयत द्वार**- संयत समुच्चय और मनुष्यों/19 दंडक के असंयत जीवों	✔	विकल्प	तीन भंग
	संयतासंयत समुच्चय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्यों	✔	✘	-
	असंयत समुच्चय, पांच स्थावर	✔	✔	अभंग
7	**कषाय द्वार**- सकषाय समु., पांच स्थावर/क्रोधादि 4 कषाय ये दोनों/अकषायी समु.	✔	✔	अभंग
	सकषाय 19 दंडक/क्रोधादि 4 कषाय, विकलेन्द्रिय, ति.पं. मनुष्य/क्रोध नारकी	✔	विकल्प	तीन भंग
	लोभ युक्त देव/ अकषायी मनुष्य	✔	विकल्प	तीन भंग
	मान, माया, लोभ नारकी/ क्रोध मान माया के देवों	विकल्प	विकल्प	6 भंग
8	**ज्ञान द्वार**- समुच्चय ज्ञानी/केवल ज्ञानी समुच्चय जीवों	✔	✔	अभंग
	मतिश्रुत ज्ञान समुच्चय, 16 दंडक (पंचे.)/अवधि ज्ञानी, समु. नारक, देव, मनुष्य	✔	विकल्प	तीन भंग
	अवधि ज्ञान तिर्यंच पंचेन्द्रिय/ मनः पर्यवज्ञानी समुच्चय और मनुष्य	✔	✘	-
	मति श्रुत ज्ञानी विकलेन्द्रिय	विकल्प	विकल्प	6 भंग
	अज्ञानी, मतिश्रुत अज्ञानी समुच्चय, और स्थावरों	✔	✔	अभंग
	केवली मनुष्य/ अज्ञानी 19 दंडक के जीव/विभंग ज्ञानी समुच्चय, नारकी देवों	✔	विकल्प	तीन भंग
	विभंग ज्ञानी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्यों	✔	✘	-
9.	**योगद्वार**- सयोगी समुच्चय, पांच स्थावरों, काययोगी जीवों, स्थावरों	✔	✔	अभंग
	सयोगी 19 दंडक जीवों/काययोगी 19 दंडक जीवों	✔	विकल्प	तीन भंग
	मनयोगी समुच्चय, 16 दंडक (पंचे.), वचनयोगी समुच्चय, 19 दंडक	✔	✘	-
	अयोगी जीव, मनुष्य, सिद्ध	✘	✔	-
10	**उपयोग द्वार**-साकार, अनाकारोपयोगी, समुच्चय, पांच स्थावरो	✔	✔	अभंग
	19 दंडक के जीवों	✔	विकल्प	तीन भंग
11	**वेद द्वार**- सवेदी समुच्चय, स्थावर/ नपुंसक समुच्चय, स्थावर/अवेदी समुच्चय	✔	✔	अभंग
	सवेदी19 दंडक जीव/नपुंसक नारकी,विक.,तिपं.,मनुष्य/स्त्री पुरुष समु.15 दं. जीव	✔	विकल्प	तीन भंग
	अवेदी मनुष्य	✔	विकल्प	तीन भंग
12	**शरीर द्वार**-सशरीर समु., स्थावर/तैजस कार्मण शरीरी समुच्चय, स्थावर	✔	✔	अभंग
	सशरीरी 19 दंडक/ औदारिक समुच्चय, मनुष्य/तैजस कार्मण 19 दंडक के जीव	✔	विकल्प	तीन भंग
	औदारिक स्थावर, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय/वैक्रिय जीवों, 16 दंडक, वायुकाय	✔	✘	-
	आहारक शरीरी जीवों, मनुष्यों	✔	✘	-
13	**पर्याप्ति द्वार**- पर्याप्ता जीवों, समु., मनुष्यों। शरीर के अपर्याप्त जीवों, 24 दंडक	✔	विकल्प	तीन भंग
	पर्याप्त 23 दंडक के जीवों	✔	✘	-
	आहार पर्याप्ति से अपर्याप्त 24 दंडक और समुच्चय जीवो	✘	✔	-
	इन्द्रिय, श्वासो.,भाषा,मनः पर्याप्ति से अपर्याप्त स्थावरो	✔	✔	अभंग
	इन्द्रिय, श्वासो.,भाषा,मनः पर्याप्ति से अपर्याप्त तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय	✔	विकल्प	तीन भंग
	इन 4 पर्याप्ति से अपर्याप्त नारकी, देवों, मनुष्यों	विकल्प	विकल्प	6 भंग

उनतीसवां ''उपयोग'' पद

उपयोग के भेद प्रभेद-

उपयोग के दो प्रकार है	-	1. साकार उपयोग 2. अणाकार उपयोग	
साकारोपयोग के आठ भेद	-	5. ज्ञान 3 अज्ञान।	
अणाकारोपयोग के चार भेद है	-	4. दर्शन।	
दंडकों में उपयोग	-		
नारकी में 9	तीन ज्ञान	3 अज्ञान	3 दर्शन
देवता में 9	3 ज्ञान	3 अज्ञान	3 दर्शन
पांच स्थावर में 3		2 अज्ञान	1 दर्शन
तीन विकलेन्द्रिय में 5/6	2 ज्ञान	2 अज्ञान एवं	दर्शन 1/2
तिर्य्च पंचेन्द्रिय में 9	3 ज्ञान	3 अज्ञान	3 दर्शन
मनुष्य में 12	5 ज्ञान	3 अज्ञान	4 दर्शन

विशेष ज्ञातव्य- जब जीव ज्ञान अज्ञान के उपयोग में उपयुक्त होता है तब साकारोपयुक्त या साकारोपयोग वाला होता है एवं जब दर्शन के उपयोग में उपयुक्त होता है तब अणाकार उपयोग वाला होता है।

तीसवां ''पश्यत्ता'' पद

पश्यत्ता स्वरूप- उपयोग के समान ही ''पश्यता'' का वर्णन है। अर्थात् पश्यता के भी दो प्रकार है-1. साकार पश्यत्ता 2. अणाकार पश्यता।

साकार पश्यत्ता के 6भेद है- 4 ज्ञान 2 अज्ञान

अनाकार पश्यत्ता के 3 भेद है- 3 दर्शन

मति ज्ञान, मति अज्ञान और अचक्षुदर्शन ये तीन उपयोग पश्यता में नहीं होते हैं ये तीनो उपयोग बुद्धि ग्राह्य है अतः पश्यत्ता में इनका समावेश नहीं होता है। श्रुत ज्ञान श्रुत अज्ञान चक्षु दर्शन ये इन्द्रिय ग्राह्य होने से एवं शेष 6 ज्ञान दर्शन आत्म प्रत्यक्षी भूत होने से उन्हें पश्यक पश्यत्ता कहा गया है।

दंडकों में पश्यत्ता-

देवता नारकी और तिर्य्च पंचन्द्रिय में 6 2 ज्ञान 2 अज्ञान 2 दर्शन

मनुष्य में 9 4 ज्ञान 2 अज्ञान 3 दर्शन

पांच स्थावर में एक श्रुत अज्ञान

बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय में 2 श्रुत ज्ञान, श्रुत अज्ञान

चौरेन्द्रिय में 3 श्रुत ज्ञान, श्रुत अज्ञान, चक्षुदर्शन

विशेष ज्ञातव्य- ज्ञानोपयोग वाले साकार पश्यता कहे जाते हैं और दर्शनोपयोग वाले अनाकार पश्यत्ता कहे जाते हैं।

केवल ज्ञानी का उपयोग–

जीवों को जब ज्ञानोपयोग अर्थात् साकारोपयोग होता है उस समय अणाकरोपयोग नहीं होता है। जिस समय अणाकरोपयोग होता है उस समय साकारोपयोग नहीं होता है अर्थात् जीव में ज्ञान और दर्शन एक साथ में क्षयोपशम भाव में रह सकते हैं किन्तु उन दोनों में से उपयोग एक का ही होता है।

ज्ञानोपयोग– साकारोपयोग से जानना होता है और दर्शनोपयोग-अनाकार उपयोग से देखना होता है। अतः जानने और देखने रूप उपयोग भी भिन्न भिन्न समय में होता है।

अतः छद्मस्थ और केवली सभी के एक समय में एक उपयोग ही होता है साकार उपयोग अथवा अणाकार उपयोग।

केवल ज्ञानी प्रत्येक पदार्थ के स्वरूप को उसके नाम अर्थ भावार्थ आकारों से, युक्ति पूर्वक, उपमा एवं दृष्टांत पूर्वक, वर्ण गंध रस स्पर्श एवं संस्थानों से, लम्बाई चौड़ाई आदि मापों में या प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से जानते देखते हैं। जिस समय देखने रूप दर्शनोपयोग अनाकरोपयोग में होते हैं उसके अनंतर समय में ज्ञानोपयोग-साकरोपयोग में होते हैं।

उपयोग के समान दोनो पश्यत्ता भी समझ लेना चाहिये।

छद्मस्थों के दोनों उपयोग जघन्य उत्कृष्ट असंख्य समय के अन्तर्मुहुर्त वाले होते हैं और केवल ज्ञानी के एक-एक समय के ही दोनों उपयोग होते हैं।

उपयोग	पश्यता (अन्तर)
साकारोपयोग त्रैकालिक, वर्त्तमान कालिक दोनों भाव जाने	साकार पश्यता त्रैकालिक भाव जाने (मात्र वर्तमान के ही नहीं)
अनाकारोपयोग स्पष्ट स्पष्टतर दोनों प्रकार के भाव जाने	अनाकार पश्यता स्पष्टतर भाव ही जाने
उपयोग के 12 भेद साकार के 8, अनाकार के 4	पश्यता के 9 भेद-साकार के 6, अनाकार के 3

जीव प्रकार (24 दंडक में)	उपयोग			पश्यता		
	साकार	अनाकार	कुल	साकार	अनाकार	कुल
समु.जीव, कर्म भूमिज गर्भज मनुष्य	8 (5 ज्ञान 3 अज्ञान)	4 दर्शन	12	6 (4 ज्ञान 2 अज्ञान)	3 दर्शन	9
नारकी, देवता, संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय	6 (3 ज्ञान 3 अज्ञान)	3 दर्शन	9	4 (2 ज्ञान 2 अज्ञान)	2 दर्शन	6
पांच स्थावर	2 अज्ञान	1 दर्शन अचक्षु	3	1 श्रुत अज्ञान	×	1
बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय	4 (2 ज्ञान 2अ.)	1 अचक्षु दर्शन	5	2 (श्रुत ज्ञान, श्रु.अ.)	×	2
चौरिन्द्रिय असंज्ञी ति.पंचेन्द्रिय	4 (2 ज्ञान 2 अज्ञान)	2 दर्शन	6	2 (श्रुत ज्ञान, अज्ञान)	1 चक्षु दर्शन	3
समुर्च्छिम मनुष्य	2 अज्ञान	2 दर्शन	4	श्रुत अज्ञान	1 चक्षु दर्शन	2
युगलिक मनुष्य	4 (2 ज्ञान 2 अज्ञान)	2 दर्शन	6	2 (श्रुत ज्ञान, अज्ञान)	1 चक्षु दर्शन	3

इकतीसवां ''सन्नी'' पद-

1. जिन जीवों के ''मन'' होता है वे सन्नी होते हैं जिनके मन नहीं होता वे असन्नी होते हैं। अथवा मनः पर्याप्ति पूर्ण नहीं किये हुए असन्नि से आकर उत्पन्न होने वाले नारकी देवता भी असन्नि कहे गये हैं। जो गर्भज या औपपातिक होते हैं वे सन्नी है।

24 दंडक में संज्ञी असंज्ञी-

जीव भेद	संज्ञी	असंज्ञी	नो संज्ञी नो असंज्ञी
समुच्चय जीव	✔	✔	✔
प्रथम नरक के अपर्याप्त भवनपति व्यंतर अपर्याप्ता	✔	✔	✘
पहली नरक के पर्याप्ता, दो से सात नरक के पर्याप्त अपर्याप्ता	✔	✘	✘
भवनपति, व्यंतर के पर्याप्ता संज्ञी ति.पं. युगलिक मनुष्य	✔	✘	✘
ज्योतिषी वैमानिक देवों के पर्याप्ता अपर्याप्ता	✔	✘	✘
पांच स्थावर तीन विकलेन्द्रिय असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय	✘	✔	✘
कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य	✔	✘	✔
समुर्च्छिम मनुष्य	✘	✔	✘
सिद्ध भगवान	✘	✘	✔

2. चौवीस दंडक में-

नारकी भवनपति व्यंतर में - सन्नी एवं असन्नि
मनुष्य एवं तिर्यंच पंचेन्द्रिय - सन्नी एवं असन्नि
ज्योतिषी वैमानिक - सन्नी है। असन्नि नहीं।
पांच स्थावर तीन विकलेन्द्रिय - असन्नि है। सन्नी नहीं।
नो सन्नी नो असन्नि - जीव, मनुष्य और सिद्ध।

बतीसवां ''संयत'' पद

श्रमण, मुनि, संयत कहे जाते हैं। श्रावक-श्रमणोपासक, संयतासंयत कहलाते हैं शेष सभी असंयत होते हैं।

चौबीस दंडक में-

बावीस दंडक के जीव असंयत है। सन्नी तिर्य्च पंचेन्द्रिय असंयत और संयतासंयत दोनों तरह के होते हैं। मनुष्य में कोई संयत होते हैं, कोई असंयत होते हैं और कोई संयतासंयत भी होते हैं।

सिद्ध भगवान नो संयत नो संयता संयत होते हैं।

24 दंडक में संयत आदि

जीव भेद	संयत	असंयत	संयता संयत	नो सं.नो असं. नो संयतासंयत
समुच्चय जीव	✔	✔	✔	✔
22 दंडक, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य छोड़कर	✘	✔	✘	✘
तिर्यंच पंचेन्द्रिय	✘	✔	✔	✘
मनुष्य	✔	✔	✔	✘
सिद्ध भगवान	✘	✘	✘	✔

विशेष ज्ञातव्य– यह जानने की तत्त्व दृष्टि से कथन किया जाता है किन्तु कोई देव या विशिष्ट व्यक्ति प्रत्यक्ष हो उसे (यह या तूं) ''असंयत'' है।, ऐसे निष्ठुर वचन नहीं कहे जाते हैं। ऐसे निष्ठुर वचन बोलने के लिये भगवती सूत्र में निषेध किया गया है।

तेतीसवां ''अवधि'' पद

नंदी सूत्र में पांच ज्ञान का विस्तृत वर्णन है जो वहां सारांश रूप में दिया गया है। तत्सम्बन्धी जानकारी के के लिये वहीं अवधिज्ञान प्रकरण देखना चाहिये।

नारकी वैमानिक देवता के के अवधिज्ञान का विषय जीवाभिगम सूत्र में हैं, जो सारांश में देखना चाहिये।

नारकी– नारकी में भव प्रत्ययिक अवधि होता है। जघन्य आधा कोश उत्कृष्ट चार कोश क्षेत्र सीमा वाला होता है। त्रिकोन नावा के आकार वाला अवधि क्षेत्र होता है। आभ्यंतर अवधि होता है बाह्य नहीं होता है। देश अवधि होता है। सर्व अवधि नहीं होता है। आनुगामिक अवधि होता है। अपड़िवाई (जीवन भर रहने वाला) और अवस्थित (नहीं बढ़ने वाला नहीं घटने वाला) अवधि होता है।

असुरकुमार– भव प्रत्ययिक अवधि होता है। जघन्य 25 योजन उत्कृष्ट असंख्य द्वीप समुद्र क्षेत्र सीमा वाला होता है। पल्लक के आकार चौकोन होता है। शेष वर्णन नरक के समान है।

नवनिकाय एवं व्यंतर– उत्कृष्ट अवधि क्षेत्र संख्याता द्वीप समुद्र का होता है। शेष वर्णन असुरकुमार के समान।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय– जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट असंख्य द्वीप समुद्र। क्षायोपशमिक अवधि, बाह्य अवधि, विविध आकार, देश अवधि तिर्यंच में होता है। अनुगामिक, अननुगामिक, हायमान, वर्धमान, पडिवाई, अपडिवाई, अवस्थित अनवस्थित इत्यादि दोनों प्रकार के अवधि ज्ञान तिर्यंच पंचन्द्रिय में होते हैं।

मनुष्य– क्षायोपशमिक अवधि होता है। जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट असंख्यात लोक खंड जितना सीमा क्षेत्र जानने की क्षमता होती है। शेष तिर्यंच के समान। परमावधि ज्ञान मनुष्य के होता है अर्थात् देश, सर्व, आभयंतर बाह्य दोनों प्रकार के अवधि होते हैं।

ज्योतिषी– जघन्य संख्याता द्वीप समुद्र और उत्कृष्ट भी संख्याता द्वीप समुद्र। शेष असुरकुमार के समान।

वैमानिक– जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट लोक नाल (त्रस नाल)।

संस्थान– वाणव्यंतरों का पटह के आकार, ज्योतिषी का झालर के आकार अवधि ज्ञान क्षेत्र होता है। 12 देवलोक का ऊर्ध्व मृदंग। ग्रैवेयक में पुष्प चंगेरी। अणुत्तर विमान में जवनालिका (लोकनालिका) में अवधि क्षेत्र के आकार है।

नाम	जघन्य विषय	उत्कृष्ट विषय
रत्न प्रभा	साढ़े तीन कोश	चारकोश यों क्रमशः आधा-आधा कोश कम करते जाना है
	7वी नरक में ज. आधा कोश	उत्कृष्ट एक कोश अवधिज्ञान का विषय है।
असुर कुमार देव	पच्चीस योजन	असंख्यात द्वीप समुद्र
असुर कुमार (पल्योपम आयु)	पच्चीस योजन	संख्याता द्वीप समुद्र
असुर कुमार (आधा से एक सागर)	पच्चीस योजन	असंख्याता द्वीप समुद्र
नवनिकाय, व्यंतर	पच्चीस योजन	संख्याता द्वीप समुद्र
तिर्यंच पंचेन्द्रिय	अंगुल के असं. भाग	असंख्याता द्वीप समुद्र
मनुष्य	अंगुल के असं. भाग	संपूर्ण लोक (अलोक में असंख्य लोक प्रमाण क्षमता है।)
ज्योतिषी	संख्यात द्वीप समुद्र	संख्यात द्वीप समुद्र
पहले दूसरे देवलोक	अंगुल के असंख्यातवें भाग	नीचे रत्नप्रभा चरमांत तीर्च्छे असं.द्वीप समुद्र, ऊपर स्वयं के विमान पताका
तीसरे चौथे देवलोक	अंगुल के असंख्यातवें भाग	उपरोक्त प्रमाण में नीचे दूसरी नरक के चरमांत तक (अधिक)
पांचवे छठे देवलोक	अंगुल के असंख्यातवें भाग	उपरोक्त में अधिक तीसरी नरक के चरमांत तक
सातवे आठवें देवलोक	अंगुल के असंख्यातवें भाग	उपरोक्त में चौथी नरक का चरमांत अधिक
नवमें से बारहवे देवलोक	अंगुल के असंख्यातवें भाग	उपरोक्त में पांचवी नरक का चरमांत जुड़ा
नवग्रैवे. पहली दूसरी (नीचे से) त्रिक	अंगुल के असंख्यातवें भाग	उपरोक्त में छठी नरक का चरमांत तक जुड़ा
नवग्रैवेयक ऊपर की त्रिक	अंगुल के असंख्यातवें भाग	उपरोक्त में सातवी नरक का चरमांत तक जुड़ा
पांच अणुत्तर विमान	अंगुल के असंख्यातवें भाग	अपनी ध्वजा पताका से ऊपर का छोड़ सम्पूर्ण लोक जानते देखते हैं।

नोट- नंदी सूत्र से एवं जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपति के अध्ययन से अवशेष जानकारी मिल सकेगी। वहां देखें-

चौतीसवां ''परिचारणा'' पद

1. परिचारणा शब्द का अर्थ-मैथुन सेवन, इन्द्रियों का काम भोग, काम क्रीड़ा, रति, विषय भोग आदि है। प्रवीचारणा भी इसका पर्याय शब्द प्रचलित है।
2. आहार, अध्यवसाय एवं सम्यक्त्व-मिथ्यात्व का भी परिचारणा गत परिणामों में असर पड़ता है।
3. आहार से शरीर पुष्ट होता है, शरीर में ही विषय वासना की उत्पत्ति होती है। परिणामों में मोह भावों की वृद्धि होने से काम भोग का प्रयत्न होता है। परिचारणा करते हुए भी मिथ्यात्वी और सम्यग् दृष्टि की आसक्ति में अंतर होता है।
4. औदारिक दंडकों में परिचारणा के बाद विविध क्रियाएं होती है अर्थात् संसारिक कृत्य वृद्धि गर्भाधान संतति संरक्षण आदि क्रियाएं बढ़ती है। वैक्रिय दंडकों में पहले विशेष शरीर हजारों रूप आदि बनाते हैं फिर परिचारणा करते हैं। अतः पहले विक्रिया होती है।
5. सभी जीवों के असंख्य अध्यवसाय स्थान होते हैं वे शुभ और अशुभ दोनों तरह के होते हैं।
6. एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय में प्रविचारणा है किंतु विक्रिया पहले या पीछे नहीं है।
   प्रविचारणा भी अव्यक्त संज्ञा से है।
7. मनुष्य तिर्यंच में सभी प्रकार की परिचारणा पाई जाती है।
8. देवताओं में भवनपति व्यंतर ज्योतिषी पहला दूसरा देवलोक में मनुष्य के समान मैथुन सेवन रूप काय परिचारणा है।

वीर्य पुद्गल भी देवी के शरीर में प्रविष्ट होकर उसके इन्द्रिय, शरीर रूप में परिणमन होते हैं किन्तु गर्भाधान उनके नहीं होता है।

देव को परिचारणा की इच्छा होती है तो देवियां रूप श्रंगार आदि करके उपस्थित होती है।

9. तीसरे देवलोक से 12 वें देवलोक तक देवियां नहीं होती है, तथापि तीसरे चौथे देवलोक में स्पर्श परिचारणा होती है, पांचवें छट्ठे देवलाक में रूप परिचारणा होती है, सातवें आठवें देवलोक में शब्द परिचारणा होती है।

इन देवों के परिचारणा की इच्छा होने पर पहले दूसरे देवलोक से देवियां वहां पहुंच जाती है। फिर उपरोक्त कथनानुसार वे देव आसक्तियुक्त अंगों के स्पर्श मात्र से या रूप देखने में तल्लीन होकर या शब्द श्रवण में दत्तचित्त होकर मैथुन भावों की तृप्ति कर लेते हैं। ऐसा करते हुए भी उनके शरीर से पुद्गल देवी के शरीर में पहुंच जाते हैं और वे उसके शरीर की पुष्टि रूप बनते हैं।

मन परिचारणा वाले 9वें 10वें 11वें 12वें देवलोक के देवों के जब मन परिचारणा की इच्छा होती है तब देवी वहां नहीं जाती है। किन्तु अपने स्थान में रहकर ही विक्रिया, विभूषा एवं मनोपरिणामों से उस रूप में परिणत होती है इस प्रकार वे दोनों परिचारणा का अनुभव मन से ही करके इच्छा पूर्ति कर लेते हैं ऐसा करने पर भी देव शरीर पुद्गलों का देवी शरीर में संक्रमण एवं परिणमन हो जाता है।

इस प्रकार की विभिन्न परिचारणाओं से भी उनके वेद मोह की उपशांति हो जाती है।

नवग्रैवेयक एवं अणुत्तर देवों के किसी भी प्रकार की परिचारणा या उसके संकल्प नहीं होते हैं।

अल्पाबहुत्व- अपरिचारणा वाले देव अल्प है, मन परिचारणा वाले संख्यात गुणा, शब्द परिचारणा वले असंख्यात गुणा रूप परिचारणा वाले असंख्यात गुणा, स्पर्श परिचारणा वाले असंख्यात गुणा, काय परिचारणा वाले असंख्य गुणा है।

पेंतीसवां ''वेदना'' पद

देवलोक	जाने वाली देवियां (अपरिग्रहीता देवियां ही जाती है)
तीसरे देवलोक में	पहले देवलोक की 7 पल 1 समय अधिक से 10 पल की स्थिति वाली (1 पल्य सा. से 10 पल)
चौथे देवलोक में	दूसरे देवलोक की 9 पल 1 समय अधिक से 15 पल की स्थिति वाली (1 पल साधिक से 15 पल)
पांचवें देवलोक में	पहले देवलोक की 10 पल 1 समय अधिक से 20 पल की स्थिति वाली देवी का चिंतन करे
छठे देवलोक में	दूसरे देवलोक की 15 पल 1 समय अधिक से 25 पल की स्थिति वाली देवी का चिंतन करे
सातवें देवलोक में	पहले देवलोक की 20 पल 1 समय अधिक से 30 पल की स्थिति वाली देवी का चिंतन करे
आठवें देवलोक में	दूसरे देवलोक की 25 पल 1 समय अधिक से 35 पल की स्थिति वाली देवी का चिंतन करे
नवमें देवलोक में	पहले देवलोक की 30 से 1 समय अधिक से 40 पल की स्थिति वाली देवी का चिंतन करे
दसवें देवलोक में	दूसरे देवलोक की 35 पल 1 समय अधिक से 45 पल की स्थिति वाली देवी का चिंतन करे
ग्यारवें देवलोक में	पहले देवलोक की 40 से 1 समय अधिक से 50 पल की स्थिति वाली देवी का चिंतन करें
बारहवें देवलोक में	दूसरे देवलोक की 45 पल 1 समय अधिक से 55 पल की स्थिति वाली देवी का चिंतन करे

1. शीत, उष्ण एवं शीतोष्ण तीन प्रकार की वेदना सभी दंडकों में अल्पाधिक होती है। नारकी में पहली दूसरी तीसरी में उष्ण, चौथी पांचवी में दोनों। छट्ठी, सातवीं में शीत वेदना है।
2. द्रव्य क्षेत्र काल भाव की वेदना 24 ही दंडक में है।
3. शारीरिक, मानसिक एवं उभय तीन प्रकार की वेदना 16दंडक में है। एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय में केवल शारीरिक वेदना है।
4. साता, असाता, मिश्र तीन प्रकार की वदेना 24 ही दंडक हीनाधिक होती है। वह उदय प्रमुखा वेदना हैं।
5. दुःखा, सुखा, अदुःखसुखा, यह तीन प्रकार की वेदना परोदीरित निमित्त प्रमुख है। तीनों वेदना 24 ही दंडक में होती है।
6. अभ्युपगमिकी स्वेच्छा से स्वीकार की जाने वाली केशलोच आदि, औपक्रमिकी = अनिच्छा से अचानक आ जाने वाली। यथा- गिर जाने आदि से होने वाली, ये दोनों प्रकार की वेदना तिर्य्च पंचेन्द्रिय और मनुष्य में होती है शेष सभी दंडक में केवल औपक्रमिकी वेदना होती है।
7. निदा = व्यक्त वेदना, अनिदा = अव्यक्त वेदना। ये दोनों प्रकार की वेदना नारकी में होती है क्योंकि वहां सन्नी असन्नि दोनों होते हैं। इसी प्रकार भवनपति व्यंतर में भी दोनों होती है। ज्यातिषी वैमानिक में भी दोनों वेदना होती है। समदृष्टि मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से। पांच स्थावर तीन विकलेन्द्रिय में एक अनिदा वेदना ही होती है। मनुष्य तिर्य्च पंचेन्द्रिय में दोनों वेदना होती है।

छत्तीसवां ''समुद्घात'' पद

समुद्घात का अर्थ है-

शरीर से कुछ आत्म प्रदेशों का अल्प समय के लिये बाहर निकलना। आत्म प्रदेशों की इस प्रकार की प्रक्रिया सात प्रकार के प्रंसगों से होती है अतः समुद्घातें सात प्रकार की कही गई।

1. वेदनीय समुद्घात- अशाता वेदनीय की तीव्रता से आत्म प्रदेश शरीर के अवगाहित क्षेत्र से बाहर परिस्पंदित होते हैं उस समय जो वह आत्मा की प्रक्रिया होती है उसे वेदनीय समुद्घात कहते हैं।
2. कषाय समुद्घात- क्रोध, मान, माया या लोभ किसी भी कषाय की तीव्रता से आत्म प्रदेश शरीर अवगाहित क्षेत्र से बाहर परिस्पंदित होते हैं, इस प्रक्रिया को कषाय समुद्घात कहते हैं।
3. मारणंतिय समुद्घात- मरण समय में आगे के जन्म स्थान तक आत्म प्रदेशों का बाहर जाना एवं वापिस आना रूप आत्म प्रक्रिया मारंणतिक समुद्घात कही जाती है।
4. वैक्रिय समुद्घात- नारकी देवता मनुष्य तिर्य्च जो कोई भी उत्तर वैक्रिय करते हैं तब उन्हें पहले समुद्घात करनी पड़ती है। वही वैक्रिय समुद्घात है। अर्थात् वैक्रिय शरीर बनाने के लिये उसके योग्य पुद्गल ग्रहण करने हेतु आत्म प्रदेशों को लम्बाई = ऊंचाई में हजारों योजन बाहर फैलाया जाता है। फिर उस शरीर प्रमाण चौड़ाई और हजारों योजन लम्बाई वाले अवगाहित क्षेत्र में रहे हुए वैक्रिय वर्गणा के पद्गल ग्रहण किये जाते हैं। इस प्रकार प्रदेशों की शरीर से बाहर निकलने की यह प्रक्रिया वैक्रिय समुद्घात कही जाती है।
5. तेजस समुद्घात- शीत या उष्ण तेजो लब्धि वाला किसी उपकार या अपकार करने के परिणामों से उक्त दोनों प्रकार पुद्गल ग्रहण करके प्रक्षेप करता है उन पुद्गलों को विशेष मात्रा में ग्रहण करने एवं छोड़ने हेतु आत्म प्रदेशों के शरीर अवगाहित क्षेत्र से बाहर निकलने रूप जो क्रिया होती है वह तैजस समुद्घात है।

6. आहारक समुद्‌घात- शंका का समाधान एवं जिज्ञासा की सन्तुष्टि के लिये जो एक नया लघु शरीर बनाकर करोड़ों माइल दूर भेजा जाता है, वह आहारक शरीर होता है। उस आहारक शरीर को बनाने में और भेजने में आत्म प्रदेश कुछ बाहर निकाले जाते हैं और फिर कुछ आत्म प्रदेश उस नूतन शरीर के साथ रहते हुए इच्छित स्थान में जाते हैं। आत्म प्रदेशों की शरीर अवगाहित क्षेत्र से बाहर निकलने रूप यह सम्पूर्ण क्रिया आहारक समुद्‌घात है।

7. केवली समुद्‌घात- मोक्ष जाने के निकट पूर्व में अघाति कर्मों की विषमरूपता को सम रूप में करने हेतु आत्म प्रदेश सम्पूर्ण लोक प्रमाण प्रदेशों में व्याप्त हो जाते हैं। आत्म प्रदेशों की और लोक प्रदेशों की संख्या समान है अतः यह जीव के आत्म प्रदेशों की सर्वोत्कृष्ट अवगाहना होती है। औदारिक शरीर तो इस समय भी अपनी अवगाहना में ही रहता है, केवल आत्म प्रदेश ही निकलते हैं। इस प्रकार आठ समय के लिए आत्म प्रदेशों के बाहर निकलने रूप यह प्रक्रिया है, इसे ही केवली समुद्‌घात कहा गया है।

केवली समुद्‌घात की प्रक्रिया में जीव पहले समय शरीर की चौड़ाई-मोटाई प्रमाण ऊपर-नीचे लोकांत तक आत्म प्रदेशों को फैलाता है। दूसरे समय में शरीर की चौड़ाई मोटाई प्रमाण उस दंड रूप प्रदेशों को पूर्व-पश्चिम और उत्तर दक्षिण एक-एक भित्ति रूप (कपाट रूप) में विस्तृत करता है। तीसरे समय में उन भित्ति रूपस्थ आत्म प्रदेशों को दोनों बाजू में लोकांत तक विकसित करता है जिससे आत्म प्रदेश पूरे लोक क्षेत्र में अर्थात् सम किनारे वाले घनी कृत रूप में व्याप्त हो जाते हैं। किन्त लोक विषम किनारे वाले घन रूप हाने से उसके वे छोटे खुणे निष्कुंट रूप क्षेत्र अव्याप्त रह जाते हैं जो चौथे समय में आपूरित हो जाते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण लोक में पूर्ण रूपेण आत्म प्रदेशों को व्याप्त होने में कुल चार समय लगता है, और इसी क्रम से आत्म प्रदेशों को पुनः संकुचित करने में भी चार समय लगते हैं।

इस तरह केवल एक समय आत्म प्रदेशों की सम्पूर्ण लोक प्रमाण अवगाहना या सर्वोत्कृष्ट अवगाहना होती है एवं अपेक्षा से अर्थात् खुणों निष्कुंटों के रिक्त रहने को गोण कर दिये जाने की अपेक्षा तीन समय की लोक प्रमाण अवगाहना होती है इन तीनों समयों में आत्म प्रदेश शरीर में कम और बाहर अत्यधिक होते हैं। इसी कारण इन तीन समयों में जीव अणाहारक होता है एवं उस समय औदारिक का योग भी नहीं माना जाता है। कार्मण काय योग (कार्मण शरीर का व्यापार) रहता है। अन्य पांच समयों में आत्म प्रदेश शरीर में ज्यादा रहते हैं और बाहर कम होते हैं अतः औदारिक शरीर का योग या मिश्र योग और आहारकता बनी रहती है।

नारकी, वायुकाय	चार समुद्‌घात
देवों, तिर्यंच पंचेन्द्रिय	पांच समुद्‌घात
चार स्थावर, विकलेन्द्रिय	तीन समुद्‌घात
मनुष्य	सात समुद्‌घात

नोट- केवली समुद्घात का कुछ अवशेष परिचय औपपातिक सूत्र सारांश के अन्तिम प्रकरण से जानना चाहिये इसके लिये आगम सारांश देखें।

समुद्घातों का समय- प्रारम्भ की 6समुद्घात में असंख्य समय का अंतर्मुहुर्त समय लगता है। केवली समुद्घात में आठ समय लगते हैं जिसका कार्यक्रम इस प्रकार है-

आठ समय-

समय	संस्थान	योग
1.	दंड रचना-दंड रूप में आत्म प्रदेश	औदारिक
2.	कपाट रचना-कपाट रूप (दिवाल रूप)	औदारिक मिश्र
3.	पूरित मन्थान-सम किनारे वाला घन रूप लोक प्रमाण	कार्मण
4.	पूरित लोक-विषम किनारे वाला घन रूप लोक प्रमाण	कार्मण
5.	लोक साहरण -सम घन रूप लोक	कार्मण
6.	मन्थान साहरण-कपाट रूप संस्थान	औदारिक मिश्र
7.	कपाट साहरण-दंड रूप संस्थान	औदारिक मिश्र
8.	दंड साहरण- शरीरस्थ	औदारिक

दंडकों में समुद्घात- नारकी में 4, देवता में 5, चार स्थावर तीन विकलेन्द्रिय में 3, वायुकाय में 4, तिर्य्च पंचेन्द्रिय में 5, मनुष्य में 7 ये संख्या क्रम से ही होती है। अर्थात् पहली से तीसरी, पहली से चौथी आदि।

चौवीस दंडक में उभय कालिक समुद्घातें-

समुद्घात	जीव	भूतकाल		भविष्काल	
		जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
वेदनीय पांच	24 दंडक में	-	अनंता	0/1-2-3	अनंता
आहारक	23 दंडक में	0/1-2-3	×	0/1-2-3-4	×
आहारक	मनुष्य में	0/1-2-3-4	×	0/1-2-3-4	×
केवली	23 दंडक में	×	×	0/1	×
केवली	मनुष्य में	0/1	×	0/1	×
सभी जीवों की अपेक्षा-					
वेदनीयादि पांच	24 दंडक में	अनंता	अनंता	×	अनंता
आहारक	22 दंडक में	असंख्याता	असंख्याता	×	असंख्याता
आहारक	वनस्पति में	अनंता	अनंता	×	अनंता
आहारक	मनुष्य में	संख्याता	असंख्याता	संख्याता	असंख्याता
केवली	22 दंडक में	×	×	×	असंख्याता
केवली	वनस्पति में	×	×	×	अनंता
केवली	मनुष्य में	0/1-2-3	अनेक सौ	संख्याता	असंख्याता

एक-एक जीव की सभी दंडकों में समुद्घातें-

समुद्घात	जीव	दंडक में	जघन्य	उत्कृष्ट
वेदनीय	नैरयिक	24 दंडक में	0/1-2-3	अनंता
वेदनीय	23 दंडक	नरक में	0 / संख्याता	अनंता
वेदनीय	23 दंडक	23 दंडक में	0/1-2-3	अनंता
कषाय	नैरयिक	नरक में	0/1-2-3	अनंता
कषाय	नैरयिक	11 दंडक देव में	0/1-2-3	अनंता
कषाय	नैरयिक	ज्यो. वैमानिक में	0 /संख्याता	अनंता
कषाय	नैरयिक	औदारिक दंडकों में	0/1-2-3	अनंता
कषाय	13 दंडक के देव	नरक में	0 /संख्याता	अनंता
कषाय	13 दंडक के देव	13 दंडक स्वस्थान	0/1-2-3	अनंता
कषाय	13 दंडक के देव	13 दंडक पर स्थान	0 /संख्याता	अनंता
कषाय	13 दंडक के देव	ज्यो.वैमा. पर स्थान	0 /असंख्याता	अनंता
कषाय	शेष 10 दंडक	नरक देव में	0/संख्याता	अनंता
कषाय	शेष 10 दंडक	ज्यो. वेमा. में	0/असंख्याता	अनंता
कषाय	शेष 10 दंडक	शेष 10 दंडक में	0/1-2-3	अनंता
मारणांतिक	24 दंडक	24 दंडक में	0/1-2-3	अनंता
आहारक	24 दंडक	23 दंडक में	-	×
आहारक	23 दंडक	मनुष्य में	0/1-2-3-4	×
आहारक	मनुष्य	मनुष्य में	0/1-2-3-4	×
केवली	23 दंडक	मनुष्य में	0/1	×
केवली	मनुष्य	मनुष्य में	0/1	×
केवली	24 दंडक	23 दंडक में	×	×

विशेष- वैक्रिय समुद्घात कषाय समुद्घात के समान है। चार स्थावर तीन विकलेन्द्रिय में नहीं है अतः चौवीस दंडक वाले जीवों के सतरह दंडक में वैक्रिय समुद्घात का कथन करना।

तैजस समुद्घात मारणांतिक समुद्घात के समान है किन्तु 24 दंडक वाले जीवों के 15 दंडक में तैजस समुद्घात का कथन करना।

भूतकाल की अपेक्षा- पांच समुद्घातें जहां होवे वहां अनंत है।

आहारक समुद्घात 23 दंडक वालों के मनुष्यपने 0/1-2-3 है। मनुष्य के मनुष्यपने 0/1-2-3-4 है। तेवीस दंडक पने तो होती ही नहीं है।

केवली समुद्घात भूतकाल में 23 दंडक वालों के 24 दंडक में नहीं है। मनुष्य के मनुष्य पने 0/1 है।

0/1-2-3 इस संकेत का अर्थ है कभी होती है कभी नहीं होती है। होती है तो जघन्य 1-2-3 होती है।

ज्ञातव्य- 1. आहारक समुद्घात तीन बार किए हुए जीव तीन गतियों में मिल सकते हैं। मनुष्य में चार बार किये हुए मिल सकते हैं अथार्त् चौथी बार आहारक समुद्घात करने वाला उसी भव में मोक्ष जाता है।

2. 10 औदारिक दंडक में कोई भी समुद्घात के होने की नियमा नहीं है और होवे तो जघन्य 1-2-3 आदि होवे।

3. नारकी में प्रत्येक जीव के वेदनीय समुद्घात नियमतः होती है। शेष किसी भी दंडक में ऐसा नियम नहीं है।

4. कषाय और वैक्रिय समुद्घात नारकी देवता दोनों में नियमतः होते है।

5. नियमतः होने वाली समुद्घातें 10000 आदि संख्याता वर्ष की उम्र वालों के जघन्य संख्याता बार होती है और असंख्य वर्ष की उम्र वालों के जघन्य असंख्य बार होती है। इसीलिए ज्योतिषी वैमानिक में परस्थान की अपेक्षा कषाय समुद्घात जघन्य असंख्य कही है और भवनपति आदि में जघन्य संख्यात कही है।

दंडक के सभी जीवो की 24 दंडक में समुद्घातें-

समुद्घात	जीव	दंडक	अतीत काल में	अनागत काल में
पांच समुद्घात	24 दंडक	24 दंडक	अनंता	अनंता
आहारक	24 दंडक	23 दंडक	×	×
आहारक	22 दंडक	मनुष्य में	असंख्याता	असंख्याता
आहारक	वनस्पति	मनुष्य में	अनंता	अनंता
आहारक	मनुष्य	मनुष्य में	संख्याता-ज. असंख्याता -उ.	संख्याता-ज. असंख्याता -उ.
केवली	24 दंडक	23 दंडक में	×	×
केवली	22 दंडक	मनुष्य में	×	असंख्य
केवली	वनस्पति	मनुष्य में	×	अनंता
केवली	मनुष्य	मनुष्य में	0/1-2-3 ज. अनेक सौ	संख्याता ज. असंख्याता उ.

अल्पाबहुत्व-

1. नारकी में- 1. सबसे कम मरण समुद्घात 2. वैक्रिय असंख्यगुणा 3. कषाय संख्यातगुणा 4. वेदना संख्यातगुणा 5. असमवहत संख्यातगुणा।

2. देव 13 दंडक में- 1. सबसे कम तैजस समुद्घात 2. मरण समुद्घात असंख्यगुणा 3. वेदना असंख्यगुणा 4. कषाय संख्यातगुणा 5. वैक्रिय संख्यातगुणा 6. असमवहत असंख्य गुणा।

3.चार स्थावर- 1. मरण समुद्घात सबसे कम 2 कषाय समुद्घात संख्यात गुणा 3. वेदना समुद्घात विशेषाधिक असमवहत असख्यंगुणा।

4. वायुकाय- 1. वैक्रिय समुद्घात सबसे कम 2. मरण समुद्घात असंख्यगुणा 3. कषाय समुद्घात संख्य गुणा 4. वेदना समुद्घात विशेषाधिक 5. असमवहत असंख्यगुणा।

5. विकलेन्द्रिय- 1. सबसे कम मरण समुद्घात 2. वेदना समुद्घात असंख्यगुणा 3. कषाय समुद्घात असंख्यात गुणा 4. असमवहत संख्यगुणा।

6. तिर्यंच पंचेन्द्रिय- 1. सबसे कम तैजस समुद्घात 2. वैक्रिय समुद्घात असंख्यगुणा 3. मरण समुद्घात असंख्य गुणा 4. वेदना समुद्घात असंख्यगुणा 5. कषाय समुद्घात संख्यातगुणा 6. असमवहत संख्यातगुणा।

7. मनुष्य- 1. सबसे कम आहारक समुद्घात 2. केवली समुद्घात संख्यातगुणा 3. तैजस समुद्घात संख्यात गुणा 4. वैक्रिय समुद्घात संख्यात गुणा 5. मरण समुद्घात असंख्य गुणा 6. वेदना समुद्घात असंख्य गुणा 7. कषाय समुद्घात संख्यात गुणा 8. असमवहत असंख्य गुणा

8. समुच्चय जीव- 1. सबसे कम आहारक समुद्घात 2. केवली समुद्घात संख्यातगुणा 3. तैजस समुद्घात असंख्यगुणा 4. वैक्रिय समुद्घात असंख्यगुणा 5. मरण समुद्घात अनंतगुणा 6. कषाय समुद्घात असंख्यगुणा 7. वेदना समुद्घात विशेषाधिक 8. असमवहत असंख्यगुणा ।

समुद्घातों की अल्प बहुत्व

जीव	वेदनीय	कषाय	मारणांतिक	वैक्रिय	तैजस	आहारक	केवली	असमोहया
जीव	7 विशे.	6 असं.	5 अनंत	4 असं.	3 असं.	1 अल्प	2 सं.	8 असं.
पृथ्वी पानी अग्नि	2 असं.	3 सं.	1 अल्प	×	×	×	×	4 सं
वायु वनस्पति	4 विशे. 2 असं.	3 सं. 3 सं.	2 असं. 1 अल्प	1 अल्प पर्या. का असं. भाग ×	× ×	× ×	× ×	5 सं. 4 सं.
विकलेन्द्रिय	2 असं.	3 सं.	1 अल्प	×	×	×	×	4 सं.
ति.पंचे.	4 असं.	5 सं.	3 असं.	2 असं.	1 अल्प	-	×	6 सं.
मनुष्य	6 असं.	7 सं.	5 असं.	4 सं.	3 सं.	1 अल्प	2 सं.	8 सं.
देवता	3 असं.	4 सं.	2 असं.	5 सं.	1 अल्प			6 सं.
नारकी	4 सं.	3 सं.	1 अल्प	2 असं.	×	×	×	5 सं.

कषाय समुद्घात-

कषाय चार है उनकी समुद्घात भी चार हैं। अर्थात् क्रोध, मान, माया और लोभ चारों की अलग-अलग समुद्घात होती हैं।

24 दंडक में चारों ही समुद्घात होती हैं।

1. 24 दंडक में प्रत्येक जीव ने सभी दंडक में चारों समुद्घातें अतीत काल में अंनत की है और अनागत काल में जघन्य 0/1-2-3 उत्कृष्ट अनंत करेगा।

2. प्रत्येक दंडक के सभी जीवों ने सभी दंडक में चारों समुद्घातें अतीत काल में अनंत की है और भविष्य काल में अंनत करेंगे।

3. एक-एक जीव के सभी दण्डकों में -क्रोध समुद्घात का सम्पूर्ण कथन वेदना समुद्घात के समान हैं। मान-माया समुद्घात का सम्पूर्ण कथन मरण समुद्घात के समान हैं। लोभ समुद्घात का वर्णन कषाय समुद्घात के समान 23 दंडक में है किन्तु नरक में अगामी काल में जघन्य 0/1-2-3 उत्कुष्ट अनंत।

4. प्रत्येक दंडक के सभी जीवों ने सभी दण्डक में चारों समुद्घातें अनंत की है और अनंत करेंगे।

जीवों में	क्रोध	मान	माया	लोभ	अकषाय (केवली समु.)	असमवहत
नैरयिकों में	4 सं.	3 सं.	2 सं.	1 अल्प	×	5 सं.
13 दंडक देवता में	1 अल्प	2 सं.	3 सं.	4 सं.	×	5 सं.
9 दंडक(स्था.विक.ति.पं.)	2 विशे.	1 अल्प	3 विशे.	4 विशे.	×	5 सं.
मनुष्य	3 विशे.	2 असं.	4 विशे.	5 विशे.	1 अल्प	6 सं.
समुच्चय जीवों में	3 विशे.	2 अनंत	4 विशे.	5 विशे.	1 अल्प	6 सं.

नोट- स्पष्टीकरण के लिये पूर्व में वर्णित सातों समुद्घात के एक-एक जीव के चार्ट में देखें।

कषाय समुद्घातों की अल्पाबहुत्व-

1. नारकी- सबसे कम लोभ समुद्घात, फिर मान, माया, क्रोध क्रमशः संख्यात गुणा है उससे असमवहत संख्यातगुणा हैं।

2. देवता- सबसे कम क्रोध समुद्घात फिर मान, माया, माया लोभ और असमवहत क्रमशः संख्यातगुणा।

3. तिर्यंच- सबसे कम मान समुद्घात फिर क्रोध, माया और लोभ क्रमशः विशेषाधिक। असमवहत संख्यात गुणा।

4. मनुष्य- 1. सबसे कम अकषाय समुद्घात (केवली समुद्घात)। 2. उससे मान समुद्घात असंख्यगुणा 3-5. क्रोध, माया, लोभ क्रमशः विशेषाधिक 6. असमवहत संख्यातगुणा।

5. समुच्चय जीव- मनुष्य के समान है किन्तु समुद्घात अनंत गुणा है।

छाद्मस्थिक समुद्घात-

केवली समुद्घात के अतिरिक्त शेष छहों समुद्घात छदमस्थों के होती है केवली के नहीं होता है। अतः छाद्मस्थिक समुद्घात छः है। चौवीस दंडक में छाद्मस्थिक समुद्धातें पूर्वोक्त सात समुद्धातों के समान समझना। मनुष्य में सात के स्थान पर 6 समझना।

जीवों में	क्रोध समु.	मान समु.	माया समु.	लोभ समु.	अकषायी	असमु.
जीव	3 विशेषा अ.	2 अनंत	4 विशेषा अ.	5 विशेषा अ.	1 अल्प	6 सं.
मनुष्य	3 विशेषा अ.	2 असं.	4 विशेषा अ.	5 विशेषा अ.	1 अल्प	6 सं.
नारकी	4 सं.	2 सं.	3 सं.	1 अल्प	-	5 सं.
देवता	1 अल्प	2 सं.	3 सं.	4 सं.	-	5 सं.
सभी तिर्यंच	2 विशेषा अ.	1 अल्प	3 विशेषा अ.	4 विशेषा अ.	-	5 सं

समुद्धातों की अल्पाबहुत्व-

संकेत-सं. = संख्यातगुणा असं. = असंख्य गुणा, अनंत. = अनंत गुणा, विशे. = विशेषाधिक, असमु. = असमवहत, समु. = समुद्धात।

अल्पाबहुत्व तुलना एवं ज्ञातव्य-

1. नारकी एवं एकेन्द्रिय में वेदना समुद्घात वाले ज्यादा है, कषाय समुद्घात वाले कम है। शेष सभी में वेदना वाले कम है, कषाय वाले ज्यादा है अर्थात् विकलेन्द्रिय आदि में जीव दुःख की अपेक्षा कषायों में ज्यादा रहते है। चार कषायों में से भी तीनों गति में लोभ समुद्घात ज्यादा कही गई है केवल नारकी में क्रोध समुद्घात ज्यादा है।

मौखिक परम्परा में इस प्रकार कहा जाता है- 1. नारकी में क्रोध ज्यादा 2. मनुष्य में मान ज्यादा

3. तिर्य्च में माया ज्यादा 4. देव में लोभ ज्यादा। उक्त कथन की इस अल्पाबहुत्व से संगती नहीं हो सकती है किन्तु व्यवहार नय से ही यह परम्परा कथन समझना चाहिये।

2. समुच्च्य जीव में मरण समुद्घात से कषाय समुद्घात वाले असंख्यगुणे कहे गये हैं जबकि पृथ्वी आदि वनस्पति पर्यन्त सभी में संख्यात गुणे कहे हैं, यह असंगत है। क्योंकि वनस्पति में भी संख्यातगुणा है तो समुच्चय जीव में असंख्यगुणा होना असंभव है अतः यहां लिपि दोष अवश्य है किन्तु यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि ''समुच्चय जीव का पाठ गलत है या पांच स्थावर का या वनस्पति का।

सम्भावना यह लगती है कि ''समुच्चय जीव में कभी संख्यात का असंख्यात बन गया हो।'' टीकाकर ने इस विषय में कोई चिंतन नहीं दिया है, जैसा पाठ मिला वैसा स्पष्टीकरण कर दिया है बल्कि यहां तो स्पष्टीकरण भी नहीं करके सुगम बताकर स्वयं ही विचार करने का कह दिया; जबकि यहां तो विशेष स्पष्टीकरण की आवश्यकता थी।

3. सात समुद्घात की अल्पाबहुत्व में समुच्चय जीव, पांच स्थावर एवं मुनष्य-देव में असमवहत असंख्य गुणे कहे हैं जबकि चार कषायों की अल्पबहुत्व में सर्वत्र असमहवहत को संख्यातगुणा ही कहा गया है। यह भी आपस में असंगत सा लगता है। यदि कषाय समुद्धातों की अल्पाबहुत्व में सर्वत्र असंख्यातगुणा कर दिया जाय तो भी नारकी विकलेन्द्रिय तिर्य्च पंचेन्द्रिय में विरोध आता है। टीकाकार ने यहां पर भी कोई चिन्तन प्रस्तुत नहीं किया है।

तीसरे पद में असमवहत से संख्यातगुणा कहा गया है। असंख्यात गुणा नहीं कहा है। अतः असमवहत सर्वत्र संख्यातगुणा ही माना जा सकता है। जब विकलेन्द्रिय में असमवहत संख्यातगुणा हो सकता है तो समुच्चय जीव और वनस्पति में असंख्यात गुणा होने में कोई आपत्ति नहीं है और मनुष्य एवं देव भी संख्यातगुणे कहे जाय तो भी कोई आपत्ति नहीं है। इस प्रकार सर्वत्र संख्यात गुणे असमवहत मान लेने पर ''अ'' लिपी दोष से हुआ मानना होगा। तब कषाय समुद्घातों की, सातों समुद्घातों की और तीसरे पद की (ढिगलों की) अल्पाबहुत्व में परस्पर विरोध नहीं आयेगा।

4. मनुष्य में असमवहत असंख्य गुणा कह दिया गया है जबकि तीन विकलेन्द्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय में संख्यातगुणा ही कहा गया है इसका भी कारण टीका में स्पष्ट नहीं किया गया है।

5. वेदनीय और कषाय समुद्घात वाले आपास में कहीं भी असंख्यात गुणे नहीं कहे हैं केवल विकलेन्द्रिय में ही असंख्यात गुणे कहे हैं इसका भी तात्पर्य अज्ञात है। विकलेन्द्रिय के अतिरिक्त सर्वत्र संख्यात गुणे या विशेषाधिक ही कहे हैं अतः यहां भी ''अ'' लिपि दोष से होना संभव है।

6. विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और नारकी इन सभी के समवहतों से असमवहत संख्यात गुणें होते हैं और शेष सभी दंडकों में असमवहत असंख्यगुणे अधिक होते हैं। इनमें नारकी देवता आदि का तात्पर्य स्पष्ट है किन्तु विकलेन्द्रिय का कारण अज्ञात है और जब कषायों की अल्पाबहुत्व पर लक्ष्य किया जाय तो दुविधा ही प्रतीत होती है। अर्थात् इन अल्पबहुत्वों का तात्पर्य रहस्यार्थ परम्परा में विलुप्त सा हो गया है अथवा तो इनके पाठों में ''अ'' सम्बन्धी लिपि दोष हुए हैं। तत्त्वं केवली गम्यं।

7. जीव, मनुष्य और तिर्यंच में मान समुद्घात कम है फिर क्रोध, माया, लोभ समुद्घातें क्रमशः विशेषाधिक है जबकि नारकी देवता में कषाय समुद्घातें क्रमशः संख्यातगुणी है। नारकी में लोभ, मान, माया, क्रोध यह क्रम है और देवता में क्रोध, मान, माया, लोभ अनुक्रम से संख्यातगुणा है।

8. अकषाय समुद्घात शब्द से केवली समुद्घात अपेक्षित है और असमवहत शब्द से सातों समुद्घातों से रहित जीव विवक्षित है।

9. वायुकाय में वैक्रिय समुद्घात वाले बादर पर्याप्तों के संख्यातवें भाग में होते हैं। फिर भी नारकी देवता से इनकी संख्या अधिक होती है। क्योंकि 98बोल की अल्पाबहुत्व के बादर वायुकाय पर्याप्त का 57वां बोल है जबकि देवों का अन्तिम बोल 41वां है। बारहवें पद के बद्धेलक के अनुसार वायुकाय के वैक्रिय बद्ध शरीर क्षेत्र पल्योपम के असंख्यातवें भाग है जबकि देव असख्यं श्रेणियों के प्रदेश तुल्य है। बादर पर्याप्त वायुकाय के संख्यातवें भाग वालो को वैक्रिय करना कहा जाता है किन्तु वह संगत नहीं है, असंख्यातवें भाग कहना उपयुक्त है। ऐसा कहने पर भी क्षेत्र पल्योपम के असंख्यातवें भाग होने में बाधा नहीं आती है।

मूल पाठ में भी पल्योपम का असंख्यातवां भाग कहा है टीका में भी पल्योपम का असंख्यातवां भाग ही सामान्य रूप से कह दिया गया है ''क्षेत्र पल्योपम'' होने का स्पष्टीकरण टीकाकार ने भी नहीं किया हैं। आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से प्रकाशित विवेचन के 12 वें पद में भी क्षेत्र पल्योपम होने की चर्चा नहीं की है तथापि वास्तविकता यही है कि क्षेत्र पल्योपम का असंख्यातवां भाग कहना चाहिये।

नोट- तुलना विचारणा का सार यह है कि समुच्चय जीव में कषाय समुद्घात संख्यातगुणा कहना चाहिये और जीव एकेन्द्रिय मनुष्य और देव में असमवहत संख्यातगुणे कहने चाहिये एवं ''अ'' को लिपि दोष से आया हुआ समझना चाहिये। ऐसा मानने पर अनेक शंकाएं जड़मूल से स्वतः समाप्त हो जाती हैं।

समुद्घातों का क्षेत्र काल एवं पांच क्रिया-

समुद्घात आत्म प्रदेशों के शरीर से बाहर निकलने की प्रमुख क्रिया हैं। वे आत्म प्रदेशा जितने क्षेत्र का अवगाहन करते है उसमें जितना समय लगता है वह इस प्रकार हैं-

1. वेदनीय और कषाय समुद्घात शरीर का लम्बाई-चौड़ाई का जितना क्षेत्र हैं। उसके अंग और उपांग के मध्य आत्म प्रदेशों से जो रिक्त स्थान है उसे आपूरित करने से शरीर प्रमाण क्षेत्र घनी रूप में आत्मा प्रदेशों से व्याप्त होता हैं।

2. इस क्षेत्र को आत्म प्रदेशों से व्याप्त करने में एक समय या दो समय उत्कृष्ट तीन समय लगता हैं।

आत्म प्रदेशों के व्याप्त होने की प्रक्रिया सर्वत्र एक सी होती हैं। केवली समुद्घात के पहले दूसरे समय की प्रक्रिया के समान होती हैं। जितना क्षेत्र व्याप्त करना होता हैं। उसके अनुसार क्षेत्र की लम्बाई-चौड़ाई का अन्तर पड़ता हैं। व्याप्त करने का क्षेत्र एक दिशा गत हो तो एक समय लगता है चार दिशागत हो या मोड़ हो दो समय लगते है तथा विदिशा गत हो या विदिशा का मोड़ हो तो तीन समय लगते है एवं लोकांत खुणे (कोने) में हो या अन्य ऐसा गमन क्षेत्र हो तो कदाचित चार समय भी आत्म प्रदेशों को जाने में लग जाते हैं।

3. इस विधानुसार मारणांतिक समुद्घात और केवली समुद्घात को छोड़कर शेष पांच समुद्घात में उत्कृष्ट तीन समय में आत्म प्रदेशों के शरीर से बाहर निकल कर अपने परिलक्षित क्षेत्र में व्याप्त होने की क्रिया पूर्ण हो जाती हैं। मरण समुद्घात में उत्कृष्ट कदाचित चार समय भी पूर्ण व्याप्ति में लगते हैं। केवली समुद्घात में अजघन्य अनुत्कृष्ट चार समय ही लगते हैं।

4. इन सात समुद्घातों के पुद्गल ग्रहण निस्सरण एवं कर्म निर्जरण का कुल काल जघन्य उत्कृष्ट असंख्य समयों का अंतमुहुर्त है किन्तु केवली समुद्घात का कुल काल आठ समय का अंतर्मुहुर्त ही होता है एवं आहारक समुद्घात का काल जघन्य एक समय का है एवं उत्कृष्ट अंतर्मुहुर्त का हैं।

5. तात्पर्य यह है कि आत्म प्रदेशों को बाहर व्याप्त होने का काल जघन्य एक समय 2 समय और उत्कृष्ट 3 या 4 समय है और उस व्याप्त क्षेत्र में ग्रहण निस्सरण आदि सम्पूर्ण क्रिया समाप्त करने का समय अंतर्मुहुर्त है एवं केवली समुद्घात का सम्पूर्ण काल आठ समय हैं।

6. मरण समुद्घात गत आत्म प्रदेशों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग होती है और उत्कृष्ट एक दिशा में असंख्य योजन की होती हैं। यह सीमा नये उत्पत्ति क्षेत्र के दूरी की अपेक्षा हैं।

7. वैक्रिय और तैजस समुद्घात में- जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट संख्याता योजन एक दिशा या विदिशा में। इसमें पुद्गल ग्रहण हेतु दंडाकार आत्म प्रदेश फैलाये जाते है उसकी लम्बाई की अपेक्षा यह सीमा हैं।

8. आहारक समुद्घात में- जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट एक दिशा में संख्याता योजन। यह सीमा भी दंड निकालने की अपेक्षा ही हैं।

9. केवली समुद्घात में- सम्पूर्ण लोक प्रमाण आत्म प्रदेशों की अवगाहना होती हैं।

10. इन समुद्घातों से छोड़े गये पुद्गल लोक में- प्रसारित होते है उनसे जिन जीवों की विराधना होती है, उन्हें किलामना पहुंचती है, उसकी क्रिया समुद्घात करने वाले जीव को लगती हैं। वे क्रियाएं पांच है- 1. कायिकी 2. अधिकरणिकी 3. प्राद्वेषिकी 4. परितापनिकी 5. प्राणातिपातिकी। इनका विषलेषण बावीसवें क्रिया पद में किया गया हैं। इन पांचों में भी किसी जीव से तीन किसी से चार और किसी से पांच क्रिया लगती है। उन जीवों को समुद्घात गत जीव से या अन्य जीवों से 3-4 या 5 क्रिया अपनी प्रवृति अनुसार लग सकती हैं।

11. नैरयिक की मरण समुद्घात जघन्य साधिक हजार योजन होती है और उत्कृष्ट असंख्य योजन होती हैं।

12. एकेन्द्रिय में मरण समुद्घात में उत्कृष्ट चार समय आत्म प्रदेशों को परिलक्षित क्षेत्र व्याप्त करने में लगता हैं। शेष 19 दंडक में उत्कृष्ट तीन समय ही लगता हैं।

13. वैक्रिय समुद्घात वायुकाय में जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग है शेष सभी में जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग हैं। नारकी और वायुकाय के यह एक दिशा में होती है शेष सभी के दिशा विदिशा में भी होती हैं।

14. तैजस समुद्घात सभी के जघन्य अंगुल के असंख्यात्वें भाग की होती हैं। तिर्यंच में एक दिशा में होती है मनुष्य देव में दिशा विदिशा में भी होती हैं।

15. वैक्रिय तैजस आहारक समुद्घात में 1-2-3 समय में आत्म प्रदेशों से जितना क्षेत्र व्याप्त करने पुद्गल ग्रहण निस्सरण होता है उतने क्षेत्र प्रमाण अवगाहना और उतने समय का काल यहां प्रस्तुत प्रकरण में बताया गया हैं। किन्तु इस प्रक्रिया के बाद जो रूप आदि बनाये जाते है एवं जो क्रिया की जाती है उन रूपों की क्रिया की अवगाहना आदि या स्थिति आदि नहीं बताई गई हैं। इससे भी स्पष्ट होता है आत्म प्रदेशों के अवगाहित क्षेत्र से बाहर निकलने की प्रक्रिया को प्रमुख रूप से समुद्घात माना गया हैं।

समुद्घातों का हार्द-

1. वेदनीय समुद्घात में- रोग वेदना आदि कष्टों से प्रपीड़ित अवस्था में आत्म प्रदेशों का दुःख जन्य स्पंदन होता हैं। इसमें वेदनीय कर्म का तीव्र उदय और निर्जरा होती है एवं परिणाम के अनुसार बंध होता हैं।

2. कषाय समुद्घात में- चारों कषायों की तीव्रता प्रचंडता आसक्ति से प्रभावित आत्म प्रदेशों में कम्पन्न-स्पंदन पैदा होता हैं। इसमें कषाय मोहनीय कर्म का उदय एवं निर्जरण होता है एवं तन्निमित्तक विविध कर्म बंध भी होता हैं।

3. मरण समुद्घात में- आगामी उत्पत्ति स्थल में आत्म प्रदेशों का आवागमन प्रारम्भ हो जाता हैं इसमें आयु कर्म का विशेष उदय एवं निर्जरण होता हैं।

4. वैक्रिय तैजस आहारक- ये तीनों समुद्घात प्राप्त लब्धि विशेष के द्वारा अपने-अपने प्रयोजनों से जीव स्वयं करता है एवं अपने प्रयोजन या कुतुहल को पूर्ण करता हैं। इसमें नाम कर्म का उदय एवं निर्जरण होता हैं।

5. इन छहों समुद्घात में तन्निमित्तक अल्पाधिक सांपरायिक कर्म बंध भी होता हैं।

6. केवली समुद्घात मोक्ष जाने के कुछ समय (मुहुर्त प्रमाण) पूर्व होती हैं। विषम मात्रा में रहे वेदनीय नाम गौत्र कर्मों को अवशेष आयु के साथ सम करने हेतु की जाती हैं। स्थूल व्यवहार दृष्टि से स्वतः होती है एवं सूक्ष्म सैद्धान्तिक दृष्टि से जीव करता है। इसमें वेदनीय नाम गौत्र कर्मों का विशिष्ट उदय एवं निर्जरण होता है। वीतरागी होने से केवल ईर्यावहि क्रिया का बंध होता हैं।

7. चारों अघाति कर्मों में जिनके स्थिति आदि की अपेक्षा विशेष विषमता नहीं होती हैं। वे केवली समुद्घात नहीं करते हैं।

8. केवली समुद्घात से निर्जीर्ण पुद्‌गल सम्पूर्ण लोक में व्याप्त होते हैं किन्तु वे अत्यन्त सूक्ष्म होते है छद्मस्थ जीव उनको वर्ण गंध रस स्पर्श से जान देख नहीं सकते ।

9. कोई देव तीव्र सुगंध के डिब्बे को खोलकर हाथ में लेकर तीन चुटकी जितनेसमय में 21 चक्कर जम्बूद्वीप के लगाकर आवे उससे व्याप्त गंध के पुद्गल अत्यन्त सूक्ष्म रूप में ऐसे बिखर जाते है कि छद्मस्थों के जानने देखने में विषयभूत नहीं बनते है वैसे ही केवली समुद्घात के सर्वलोक में व्याप्त पुद्गलों को समझना।

केवली समुद्घात और आयोजीकरण-

आयोजीकरण अंतर्मुहुर्त का होता हैं। मोक्ष के सन्मुख होने की प्रक्रिया या मोक्ष जाने के पूर्व की तैयारी को आयोजीकरण कहा जाता हैं। इस आयोजीकरण में मुख्यतः दो क्रियाएं होती हैं- (1) केवली समुद्घात (2) योग निरोध करने की क्रमिक प्रक्रिया।

यों तो तेरहवां गुणस्थान जिनको प्राप्त हो गया है वे मोक्ष के सन्मुख ही हैं, फिर भी अन्तिम तैयारी की प्रमुखता से यहां आयोजीकरण विवक्षित हैं। यह आयोजीकरण केवली समुद्घात से प्रारम्भ होकर योग निरोध की पूर्णता में समाप्त होता हैं। योग निरोध की प्रक्रिया पूर्ण होने पर, पूर्ण अयोगी जीव 14 वें गुणस्थान में पहुंचता हैं। वहां पर भी अत्यल्प समय-पांच लघु अक्षर उच्चारण जितने समय ठहर कर अवशेष कर्म क्षय कर के वह सिद्ध बुद्ध मुक्त होता हैं।

केवली समुद्घात और योग निरोध प्रक्रिया के बीच भी असंख्य समयों का अंतर्मुहुर्त काल रहता है जो कई मिनिटों का होता हैं। उस मध्यकाल में केवली द्वारा गमनागमन, शय्या संस्तारक लौटाना, वार्तालाप या देवों को मानसिक उत्तर देने की प्रक्रिया इत्यादि का प्रसंग भी बन सकते हैं।

कई जीवों को केवली समुद्घात नहीं होती है उनके भी उस प्रमाण के अंतर्मुहुर्त पूर्व से मोक्ष जाने का उपक्रम चालू हो जाता है अर्थात् आयोजीकरण होता हैं। योग निरोध के भी पूर्व की क्रमिक तैयारी होती है एवं फिर क्रमशः योग निरोध होता हैं।

केवली समुद्घात अवस्था में मन और वचन का योग नहीं होता हैं। काय योग में भी औदारिक, औदारिक मिश्र एवं कार्मण ये तीन काय योग होते हैं।

योगनिरोध प्रक्रिया- सर्व प्रथम मनयोग का निरोध किया जाता हैं। सन्नी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के प्रथम समय का जो मनोयोग होता है उससे भी असंख्यगुण हीन मनोयोग का प्रति समय निरोध करते हुए असंख्य समयों में पूर्ण रूप से मनोयोग का निरोध कर दिया जाता हैं।

उनके अनंतर वचन योग का निरोध किया जाता हैं। बेइन्द्रिय के पर्याप्त में जघन्य योग वाले के वचन योग से असंख्यगुण हीन वचन योग का प्रति समय निरोध किया जाता है एवं असंख्य समयों में पूर्णतया वचन योग का निरोध हो जाता हैं।

उसके बाद काय योग का निरोध किया जाता हैं । सूक्ष्म अपर्याप्त पनक (फूलन) प्रथम समयोत्पन्न का जो जघन्य काय योग होता है उससे असंख्यातगुण हीन काय योग का प्रति समय निरोध किया जाता हैं। अंसख्य समयों में पूर्णतया काय योग का निरोध हो जाता हैं।

इस प्रकार तीनों योगों का निरोध करके केवली शैलेषी अवस्था को प्राप्त करता हैं। इस शैलेषी अवस्था में आत्म प्रदेश 2/3 शरीर अवगाहित क्षेत्र में रहते हैं। काय योग के निरोध के साथ ही 1/3 भाग के आत्मप्रदेश संकुचित हो जाते है क्योंकि अयोगी होने के पूर्व ही आत्म प्रदेशों के संकुचित होने की क्रिया हो जाती हैं। शैलेषी अवस्था और अयोगी अवस्था में ऐसी प्रक्रिया संभव नहीं है और इसी में ही उनका अयोगित्व और शैलेषीपन सार्थक हैं।

फलितार्थ यह है कि तेरहवें गुणस्थान के अंत तक- 1. आत्म प्रदेशों को 1/3 संकोच 2. अयोगित्व 3. शैलेषी (निष्प्रकंप) अवस्था इन तीनों की प्राप्ति हो जाती हैं। इन तीनों अवस्था की प्राप्ति होने से ही 14 वां गुणस्थान प्रारम्भ होता है, ऐसा समझना चाहिये।

चौदहवें गुणस्थान में असंख्यगुण श्रेणी करके असंख्य कर्म स्कंधों का क्षय कर चार अघाती कर्मों का एक समय क्षय करके औदारिक तैजस कार्मण शरीर और सभी छोड़ने योग्य पर पदार्थों को केवली त्याग कर देते है और ऋजु श्रेणी से अस्पर्शद् गति से, साकारोपयोग में, एक समय में, अविग्रह गति से सिद्ध होते हैं। वे ऊर्ध्व लोकाग्र में पहुंच कर स्थित होते हैं।

सिद्ध अवस्था में जीव सदा के लिये कर्म रज रहित, शास्वत आत्म सुखों में लीन रहते हैं। उनका पुनः संसार में आगमन एवं जन्म मरण नहीं होता हैं। क्योंकि कर्म ही संसार का बीज है और वे सम्पूर्ण कर्मों को मूलतः क्षय करने से ही सिद्ध बनते हैं।

सिद्धों के सुख का स्वरूप आदि औपपातिक सूत्र में वर्णित है जिसके लिये आगम सारांश देखना चाहिये।

।। प्रज्ञापना सूत्र सारांश समाप्त ।।

नोट– इस सूत्रगत तत्त्वों की विस्तृत जानकारी के लिये आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से प्रकाशित विवेचन युक्त इस सूत्र का अध्ययन करना चाहिये।

व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र

प्रस्तावना-

मोक्ष मार्ग में प्रवेश करने का प्रथम चरण है सम्यग् ज्ञान। सम्यग् ज्ञान की उपलब्धि भव्यात्माओं को आप्त वाणी के श्रवण से एवं अध्ययन से ही प्राप्त होती है। अतः आगमों का स्वाध्याय करना आत्मोत्थान का एक प्रमुख अंग माना गया है। आगमों में इसे आभ्यंतर तप स्वरूप बताया गया है एवं श्रमण साधकों को सदा स्वाध्याय में तल्लीन रहने का निर्देश किया गया है यथा- ''सज्झायम्मि रओ सया'' -दशवै. अ. 8गा. 4.

तीर्थंकर भगवान के द्वारा उपदिष्ट एवं गणधर भगवन्तों द्वारा सूत्रित जैनागमों का स्वाध्याय वास्तव में भौतिकवाद एवं पुद्गलानंदी रूप आत्म अंधकार की अवस्था को एक अनुपम आत्म प्रकाश देने वाला है। आगम स्वाध्याय से उपलब्ध आत्मा का सम्यग् ज्ञान ही सम्यग् दर्शन और सम्यग् चारित्र को परिपुष्ट कर सुदृढ सबल और स्थिर बनाता है। जिससे आत्मा का विकास शीघ्र चरम सीमा तक पहुंच जाता है और वह परमात्म पद को प्राप्त कर लेता है।

प्रस्तुत सूत्र महात्म्य- वर्तमान में उपलब्ध जैनागम साहित्य में एक एक से बढकर अनेक अनुपम आगम ग्रन्थ है जो हम इन आगम सारांशों में अब तक संक्षेप में देख चुके हैं। उन सभी में प्रस्तुत आगम भगवती सूत्र का स्थान विशेष ही महत्वपूर्ण है। विद्धत् समाज में यदि कहीं भगवती सूत्र के पाठ का प्रमाण उपस्थित कर दिया जाय तो प्रतिवादी पर उसका विशेष प्रभाव पड़ता है और एक बार वह तर्क को छोड़ कर श्रद्धा से झुक जाता है। अथवा चर्चा करने में सहम जाता है, संकुचित हो जाता है।

महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ यह आगम अन्य सभी आगमों की अपेक्षा विशालकाय भी है। इसका अध्ययन कर पाना कठिन भी है। फिर भी महत्वशील एवं आकर्षक विषयों वाला होने से स्वाध्याय जगत में इस सूत्र का अध्ययन अध्यापन अत्यधिक गतिमान है।

नाम और कर्त्ता- यह पांचवां अंग सूत्र है। विशाल तत्त्वों का और अनेक विषयों का इसमें संक्षिप्त-विस्तृत व्याख्यान किया गया है इस कारण इसका मौलिक नाम व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र है। इसकी महत्ता के कारण ही इसके नाम के साथ भगवती शब्द का विशेषण रूप में प्रयोग हुआ है यथा- ''विवाहपण्णतीप भगवईए'' व्याख्या प्रज्ञप्ति भगवती। इसी नाम में से संक्षिप्त नाम प्रचार में आकर ''भगवती सूत्र'' नाम प्रसिद्ध हो गया है। इस सूत्र के रचयिता स्वयं गणधर प्रभु सुधर्मा स्वामी है। गौतम आदि गणधरों ने भी इस आगम की रचना की थी, किन्तु वे दसों गणधर अल्प काल में केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त कर मुक्त हो गये थे। अतः उनकी परंपरा वहीं समाप्त हो गई। अर्थात् दसों गणधरों की आगम परंपरा सुधर्मा स्वामी की परंपरा में विलीन हो गयी, समाविष्ट हो गई। अतः वर्तमान श्रुत परंपरा सुधर्मा गणधर की ही प्राप्त हो रही है।

विषय- यह आगम गद्य मय प्रशनोत्तर की मुख्यता वाला शास्त्र है। इसमें वर्णित विषय बहुत ही रोचक होने के साथ-साथ कहीं कहीं अत्यंत गम्भीर भी है अर्थात् इस ग्रन्थराज में धर्म कथाएं भी अनेकों हैं तो सूक्ष्म गणित के विषय से भरपूर तत्त्व ज्ञान भी जगह-जगह अंकित है। प्रज्ञापना सूत्र के समान इस सूत्र का विषय केवल तत्त्व मय ही नहीं है किन्तु अनेक विषयों के सुमेल से

सुसज्जित है। इसी कारण विशालकाय और गंभीर तत्त्व ज्ञान प्रमुख होते हुए भी इस आगम का अध्ययन अध्यापन समाज में विशेष श्रद्धा भाव एवं उत्साह पूर्वक किया जाता है।

1. परिमाण- इस आगम को 36000 प्रश्नों का संग्रह कहा गया है। वर्त्तमान में उपलब्ध यह आगम भी लिपि काल के अनेक प्रभावों से प्रभावित हो जाने से उक्त संख्या को व्यवस्थित प्रमाणित तो नहीं किया जा सकता है फिर भी अनेकानेक विषयों का संकलन इसमें आज भी उपलब्ध है जिससे ही 36000 प्रश्नों के समूह रूप में इसे सहर्ष स्वीकार एवं मान्य किया जाता है।

इस सूत्र के विभाग रूप अध्ययनों को 'शतक' इस संज्ञा से कहा गया है और प्रति विभाग रूप अध्ययनों को 'उद्देशक' इस संज्ञा से कहा गया है। 32 शतक तक ये दो विभाग है। उसके बाद शतक, अंतर शतक और उद्देशक यों तीन विभाग भी किये गये हैं। यों सम्पूर्ण इस सूत्र में 41 शतक हैं, और अंतर शतक की अपेक्षा कुल 138शतक है। पंद्रहवें शतक में उद्देशक नहीं है। शेष चालीस शतकों में 10, 11, 12, 34, 196आदि उद्देशक संख्या है। सब मिला कर 1923 उद्देशक उपलब्ध है। इस प्रकार यह सम्पूर्ण सूत्र 15752 श्लोक परिमाण माना गया है। ब्यावर से प्रकाशित भगवती सूत्र भाग 4 प्रस्तावना में उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी ने सभी शतकों के अक्षरों की गणना से 16320 श्लोक परिमाण होना बताया है।

सूत्र के संक्षिप्त पाठ- विशाल काय इस महान ग्रन्थराज में संक्षिप्त पाठ भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। अर्थात् अन्य अंग शास्त्रों, अंग बाह्य शास्त्रों में वर्णित पाठों का अतिदेश किया गया है भलावण दी गई है। कहीं कहीं तो इसी सूत्र के पूर्व के अध्ययनों में अर्थात शतकों में आये वर्णनों की भलावण दी गई है। उन सब संक्षिप्त स्थलों का संकलन करके एक महत्व पूर्ण सूची तैयार की गई है जो विषय सूची के साथ संलग्न है। यदि उन संक्षिप्त सब पाठों को पूर्ण कर दिया जाय तो इस विशालकाय ग्रन्थ का रूप और भी अधिक विशाल हो जाता है। इसलिये लेखन काल में पूर्वाचार्यों ने एक सूत्र के विषय का दूसरे सूत्र के वर्णन से साम्य देखकर अतिदेश कर दिया है। ऐसा करते हुए भी आगम विषय को पूर्ण रूप से सुरक्षित रखने का लक्ष्य भी रखा है। विशेष करके औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, निरियावलिका, नंदी एवं अनुयोग द्वार आदि अंग बाह्य आगमों की भलावण ही अधिक है।

विशेष-विषय-सूची

उद्देशक शतक पहला		भलावण
1.	नमस्करणीय एवं मंगल पाठ।	
	किया जाता हुआ कार्य किया।	
	कर्म पुद्गल ग्रहण, उदीरणा, निर्जरा।	प्रज्ञापना सूत्र
	आत्मारंभी-परारंभी इहभविक-परभविक।	
	संवृत की मुक्ति। अकाम निर्जरा से देवगति।	
2.	कर्म फल अवश्य। संसार संचिट्ठण।	
	शिष्य की श्रद्धा प्रतिपति रूप उपसंहार।	
3.	सर्व से सर्व बंध।	
	कांक्षा मोहनीय एवं दृढ श्रद्धा का वाक्य।	
	कर्म निमित्त प्रमाद, स्वयं कर्ता। एकेन्द्रिय के कांक्षामोह कैसे ?	
	श्रमणों के कांक्षा मोहनीय, 13 कारण और समाधान।	
4.	मोहनीय कर्म निमित्तक उन्नति एवं अवनति।	
	कर्म फल में अपवाद। अलमस्तु।	प्रज्ञापना विपाक सूत्र
5	24 दंडक में जीवों के आवास, स्थिति स्थान,	
	अवगाहना स्थान, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, योग, उपयोग।	जीवाजिवाभिगम सूत्र
6.	स्वयं करने से पाप लगे।	
7.	कूकड़ी पहले या अंडा [रोहा अणगार] लोक संस्थिति।	
	जल एवं नावा के समान जीव- पुद्गल का संबन्ध।	
	स्नेह काय वर्णन एवं भ्रमित परंपरा।	छेदसूत्र दशाश्रुत स्कंध
8.	आयु बंध एक बार। बाल, पंडित आदि का आयु बंध।	
	मृगवध आदि से क्रिया-विकल्प। सिद्ध अवीर्य।	
9.	जीव हल्का भारी आदि। अगुरुलघु गुरुलघु द्रव्य।	
	एक आयुष्य का उपभोग। कालास्यवेशि अणगार एवं स्थविर श्रमण।	
	श्रमणों की उलझन युक्त स्थिति। अव्रतक्रिया।	
	आधाकर्मी सेवन से संसार भ्रमण-अनुप्रेक्षा।	
	प्रासुक आहार का उत्तम फल। अस्थिर स्वभावी विराधक।	
10.	मिथ्या मान्यताएं एवं सत्य।	

दूसरा शतक

1-4	श्वासोश्वास, एकेन्द्रिय और वायु के भी।	
	प्राण भूत आदि अवस्था अणगार के भी।	
	खंदक अणगार पिंगल श्रावक	
5-6-7	परिचारणा।	
	गर्भ काल - बादल, तिर्यञ्च, मनुष्य का।	
	योनि काल, माता-पिता, पुत्र संख्या उत्कृष्ट।	
	तुंगियापुरी के श्रावक श्रमण गुण।	नंदी सूत्र
	कयवकलिकम्मा।	छेद सूत्र
	संयम तप का फल। गौतम स्वामी के पात्र प्रतिलेखन !	
	पर्युपासना का फल-श्रवण आदि। गर्म पानी का झरना।	
8-9	चमरचंचा राजधानी आदि।	राजप्रश्नीय
10.	पंचास्तिकाय के 25 बोल [षड द्रव्य में काल को छोड़कर]	जीवाजिवाभिगम सूत्र

तीसरा शतक-

1.	देवों की वैक्रिय शक्ति।	
	तिष्यगुप्त, कुरूदत्त पुत्र अणगार।	
	ईशानेन्द्र-तामली तापस। सनत्कुमारेन्द्र का न्याय एवं मोक्ष।	
2.	असुरकुमार चमरेन्द्र उत्पात।	
3.	क्रिया- मंडित पुत्र अणगार। प्रमत्त अप्रमत्त संयंत का काल।	
4-5	अणगार का रूप देखना एवं वैक्रिय बनाना।	
	मायी अमायी विकुर्वणा।	
6.	विभंग ज्ञानी की भ्रमणा।	
7 से 10	लोकपाल वर्णन एवं उनके अधिकृत अधिपति देव।	

चौथा शतक-

1-10	ईशानेन्द्र के लोकपाल, राजधानी।	

पांचवां शतक-

1.	सूर्य उदय अस्त। दिन रात। वर्ष प्रारम्भ आदि।	
2.	पुरोवात आदि वायु। अचित पुद्गल किसका शरीर।	
3-4	हजारों आयु साथ में। शब्द श्रवण, हंसना, निंद्रा।	
	हरिणेगमेषी देव की सफाई, बारीकी। अतिमुक्त कुमार [एवंतामुनि]	अन्तकृत सूत्र
	मन से प्रश्न और उत्तर, दो देव।	

नो संयत देव, देव भाषा, चरम शरीरी का ज्ञान। चार प्रमाण।
अणुत्तर देव आलाप संलाप। केवली का अनिंद्रिय ज्ञान- 'आयाणेहि'।
एक घडे से हजार घडे।

5. कुलकर चक्रवर्ती आदि वर्णन। एवंभूत कर्म अनेवं भूत कर्म।

6. दीर्घायु अल्पायु बंध।
खोई गई, बेची गई वस्तु से क्रिया। धनुष बाण से क्रिया।
आधाकर्म प्ररूपण। ठसा ठस नरक क्षेत्र।

7. आचार्य उपध्याय की आराधना विराधना।
कंपमान-अकंपमान पुद्गल। पुद्गल स्पर्शनादि एवं उनकी कायस्थिति।
जीवों का आरंभ परिग्रह। हेतु अहेतु।

8. सप्रदेश-अप्रदेश पुद्गल, नियमा भजना
वर्धमान, हायमान, अवस्थित जीव। सोवचय- सावचय। प्रज्ञापना

9-10 राजगृह नगर किसे कहते हैं ? अंधकार प्रकाश। काल ज्ञान।
तीर्थंकर परीक्षा [स्थविरों द्वारा]। चन्द्र वर्णन।

छट्ठा शतक-

1-2 वेदना निर्जरा। करण चार।

3. वस्त्र आत्मा-कर्म तुलना। कर्म बंध स्थिति, अबाधाकाल। प्रज्ञापना
50 बोल में कर्म बंध नियमा भजना 15 द्वार।

4. कालादेश से सप्रदेश-अप्रदेश भंग। प्रत्याख्यान करना, जानना एवं आयु।

5. तमस्काय, कृष्ण राजि, लोकांतिक।

6. मरणांतिक समुद्घात दुबारा

7. धान्य आदि की उम्र 3-5-7 वर्ष।
कालमान-शीर्ष प्रहेलिका आदि। 6आरे।

8. नरक देवलोक के नीचे।
छः प्रकार का आयुष्य भेदन [टूटना] क्षुभित अक्षुभित जल, समुद्रों के नाम।

9. बांधतो बांधे। वैक्रिय से वर्णादि का परिणमन।
विशुद्ध लेशी, अविशुद्ध लेशी का ज्ञान।

10. जीव का सुख दुख जानना। जीव ज्ञान। वेदना, आहार, परिमित ज्ञान।

सातवां शतक-

1. तीन समय अनाहारक, अल्पाहारी, लोक संस्थान।
उपाश्रय में सामायिक, पृथ्वी के साथ त्रस घात।
श्रमण दान फल, कर्म रहित की गति।
इंगाल आदि दोष, मांडला के दोष त्याग स्वरूप।

2.	सुपच्चक्खाण आदि, दस पच्चक्खाण।	
3-4-5	वनस्पति बहु आहारी, उष्ण योनिक।	
	मूल स्कंध फल बीज आदि परस्पर सम्बन्ध एवं आहार।	
	वेदन और निर्जरा कर्म की एवं अकर्म की।	
6.	वेदना [सुख-दुख], अल्प, अधिक, एकांत सुख।	
	आयु बंध अनाभोग में। प्राणी अनुकम्पा से सुख प्राप्ति। छट्ठे आरे का वर्णन।	
7.	इर्यावहि एवं सांपरायिक क्रिया, कामी, भोगी, अकाम वेदना।	
8.	दस प्रकार की नरक वेदना, अव्रत की क्रिया समान।	
9.	महाशिला कंटक, रथ मूसल संग्राम !	उपांग सूत्र
10.	कालोदाई अस्तिकाय।	
	अग्नि जलाने बुझाने में पाप की तुलना। तेजोलेश्या के पुद्गल अचित।	

आठवां शतक-

1.	प्रयोग, विश्वसा और मिश्र परिणत पुद्गल।	
2.	आशीविष कर्म और जाती से, विष का सामर्थ्य।	
	छद्मस्थ के नहीं जानने देखने के दस बोल।	अनुयोग द्वार
	ज्ञान अज्ञान वर्णन-ज्ञान लब्धि।	जीवाजीवाभिगम सूत्र
3-4	संख्यात जीवी वृक्ष	प्रज्ञापना
	कटे हुए अवयव के बीच में आत्म प्रदेश।	
5.	सामायिक में धन एवं स्त्री का त्याग कितना कैसा ?	
	49 भंग। कर्मादान त्यागी श्रावक। आजीविकोपासक।	
6.	कल्पनीय अकल्पनीय आहार देने के फल।	
	स्थविर का आहार, आलोचना आराधना के विकल्प ! 3, 4, 5 क्रियाएं।	
7.	गृहस्थ से दी भिक्षा साधु की कब होती ?	
	सप्रयोजन एवं यतना के कारण गमनागमन आराधना में !	
	'चलमाणे चलिए' सिद्धान्त की पुष्टि। गति प्रपात प्रयोग गति आदि।	प्रज्ञापना
8.	प्रत्यनीक छः। पांच व्यवहार !	
	इर्यावहि बंध और भंग। संपरायबंध और भंग !	व्यवहार सूत्र
	परीषहों का विश्लेषण एवं कर्म संबंध के साथ गुणस्थान।	
	लेश्या प्रतिघात के कारण से सूर्य का नजदीक दूर दिखना।	
9.	विश्वसा बंध आदि के उदाहरण।	
	पांच शरीर के देशबंध - सर्वबंध की स्थिति, अंतर, अल्पबहुत्व।	

10.	जघन्य आदि आराधनाएं। द्रव्य और देश पुद्गल भंग। कर्म में कर्म की भजना नियमा। जो भी पुद्गल और पुद्गली है।	

नवमां शतक-

1 से 30	**जम्बूद्वीप का सम्पूर्ण वर्णन**	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
	ज्योतिषियों का वर्णन	जीवाभिगम
	अन्तर्द्वीपों का वर्णन	जीवाभिगम
31.	असोच्चा, सोचा केवली।	
32.	गांगये अणगार - विस्तृत प्रवेशनक भंग। पद विकल्प, भंग परिमाण एवं विधियें। जीव से लेकर असंख्य जीव और उत्कृष्ट जीव तक। गांगेय अणगार की श्रद्धा, समर्पण एवं मुक्ति।	
33.	भगवान के माता पिता दीक्षा एवं मोक्ष। देवानंदा, ऋषभदत्त। भगवान का जमाता जमालीकुमार। दीक्षा संवाद।	
34.	एक मनुष्य तिर्यञ्च के साथ अनेक की हिंसा, अजगार से अनंत की। श्वासोश्वास से क्रिया, प्रचंड वायु को क्रिया।	

दसवां शतक-

1.	दस दिशाओं का वर्णन, जीव के देश आदि। वीचि पथ-कषाय भाव एवं क्रिया।	
2.	पीछे आलोचना कर लूंगा इत्यादि सोचे तो विराधक।	
3.	देव देवी गमन शक्ति, उल्लंघन शक्ति घोड़े के खू-खू. आवाज, प्रज्ञापनी भाषा।	
4.	त्रायत्रिंसक देव - पूर्व भव।	
5.	अग्रमहिषी-परिवार।	
6.	शकेन्द्र जन्म वर्णन सूर्याभ के समान।	राजप्रश्नीय सूत्र
7-34.	उत्तरदिशा के 28 अन्तरद्वीप	जीवाभिगम

ग्यारहवां शतक

1-8	उत्पल वर्णन, शालुक आदि।	
9.	शिव राजर्षि, विभंग, दीक्षा, मुक्ति। गंगा किनारे अनेक वानप्रस्थ सन्यासी वर्णन।	
10.	लोक, अलोक तीन लोक में जीव आदि।	

एक आकाश प्रदेश में अनेक पुद्गल - नर्तकी का दृष्टांत।

11. सुदर्शन श्रमणोपासक, महाबल पूर्व भव।

12. ऋषिभद्र पुत्र, पुद्गल परिव्राजक, विभंग, दीक्षा, मोक्ष।

बारहवां शतक

1. शंख- पुष्कली श्रावक, खाते पीते पक्खी पौषध।

2-3 जयंति श्रमणोपासिका, 15 प्रश्न, दीक्षा, मोक्ष।

4. पुद्गल स्कंधों के विभाग और भंग।
पुद्गल परावर्तन के सात प्रकार एवं विस्तार।

5. रूपी अरूपी बोलों का संग्रह। क्रोध आदि के पर्यायवाची शब्द।

6. राहु विमान सम्बन्धी वर्णन। देव के काम भोग सुख का वर्णन उपमा द्वारा।

7. भव भ्रमण और बकरियों के बाडे का दृष्टांत।
माता पिता आदि विविध सम्बन्ध अनेक बार या अनंती वार।

8. देव की तिर्यञ्च भव में पूजा एवं फिर मोक्ष।
बंदर मेंढ़क आदि भी नरक में उत्कृष्ट स्थिति पा सके।

9. पांच देवों का वर्णन-देवाधिदेव आदि।

10. आठ आत्मा का स्वरूप एवं परस्पर संयोग।
पुद्गल भी आत्मा अनात्मा और भंग !

तेरहवां शतक

1. उपजने, मरने एवं रहने वाले जीवों की संख्या
और उनमें लेश्या आदि 38बोल।

2. उपयोग सम्बन्धी गत-आगत।

3-4 नरक क्षेत्र गत पृथ्वी आदि जीव के महावेदना आदि।
लोक, तीनों लोक के मध्य। पंचास्तिकाय के गुण।
अस्तिकाय के आपस में स्पर्श, पुद्गल से स्पर्श भंग।

5-6 चमर चंचा आवास।
उदाई राजा संयम ग्रहण और मोक्ष। अभिचि कुमार विराधक।

7. मन, भाषा, शरीर आत्मा या अन्य। इनके स्वरूप।
मरण के पांच प्रकार एवं 74 भेद आवीचि आदि।

8-9-10 अणगार की वैक्रिय शक्ति उड़ना आदि।

चौदहवां शतक

1. देव स्थान से बीच के परिणाम में आयु बंध।
   विग्रह गति में एकेन्द्रिय को चार समय।
2. यक्षावेश चार गति में। दोनों प्रकार के उन्माद।
   देव वृष्टि की विधि। तमस्काय देव क्यों करे।
3. चारों गति में शिष्टाचार सन्मान वर्णन। अवगणना. नहीं।
4. जीव एवं पुद्गल का परिणमन, शास्वत - अशास्वत।
5. 24 दंडक के जीव अग्नि के बीच कब कैसे ?
   इष्ट अनिष्ट शब्द रूप आदि चारों गति में।
6. वैमानिक इन्द्रों के परिचारणा के पूर्व की विधि विधान।
7. गौतम स्वामी के मनोगत संकल्प जानकर भगवान द्वारा तुल्यता का वर्णन।
   संथारे में काल करने पर आशक्ति से आहार।
   लवसत्तम देव एवं अणुत्तर देव के मुक्त होने की कल्पना।

8 नरक पृथ्वियों के अंतर और विमानों में अंतर।
   प्रत्यक्ष दिखने वाले शाल वृक्ष और उम्बर वृक्ष के भव।
   अम्बडश्रावक। अव्याबाध देव, जृम्भक देव।

9. कर्म लेश्या = भाव लेश्या। सूर्य प्रकाश
   सूर्य प्रकाश = द्रव्य लेश्या।
   नारकी देवों के पुद्गल संयोग, देव और हजारों रूप, भाषा।
   सूर्य विमान के रत्न, आतप नाम कर्म शुभ-सूर्य शुभ।
   अणगार सुख को देव सुख उल्लंघन की उपमा।
10. केवली और सिद्ध में अंतर।

पंद्रहवां शतक

गौशालक वर्णन, विस्तृत कथानक।
कथानक पर चिंतन, ज्ञातव्य, समाधान।

शतक-16

1. वायु उत्पत्ति, हिंसा, अग्नि और क्रिया।
2. जरा शोक, पांच अवग्रह।
   देव- इन्द्र की भाषा, खुले मुंह से बोली गई सावध भाषा।
3. वैद्य द्वारा नाशिका के अर्श का छेदन एवं क्रिया।
4. तप से कर्म क्षय और नरक वेदना से कर्म क्षय की तुलना वर्षो में।
   'अण्णगिलाय' का सही अर्थ चिंतन।

	वृद्ध पुरुष और चिकनी गंठीली लकड़ी आदि दृष्टांत।
5.	उल्लूकातीर नगर, शक्रेन्द्र। गंगदत्त कार्तिकसेठ।
	पूर्वभव। देवलोक में तात्विक चर्चा-विवाद। 'चल माणे चलिये'।
6.	स्वप्न वर्णन, विशिष्ट स्वप्न, कुछ स्वप्न फल।
7-8	चरमांत स्थानों में जीव आदि। परमाणु की स्वतः गतिसीमा।
	वर्षा जानने हेतु हाथ बाहर करना, लोकांत से बाहर हाथ आदि।
9-14	बलीन्द्र (वैरोचनेन्द्र) के उत्पात पर्वत राजधानी आदि वर्णन।
	द्वीप, दिशा, उदधि, स्तनित कुमार देवों का वर्णन।

शतक-17

1.	कोणिक राजा के उदाई एवं भूतानंद दो हस्ती रत्नजल,	
	असुरकुमार से आये, नरक में गये। वृक्ष हिलाना,	
	शरीर बनाना और क्रिया सम्बन्ध। 6 भाव वर्णन।	नंदी सूत्र अनुयोग द्वार
2.	संयत-असंयतजीव का धर्म स्थिति आदि होना।	
	प्रकृति गुण से जीव भिन्न-अभिन्न	
	देव नहीं दिखने वाले रूप की विक्रिया कर सके।	
3.	शैलेशी अवस्था में गमनादि। कंपन्न प्रकार।	
	संवेग आदि 49 बोलों का अंतिम फल मोक्ष।	
4-5.	पाप और कर्म बंध-दिशा, देश, प्रदेशादि से।	
	स्वकृत वेदना एवं स्व कर्म जन्य। ईशानेन्द्र वर्णन।	
6-17	समवहत असमवहत, आहार-उत्पात। नागकुमार आदि।	

शतक - 18

1.	पढम, अपढम जीवों का वर्णन, चार्ट।
	चरम अचरम जीवों का वर्णन, चार्ट।
2.	कार्तिक सेठ वर्णन, 1008के साथ दीक्षा, शक्रेन्द्र बना।
3.	कृष्ण लेशी पृथ्वी आदि एक भव से मोक्ष।
	चरम निर्जरा पुद्गल - जाने, देखे, आहारे।
	मार्कंदिय पुत्र अणगार के प्रश्न और समाधान
4.	जीव के उपभोग अनुपभोग।
	युग्म स्वरूप और दंडक में युग्म संख्या। अग्निकाय।
5.	अलंकृत- अणलंकृत देव सुंदर-असुंदर।
	हलुकर्मी, महाकर्मी, समकर्मी।
	आयु वेदन अंत तक एक भव का। देवों के विपरीत विकुर्वणा।

6. पुद्गलों में वर्णादि व्यवहार से एक, और निश्चय से अनेक।

7. केवली को यक्षावेश नहीं, तीन प्रकार की उपधि, परिग्रह।
मद्रुक श्रावक-प्रत्यक्ष देखने के तर्क का जवाब।
देव पुण्य क्षय करने का अनुपात।

8. श्रमण के पाव के नीचे अनायास कूकड़े, चिड़ी आदि का बच्चा।
अन्य तीर्थिक द्वारा आक्षेपात्मक चर्चा गौतम स्वामी से।
परमाणु को देखना चार ज्ञान से नहीं। श्रुत से जान सके।
जानने देखने का समय अलग।

9. भवी द्रव्य नारकी आदि कौन होते? उनकी स्थिति।

10. अणगार वैक्रिय शक्ति से तलवार की धार पर चले, अग्नि में चले।
व्याप्य व्यापक छोटी बडी वस्तु। वर्णादि 20 बोल पुद्गल।
सौमिल ब्राह्मण, भगवान से चर्चा, श्रावक व्रत धारण एवं आराधन।

शतक-19

1-3. साधारण शरीर बनाना। उन जीवों के लेश्या आदि।
अवगाहना की अल्पबहुत्व 44 बोल।
पृथ्वीकाय आदि की वेदना-प्रहार के दृष्टांत से समझाइस।

4. आश्रव, क्रिया, वेदना, निर्जरा के 16 भंग-दंडकों में।

5. चरम नैरयिक आदि अल्पकर्म, महाकर्म। व्यक्त अव्यक्त वेदना

6-10. ज्योतिषीविमान स्फटिक रत्नों के। अन्य देवों के भवन, नगर, विमान।
जीव निवृति - 563।
कर्म निवृति - 148 निवृति और करण स्वरूप एवं प्रकार।

शतक-20

1-4 अस्तिकायों के पर्याय नाम।
आहार और मरण का ज्ञान नहीं एकेन्द्रियादि को।

5. परमाणु आदि में वर्ण आदि के भंग - चार्ट।
द्रव्य क्षेत्र आदि परमाणु एवं स्वरूप।

6-7-8 काल परिवर्तन भरत आदि में, पंच महाव्रत, 4 याम,
तीर्थंकर, जिनांतर, ज्ञान विच्छेद, शासन काल, तीर्थ, प्रवचनी।

9. विद्या चारण, जंघा चारण मुनि, चैत्य प्रक्षिप्त पाठ।

10. सोपक्रमी-निरूपक्रमी आयुष्य वर्णन। आत्म घात-उपक्रम।
कतिसंचय अकतिसंचय, छक्क, बारस, चौरासी सम्मर्जित।

शतक- 21-22-23

वनस्पतियों के दस भेदों में जीवोत्पत्ति एवं अन्य वर्णन !

शतक- 24

24 दंडक का गम्मा वर्णन एवं कालादेश चार्ट।

शतक- 25

1 योग की अल्पबहुत्व 28बोल में और 30 बोल में

2. स्थित अस्थित पुद्गल ग्रहण-दिशा सम्बन्ध। श्वासोश्वास।

3. संस्थान 6 वर्णन एवं युग्म सम्बन्ध, चार्ट।

श्रेणियां लोक अलोक में युग्म सम्बन्ध। सात प्रकार की श्रेणियां।

4. युग्म वर्णन-द्रव्यों में, जीवों में द्रव्य से प्रदेश से युग्म ज्ञान।

ओघादेशविधानादेश। परमाणु आदि की अल्पबहुत्वें।

पुद्गल युग्म एवं उनकी अवगाहना आदि। सार्द्ध-अनर्द्ध।

सकंप निष्कंप एवं अल्प- बहुत्व। देश कंप सर्व कंप।

रूचक प्रदेश-चार द्रव्यों के।

5. संख्या ज्ञान। शीर्ष प्रहेलिका तक 46और आगे 194 तक।

निगोदस्वरूप। आचारांग सूत्र

6. निर्ग्रन्थ के 6प्रकार, 36द्वारों पर वर्णन। चार्ट। उपांग सूत्र, अनुतरोपातिक

7 संयत के पांच प्रकार, 36द्वारों से वर्णन। चार्ट।

10 कल्पों का स्पष्टीकरण - पुरूष ज्येष्ठ कल्प विचारणा प्रायश्चित, तप भेद छेद सूत्र, ओपपातिक

8-12 आयु- भव- स्थिति क्षय का अर्थ। विग्रह गति समय।

शतक- 26

1. 49 बोल पर बंधी (कर्म बंध) के भंग का विस्तार। चार्ट।

शतक- 27-28-29

कर्म करना, सम्मार्जन- संकलन करना, कर्म वेदन।

शतक- 30

चार समवसरण, 47 बोलों में बंधी वर्णन। चार्ट। आयु बंध।

शतक- 31-32

क्षुल्लक कृतयुग्म, उत्पन्न और उद्वर्तन-मरण से वर्णन।

शतक- 33 एकेन्द्रिय

एकेन्द्रिय के लेश्या, कर्म, भवी आदि से अवांतर शतक एवं उद्देशक - विकल्प।

शतक- 34 [श्रेणी शतक]

1. चरमांत से चरमांत में उत्पति और वर्णादि।
सात श्रेणी से गमन में समय।
उम्र एवं उत्पन्न की चौभंगी एवं कर्म बंध की मात्रा।
लेश्या, भवी, अभवी के वर्णन एवं अवांतर शतक उद्देशक संख्या।

शतक- 35 [एकेन्द्रिय महायुग्म शतक]-

महायुग्म स्वरूप एवं संख्या ज्ञान, उन पर 33 द्वारों से
वर्णन, अवांतर शतक एवं उद्देशक

शतक- 36से 39 [महायुग्म]

तीन विकलेन्द्रिय और असन्नि पंचेन्द्रिय के महायुग्म सम्बन्धी
33 द्वारों का वर्णन अंतर शतक - उद्देशक हिसाब।

शतक- 40 [महायुग्म]

सन्नी पंचेन्द्रिय, आगत, कर्म बंध, द्वारों में णाणता
विशेषताएं। अंतरशतक उद्देशक हिसाब।

शतक- 41 [राशि युग्म]

चार प्रकार के राशि युग्म। सांतर निरंतर उत्पति।
संयम असंयम से जन्म मरण, एवं जीवन, अंतर शतक उद्देशकहिसाब।
उपसंहार-शतक उद्देशकों की सूचना आदि।

भगवती सूत्र के मौलिक अतिदेश भलावण संग्रह

शतक	उद्देशक	विषय	भलावण स्थल
1	1	स्थिति	प्रज्ञा. पद. 2
1	1	आहार	प्रज्ञा. पद 28
1	2	लेश्या वर्णन	प्रज्ञ. पद 17 उद्दे. 1-2
1	2	अंतक्रिया, देवोत्पत्ति के 14 बोल असन्नि आयु	प्रज्ञा. पद 20
1	4	कर्म प्रकृति	प्रज्ञा. पद 23 उद्दे. 1
1	10	उत्पात विरह	प्रज्ञा. पद 6
2	2	समुद्घात सम्पूर्ण वर्णन	प्रज्ञा. पद 36
2	3	नरक पृथ्वी पिंड सम्पूर्ण वर्णन	जीवाभिगम प्र. 3 उद्दे. 1
2	4	इन्द्रिय वर्णन	प्रज्ञा. पद 15 उद्देशक 1
2	6	भाषा सम्बन्धी संपूर्ण वर्णन	प्रज्ञा. पद 11

2	7	देवों के स्थान	प्रज्ञा. पद 2
2	7	विमानों सम्बन्धी वर्णन	जीवाभि वैमानिक उद्देशक
2	8	सुधर्मा सभाजन्माभिषेक	राजप्रश्नीय सूत्र
2	9	समय क्षेत्र वर्णन	जीवाभिगम सूत्र
3	3	लवण समुद्र वेला वृद्धि	जीवाभिगम सूत्र
3	9,10	इन्द्रिय विषय, देवों की तीन परिषद	जीवाभिगम सूत्र
4	9	लेश्या	प्रज्ञा. पद. 17 उद्दे. 3-4
5	4	चार प्रमाण	अनुयोग द्वार सूत्र
5	5	कुलकर, तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि वर्णन	समवायांग
5	8	अवस्थित काल (निरूवचय)	प्रज्ञा. प. 6
5	10	चन्द्र वर्णन	श. 5 उद्देशक 1
6	2	आहार वर्णन	प्रज्ञा. पद 28 उद्देश. 1
6	3	अल्पाबहुत्व	प्रज्ञा. प. 3
6	9	कर्म बांधतो बांधे	प्रज्ञा. पद 24
7	5	तिर्यञ्च उद्देशक	जीवाभिगम 3 प्रति
7	5	संयत वर्णन	प्रज्ञापना पद 32
8	2	ज्ञान पांच वर्णन	राज प्रश्नीय सूत्र
8	3	संख्यात जीवी आदि वृक्ष	प्रज्ञा. प. 1
8	3	चरम अचरम	प्रज्ञापना पद 10
8	4	क्रिया वर्णन	प्रज्ञा. पद. 22
8	7	गति प्रपात	प्रज्ञा. पद.16
8	8	ज्योतिषी वर्णन	जीवाभिगम
8	1-30	जम्बूद्वीप वर्णन, ज्योतिषी वर्णन, अंतरद्वीप वर्णन	जम्बू, जीवा.
9	32	केवलज्ञान का विषय (शब्द उद्देशक)	श. 6 उद्दे. 4
9	32	लोक स्वरूप	शतक 5
10	1	अवगाहना संस्थान	प्रज्ञापना पद 21
10	7-34	अंतरद्वीपज उत्तर दिशा के	श. 9 उद्देशक 30
11	10	लोक संस्थान	श.7 उद्दे. 1
11	10	लोक में जीव, जीव के देश आदि	श. 2 उद्दे. अस्तिकाय
12	3	नरक पृथ्वियों का वर्णन	जीवाभिगम
13	3	परिचारणा वर्णन	प्रज्ञा. पद 34
13	4	नरक सम्बन्धी विस्तृत वर्णन	प्रज्ञापना पद 28

13	5	आहार वर्णन	जीवाभिगम
13	8	कर्म प्रकृति	प्रज्ञापना पद 23
13	9	अणगार और वैक्रिय, इच्छित रूप, उडना आदि	श. 3 उद्दे. 4
13	10	छाद्मस्थिक समुद्घात	प्रज्ञापना पद 36
16	3	कर्म प्रकृति	प्रज्ञा. पद 23 से 27
16	7	उपयोग एवं पश्यत्ता वर्णन	प्रज्ञा. पद 29-30
19	9	बलीन्द्र का वर्णन चमरेन्द्र के समान	श. 2 उद्दे. 8
16	10	अवधिज्ञान	प्रज्ञा. पद 33, नंदी सूत्र
16	11-14	द्वीपकुमार आदि का समान आहरादि	श. 1 उद्दे. 2
17	1	भाव 6	अनुयोग द्वार
17	4	पाप से कर्म बंध, दिशा, देश, प्रदेश आदि	श. 1 उद्दे. 6
17	5	ईशानेन्द्र वर्णन	6श. 10 उद्देशक 6
17	12	एकेन्द्रिय का समान आहारादि	श. 1 उद्दे. 2
17	13-17	नागकुमार आदि पांच	श. 16उद्देशक 11
18	3	चरम निर्जरा पुद्गल जाणे, देखे, आहारे	प्रज्ञा. पद 15
18	4	कषाय वर्णन	प्रज्ञा. पद 14
19	1	लेश्या वर्णन	प्रज्ञा. पद 17 उद्दे. 4
19	5	व्यक्त अव्यक्त वेदना	प्रज्ञा. पद 35
19	6	द्वीप समुद्र	जीवाभिगम
19	10	व्यंतर देवों का सम आहार आदि	श. 16 उद्दे. 11
20	4	इंद्रिय उपचय	प्रज्ञा. पद 15
20	5	वर्णादि	श. 18 उद्दे. 6
20	6	आहार एवं उत्पत्ति	श. 17 उद्दे. 6
25	3	द्वादशांग गणिपिटक	नंदी सूत्र
25	3	अल्पाबहुत्वें	प्रज्ञा. पद 3
25	4	दंडक में कृतयुग्म आदि	श. 18उ. 4
25	5	पर्यव वर्णन	प्रज्ञा. पद 5
25	5	काल वर्णन	अनुयोग द्वार सूत्र
25	5	6भाव	श. 17 उद्दे. 1 एवं अनुयोग द्वार सूत्र
32	-	जीव उत्पन्न	प्रज्ञा. पद 6एवं श. 25 उद्दे. 8

व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र

प्रथम शतक

प्रथम उद्देशक–

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।
एसो पंच णमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवई मंगलं ।। 8 ।।

1. जैन सिद्धांत के अनुसार आध्यात्म लोक के समस्त नमस्करणीय पंचपरमेष्ठी में समाविष्ट है अर्थात् आत्म साधना के क्षेत्र में इन पंच परमेष्ठी को ही नमस्करणीय माना गया है। इसके अतिरिक्त कोई भी नमस्करणीय साधना क्षेत्र में नहीं माना गया है। जो भी है उन सभी का इनमें समावेश हो जाता है।

माता-पिता, अध्यापक, बुजुर्ग स्वामी, नेता, कुल, देव आदि लोक व्यवहार के क्षेत्र में नमस्करणीय है अतः उन्हें आध्यात्म क्षेत्र से अलग समझना चाहिये।

श्रुत-देवता, ब्राह्मी लिपि, वेरोट्या-देवी अथवा लक्ष्मी, सरस्वती, ह्री, श्री देवी आदि का नमस्कार उच्चारण लौकिक भावनाओं से, ऐहिक चाहना के लक्ष्य से किया जाता है। आध्यात्म क्षेत्र में उसकी आवश्यकता नहीं है। सूत्रों में ऐसे नमन लिपि काल के लेखकों के हैं जो लौकिक मंगलों की रूचि से लिखे गये हैं अर्थात प्रक्षिप्त पाठ है।

उक्त पंच नमस्करणीयों में जो गुण हैं वे स्वतंत्र गुण भी आगम में कहीं नमस्करणीय नहीं कहे गये हैं। किन्तु उक्त गुणों के धारी, गुणवान पांच ही नमस्करणीय कहे गये हैं। अतः कोई 'णमो णाणस्स' 'णमो दंसणस्स' आदि उच्चारण करते हों तो वह भी सिद्धांतानुसार नहीं है, अशुद्ध है। गुणों से युक्त गुणवान ही सैद्धान्तिक नमस्कार के योग्य है। यह पंच परमेष्ठी नमस्कार मंत्र से स्पष्ट है।

इसके अतिरिक्त आध्यात्म साधना क्षेत्र में जो नमस्कार पद्धति के रूप में उच्चारण किये जाते हैं वे अशुद्ध है स्वमति कल्पित हैं।

2. कोई भी कार्य प्रारम्भ किया जाता है और अंत में पूर्ण किया जाता है। वह कार्य अपेक्षा से हर क्षण होता है एवं पूर्ण की अपेक्षा अंतिम समय में निष्पत्ति होती है। एक गज-मीटर कपड़ा बन कर तैयार हुआ वह उस रूप में अंतिम क्षण में बना फिर भी पूर्व के प्रत्येक क्षण में भी बना है अन्यथा एक ही क्षण में एक मीटर कपड़ा बनकर तैयार नहीं हो जाता है।

इस दृष्टि से यह कहा जाना उपयुक्त होता है कि कोई भी किया जाने वाला कार्य उसी समय में कुछ हुआ अर्थात् जितना प्रथम समय में किया गया, उतना तो उस समय में ही हो गया। 'किया जाने वाला कार्य अपने प्रत्येक क्षण में हुआ' यह कहना अपेक्षा एवं नय दृष्टि से उपयुक्त ही है।

कार्य की पूर्णता ही उपयोगी होने से, लक्षित दृष्टि का कार्य पूर्ण होने पर ही वह कार्य हुआ ऐसा प्रयोग किया एवं समझा जाता है। यह स्थूल दृष्टि है।

स्थूल दृष्टि एवं सूक्ष्म सैद्धान्तिक दृष्टि दोनों को अपने-अपने स्थान तक, सीमा तक, ही समझने का लक्ष्य रखना चाहिये। स्थूल दृष्टि को सूक्ष्म दृष्टि से और सूक्ष्म को स्थूल दृष्टि से टकराने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा करने से लोक में अनेक विवाद खड़े होते हैं। इसलिये जिस दृष्टि से जिसका जो कथन हो उसे उसी दृष्टि से समझने एवं समन्वय करने का प्रयत्न करना चाहिये।

जो जब जितने कर्म आत्मा में चलायमान हो रहे हैं, उदीरणा हो रहे हैं, वेदन हो रहे हैं, क्षीण हो रहे हैं, उन्हें उतने अंश में चले, उदीर्ण हुए, वेदे एवं प्रहीण हुए, ऐसा कहा जा सकता है।

जो कर्म स्थिति से छिन्न हो रहे हैं, रस से भिन्न हो रहे हैं, प्रदेशों से क्षय होने के काल में जल रहे हैं नष्ट हो रहे हैं, आयुष्य कर्म क्षय होने की अपेक्षा मर रहे हैं एवं सम्पूर्ण क्षय की अपेक्षा निर्जरित हो रहे हैं, उन्हें छिन्न हुए यावत् निर्जरित हुए, ऐसा कथन, एक देश क्षय के समय भी, किया जा सकता है।

कर्मों का चलित होना यावत् प्रहीण होना, इस कथन में समुच्चय कर्म की अपेक्षा रही हुई है और छिन्न-भिन्न आदि में स्थिति घात, रस घात, प्रदेश घात आदि अलग-अलग विशेष अपेक्षाएं रही हुई है जो ऊपर स्पष्ट की गई है।

3. पूर्व में आहरित या ग्रहण किये पुद्गल एवं वर्त्तमान में ग्रहण किये जाने वाले पुद्गलों का परिणमन होता है भविष्य में ग्रहण किये जाने वालों का पहले परिणमन नहीं होता है। इस प्रकार परिणमन के समान ही कर्म का चय उपचय उदीरण वेदन निर्जरण भी समझ लेना चाहिये। तैजस शरीर के लिये भी यही सिद्धान्त है और कार्मण के लिये भी यही आहार श्वासोश्वास सम्बन्धी वर्णन प्रज्ञापना सूत्र में देखना चाहिये।

4. सूक्ष्म और बादर अर्थात् छोटे-बड़े विविध प्रकार के कर्म द्रव्य वर्गणा, के पुद्गलों का एवं आहार द्रव्य वर्गणा के पुद्गलों का भेदन,चय आदि होता है। उद्धर्तन, अपवर्तन, संक्रमण, निधत्तिकरण, निकाचित करण, कर्म पुद्गलों में होता है अर्थात् कर्म वर्गणा में अणु बादर विविध पुद्गल होते हैं।

5. बंध उदय उदीरणा अचलित कर्म की होती है। अपवर्तन संक्रमण आदि भी अचलित कर्म के होते हैं केवल निर्जरा ही चलित हुए कर्म की होती हैं।

इसी प्रकार 24 दंडक की अपेक्षा भी उक्त सम्पूर्ण विषय समझ लेना चाहिये। आहार उश्वास स्थिति आदि का वर्णन प्रज्ञापना सूत्र में विभिन्न पदों से यहां भी 24 दंडक में समझ लेना।

6. स्वयं आरंभ (आश्रव) करने वाले आत्मारंभी है, दूसरों को आरंभ में जोड़ने वाले परारंभी है और तीसरा भेद उभयारंभी का है। 23 दंडक के जीवों में ये तीन भेद पाये जाते हैं। मनुष्य में इन तीनों के अतिरिक्त अनारंभी का एक भेद और पाया जाता है। शुभयोगी प्रमत्त संयत एवं सभी अप्रमत्त संयत अनारंभी होते हैं। शेष सभी संयत असंयत अनारंभी नहीं होते। सलेशी और तीन शुभ लेश्या वाले जीव और मनुष्य में आरंभी के उक्त चारों भेद पाये जाते हैं। शेष सभी दंडकों में अपनी-अपनी लेश्या की अपेक्षा भी आरंभी आदि तीन भेद होते हैं अनारंभी नहीं होते हैं। तेजोपद्म शुक्ल लेशी वैमानिक में भी अनारंभी नहीं होते हैं, आरंभी आदि तीन ही भेद पाये जाते हैं।

7. ज्ञान दर्शन इस भव पर्यन्त भी रह सकते हैं एवं परभव में भी साथ चल सकते हैं। चारित्र और तप इस भव तक ही रहते हैं। अर्थात् संयत अवस्था में भी मरने वाला मृत्यु के बाद तुरंत असंयत बन जाता है। संथारा रूप आजीवन तप वाला भी मरने के तुरन्त बाद तप रहित हो जाता है।

8. असंवृत अणगार एवं अन्य असंवृत आत्माएं मुक्ति प्राप्त नहीं करती किन्तु वे सात या आठ कर्मों के प्रकृति बंध आदि चारों प्रकार के बंध की वृद्धि करके संसार भ्रमण की वृद्धि करती है।

संवृत अणगार - आश्रव को रोकने वाला सुसाधु ही क्रमशः कर्म परंपरा को अवरूद्ध करके एवं क्षय करके मुक्ति प्राप्त करते हैं, सब दुःखों का अंत करते हैं।

9. असंयत अविरत जीव भी कई देव गति में जा सकते हैं। जो अनिच्छा से भूख प्यास, डांस-मच्छर, गर्मी-सर्दी, मैल-पसीना आदि के कष्ट सहन करते हैं वे व्यंतर जाति के देव बन सकते हैं। वे देव दैविक ऋद्धि सम्पदा एवं देवियों के परिवार सहित सुखानुभव करते हैं एवं उत्कृष्ट एवं पल्योपम तक देव भव में रह सकते हैं। कम से कम भी वे वहां दस हजार वर्ष की उम्र प्राप्त करते हैं।

दूसरा उद्देशक-

1. जीव स्वयं कर्म बांधते हैं और स्वयं ही भोगते हैं किन्तु वे तब तक उन कर्मों के फल से अलग रहते हैं जब तक वे कर्म उदय में नहीं आते हैं। आयुष्य कर्म भी जब तक उदय में नहीं आता है तब तक जीव उस बंधे हुए नरक आदि आयु सम्बन्धी दुखों से दूर रहते हैं अर्थात् कर्म बांधने के बाद भी जीव उस कर्म फल से कितने ही समय तक बचा हुआ रह सकता है।

2. प्रज्ञापना पद 17 उद्देशक 1 और 2 का सम्पूर्ण लेश्या सम्बन्धी वर्णन यहां पर समझना अर्थात् 24 दंडक के सलेशी जीवों का आहार, कर्म, वर्ण लेश्या, वेदना, क्रिया, आयु की समानता-असमानता सम्बन्धी वर्णन एवं 24 दंडक के जीवों की लेश्या और उनका अल्प बहुत्व आदि वर्णन है। इसके लिये देखना चाहिये।

3. जीव का संसार में रहने का काल चार प्रकार का हैः- 1. नरक रूप में रहने का संसार काल, 2. तिर्यंच रूप में रहने का संसार काल 3. मनष्य रूप में रहने का संसार काल, 4. देवरूप में रहने का संसार काल। जीव के संसार काल में 1. सबसे कम काल मनुष्य अवस्था का है। 2. नरक अवस्था का संसार काल उससे असंख्य गुणा है। 3. देवरूप का काल उससे भी असंख्यगुणा और 4. उससे भी तिर्यंच रूप संसार काल अनंतगुणा है।

4. इस संसार काल की पुनः तीन प्रकार से विचारणा की गई है- 1. अशून्य काल, 2. शून्य काल 3. मिश्र काल।

अशून्य काल- जितने समय तक निरंतर उस गति में एक भी जीव अन्य गति से आवे नहीं और उस गति से एक भी जीव निकल कर (मरकर) अन्य गति में जावे नहीं, जितनी संख्या है उतनी ही रहे ऐसे काल को अशून्य काल कहा जाता है।

शून्य काल- विवक्षित किसी समय में जो जीव उस गति में है वे सब निकल जावे और जब तक उस गति में उनमें का एक भी जीव वापिस नहीं आवे, सब नये जीव ही रहे, ऐसे काल को शून्य काल कहते हैं।

मिश्र काल- विवक्षित किसी समय के जीवों में से एक भी जीव शेष रहे अथवा नया एक भी जीव आजावे, ऐसी मिश्र अवस्था, जितने भी समय तक रहे, वह मिश्र काल है अर्थात् वह काल अशून्य काल की परिभाषा में भी नहीं आता है और शून्य काल की परिभाषा में भी नहीं आता है किन्तु इसका स्वतंत्र ही मिश्र स्वरूप होता है।

शून्य काल तिर्यंच गति में नहीं होता है, शेष तीन गति में होता है। अशून्य और मिश्रकाल चारों गति में होते हैं।

अल्पबहुत्व- 1. सबसे अल्प अशून्य काल- जन्मने और मरने का विरह अर्थात् अन्य गति से कोई भी जीव का नहीं आना अल्प समय ही रह सकता है। 2. उससे मिश्र काल अनंत गुणा अर्थात् उपरोक्त परिभाषा वाला मिश्र काल अनंतकाल तक

रह सकता है 3. उससे शून्य काल अनंत गुणा अर्थात् विवक्षित समय के भवी जीव तो लगभग मोक्ष में चले जाय और अवशेष भवी और अभवी निगोद में वनस्पति में और तिर्यंच रूप में अनंताअनंत काल (वनस्पति काल) रह जावेंगे तो यह उत्कृष्ट शून्य काल बन सकता है। इसी कारण ऐसा यह शून्य काल तिर्यंच गति में नहीं होता है शेष तीन गतियों में हो सकता है क्योंकि जीवों को लम्बे काल तक तिर्यंच में रहने को मिल जाता है तो तीन गतियों में शून्य काल बन जाता है।

5. अंत क्रिया का वर्णन, असंयती भवी द्रव्य देव आदि 14 बोलों का देवोत्पात वर्णन और असन्नि आयु सम्बन्धी वर्णन प्रज्ञापना पद 20 से जानना चाहिये देखें।

6. प्रश्न का समाधान पाने के बाद शिष्य को गुरु के प्रति श्रद्धा और विनम्रता प्रकट करते हुए ऐसा कहना चाहिये कि ' हे भगवन्। जैसा आपने फरमाया वह सत्य है, वास्तविक है, मुझे समझ में आ गया है।'

उद्देशक तीन–

1. जीव कांक्षा मोहनीय= मिथ्यात्व मोहनीय कर्म को (एवं समस्त कर्मों को) सर्व से सर्व बंध करता है अन्य कोई विकल्प एक देश का नहीं है अर्थात् जीव सर्व आत्म प्रदेशों से ही कर्म वर्गणा के पुद्गल ग्रहण करते हैं सर्व आत्म प्रदेशों पर ही उन कर्मों का बंध होता है और ग्रहण किये सर्व पुद्गलों का बंध होता है। आत्मा के किसी एक विभाग में कर्म बंध नहीं होता है। अथवा कोई भी आत्म विभाग बंध शून्य नहीं रहता है। प्रति पल बांधने वाले सभी कर्म सभी आत्म प्रदेशों पर बंधते हैं और वे ग्रहण किये कर्म पुद्गल किसी एक किनारे से बंध जावे ऐसा भी नहीं होता। वे कर्म भी अपने सम्पूर्ण रूप से आत्मा के साथ बद्ध होते हैं। ऐसा सभी कर्म और सभी दंडक की अपेक्षा त्रैकालिक सिद्धांत समझना चाहिये।

2. बंध के समान उदय उदीरणा चय उपचय निर्जरा इत्यादि भी सर्व से सर्व होते हैं। बंध चय उपचय हुए पुद्गल दीर्घ काल तक सत्ता में रह सकते हैं किन्तु उदय उदीरणा निर्जरा गत पुद्गल की अल्प काल से आत्मा में सत्ता नष्ट हो जाती है।

3. विविध कारणों निमित्तों को लेकर जीव जिनवाणी के प्रति शंकित होता है, संदेहशील परिणामों के विकास होने पर कांक्षा मोहनीय रूप मिथ्यात्व मोहनीय का वेदन करते हैं अर्थात् सम्यग्दृष्टि या श्रमण भी अनेक प्रकार से संदेहशील बन जाते हैं तब उन्हे उस संदेह के निवारण का प्रयत्न करना चाहिये और संदेह निवारण न हो सके तो तत्काल इन चिंतन संस्कारों से आत्मा को भावित करना चाहिये कि जो भी जिनेश्वर भगवन्तों के फरमाये तत्त्व हैं, वे पूर्ण सत्य है, निःशंक है, पूर्ण श्रद्धा करने योग्य है, अभी मुझे समझ में जो तत्त्व नहीं आ रहे हैं, वे मेरी अज्ञान कर्म प्रभावित दशा है या मुझे समझने समझाने का सही संयोग नहीं मिल रहा है। 'भगवद् भाषित तत्त्व तो सत्य ही है शंका योग्य नहीं है।'

ऐसा चिंतन करते हुए आत्मा को भावित करने वाला, आत्मा में श्रद्धा को निश्चित करने वाला, जिनाज्ञा का आराधक होता है और शंकाओं के उपस्थित होने पर उसमें उलझ कर अश्रद्धा का शरण ले लेने वाला जिनाज्ञा का विराधक होता है।

4. पदार्थों का अस्तित्व स्वभाव अस्तित्व में रहता है। उनमें नास्तित्व स्वभाव है वह भी अपने स्वभाव में रहता है। उन दोनों भावों को वीतराग सर्वज्ञ भगवान उन उन रूप में जानते मानते एवं समझते हैं एवं वैसा ही कथन करते हैं।

वीतराग भगवान जैसा, जहां अभी जानते हैं वैसा ही अन्यत्र कभी भी जानते हैं, अर्थात् क्षेत्र काल के परिवर्तन से उनके ज्ञान में कोई परिवर्तन नहीं होता है क्योंकि उनका केवल ज्ञान सर्वथा अपरिवर्तन शील ही होता है। अतः उनका ज्ञान और प्ररूपण सदा एक सा ही रहता है।

5. कांक्षा मोहनीय (आदि कर्म) प्रमाद से उत्पन्न होते हैं, प्रमाद योगों से (मन, वचन, काया से) उत्पन्न होते हैं, योग वीर्य से, वीर्य शरीर से उत्पन्न होता है और शरीर का निष्पादन कर्म संयुक्त जीव ही अपने पुरुषार्थ से करता है। वे प्रमाद निम्न है-

1. अज्ञान दशा, 2. संशय, 3. मिथ्या ज्ञान, 4. राग, 5. द्वेष, 6. मतिभ्रम, 7. धर्म में अनादर बुद्धि, 8. अशुभयोग।

मिथ्यात्व अव्रत प्रमाद कषाय योग ये पांच कर्म बंध के निमित्त कारण कहे गये हैं फिर भी यहां केवल प्रमाद की प्रमुखता से किया गया कथन आपेक्षित कथन है यों प्रमाद शब्द विशाल अर्थ को समाविष्ट करने वाला भी है। अर्थात् प्रमाद शब्द से संसार की समस्त प्रवृत्तियों का ग्रहण भी हो जाता है।

6. जीव स्वयं ही अपने उत्थन्, कर्म, बल, वीर्य तथा पुरुषाकार पराक्रम से कर्मों का वेदन अथवा उपशमन करता है कर्मों का संवरण और गर्हा भी स्वयं करता है। अर्थात् कर्मों की आलोचना और उनके बंध से निवृत्ति रूप संवर धारण करता है एवं संग्रहित कर्मों की निर्जरा भी स्वयं अपने पुरुषार्थ से करता है।

उदय प्राप्त नहीं हो वैसे कर्मों की उदीरणा की जाती है। वेदन, उदय प्राप्त का होता है। उपशमन उदय प्राप्त का नहीं होता किन्तु सत्ता में रहे कर्मों का उपशमन होता है।

निर्जरा उदय प्राप्त वेदे हुए कर्म की होती है। यह सब प्रवर्त्तन जीव के अपने उत्थान, कर्म, बल, वीर्य तथा पुरुषाकार पराक्रम से होता है।

7. एकेन्द्रिय भी कांक्षा मोहनीय कर्म का वेदन उदयानुसार करते ही है किन्तु वे अनुभव नहीं करते क्योंकि उनके वैसी तर्कणा, संज्ञा, प्रज्ञा, मन या वचन नहीं होता है। फिर भी सभी प्रकार के कर्मों का वेदन तो उनके होता ही है।

एकेन्द्रिय सम्बन्धी ऐसे अनेक तत्व श्रद्धा करने योग्य होते हैं। उनके विषय में यह वाक्य सदा स्मृति में रखना चाहिये कि 'भगवद् भाषित तत्त्व सत्य ही है, शंका करने योग्य किंचित भी नहीं है।' आगम में इस वाक्य को अनेक जगह दुहराया गया है।

8. श्रमण निर्ग्रन्थ भी कई निमित्त संयोग या उदय वश कांक्षा मोहनीय का वेदन करते हैं अर्थात् कई प्रसंगों एवं तत्त्वों को लेकर वे भी संदेहशील बन जाते हैं। क्वचित संदेह में उलझ जाने से कांक्षा मोहनीय का वेदन होता है। फिर समाधान पाकर या उक्त श्रद्धा रक्षक वाक्य को स्मरण करके उलझन से मुक्त स्वस्थ अवस्था में आ जाते हैं।

जो ज्यादा से ज्यादा उलझते ही रहते हैं या उस उलझन में ही स्थिर हो जाते हैं समाधान या उक्त श्रद्धा वाक्य स्मरण से वंचित रह जाते हैं वे संयम एवं समकित से च्युत होकर विराधक हो जाते है, अतः श्रमण निर्ग्रंथों को तत्त्व ज्ञान अनुप्रेक्षा करते हुए भी श्रद्धा में सावधान रहना चाहिये और उक्त अमोघ श्रद्धा रक्षक वाक्य को मानस में सदा उपस्थित रखना चाहिये।

संदेह उत्पत्ति के कुछ निमित्त कारण ये हैं- 1. ज्ञान की विभिन्नताएं, 2. दर्शन की विभिन्नताएं, 3. आचरणों की विभिन्नताएं, 4. लिंग वेशभूषाओं की विभिन्नताएं, 5. सिद्धान्तों की विभिन्नताएं, 6. धर्म प्रवर्त्तकों की विभिन्नताएं। इसी तरह 7 कल्पों 8. मार्गों 9. मत मतान्तरों 10.भंगों, 11.नयों, 12.नियमों एवं 13. प्रमाणों की विभिन्नताएं।

व्यवहार में विभिन्न जीवों की ये विभिन्नताओं और भंगों, नयों की विभिन्नताओं को देखकर समझ नहीं सकने से अथवा निर्णय नहीं कर पाने से कुतुहल, आश्चर्य और संदेहशील होकर श्रमण निर्ग्रन्थ कांक्षा मोहनीय के शिकार बन सकते हैं। अतः गुरुओं को अपने शिष्यों को पहले से ही विविध बोध के द्वारा सशक्त बनाना चाहिये तकि वह इन स्थितियों का शिकार बन कर अपनी सुरक्षा को खतरे में डालने वाला न बने। ज्ञान के अमोघ शस्त्र से सदा अजेय बन कर अपने संयम और सम्यक्त्व की

सुरक्षा करने में सक्षम रहे। प्रत्येक शिष्यों साधकों को भी चाहिये कि वे पहले स्वयं इस प्रकार के अजेय और सुरक्षित बनने का प्रयत्न करे एवं अश्रद्धाजन्य प्रत्येक परिस्थिति में श्रद्धा के अमोघ शस्त्र रूप वाक्य को मस्तिष्क में सदा तैयार रखे कि 'भगवद् भाषित तत्त्व तो सत्य ही है, उसमें शंका करने योग्य किंचित भी नहीं है।'

चौथा उद्देशक-

1. कर्म प्रकृति के भेद एवं उनके विपाक आदि का वर्णन प्रज्ञापना 23 प्रथम उद्देशक के अनुसार आद्योपांत यहां समझ लेना। देखें प्रज्ञापना सारांश।

2. मोहनीय कर्म (मिथ्यात्व मोहनीय की अपेक्षा) के उदय में जीव परलोक जाता है उस समय वह पंडित वीर्य एवं बाल पंडित वीर्य वाला नहीं होता है किंतु बाल वीर्य वाला होता है एवं बालवीर्य में काल करके परलोक में जाता है।

3. मोहनीय कर्म के उदय से जीव अवनति को प्राप्त होता है तब कोई संयम से श्रमणोपासक अवस्था में पहुंचता है कोई असंयम अवस्था में पहुंचता है।

4. मोहनीय कर्म के उपशांत होने पर जीव प्रगति- विकास करता है तब कोई श्रावक अवस्था में पहुंचता है कोई संयम अवस्था में पहुंचता है।

5. यह अवनति और विकास जीव स्वयं करता है। दूसरे का किया नहीं होता है।

6. मोहनीय कर्म के उदय से जीव की परिणति बदल जाती है वह जैसा पहले श्रद्धा से रूचि से धर्माचरण आदि करता है वैसी श्रद्धा रूचि आचरण उसके फिर नहीं रहता है। ऐसा ही यह मोह कर्म का उदय प्रभाव होता है।

7. किये हुए कर्म भुगते बिना छुटकारा नहीं होता है, इसमें सैद्धान्तिक विकल्प यह है कि बंधे हुए सभी कर्म प्रदेश से भुगतना आवश्यक होता है और विपाक से भुगतने मे विकल्प होता है अर्थात् कई कर्म विपाकोदय के बिना ही नष्ट हो जाते हैं। उसके तीन कारण हैं-1. वे ऐसे ही मंद प्रयत्न से बंधे हुए हों, 2. बाह्य संयोग उस कर्म के अनुकूल नहीं मिले, 3. विशिष्ट तप ध्यान से नष्ट हो जाय। यथा- 1. नरक में तीर्थंकर नाम कर्म, अणुत्तर देव में स्त्री वेद, 2. चरम शरीरी तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि के उस भव में बंधने वाले कर्म, मंद परिणामों वाले होने से प्रदेश उदय से ही नष्ट हो जाते हैं। 'भव कोडिय संचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जई' करोड़ों भव के सामान्य एवं निकाचित कर्म भी तप से क्षय हो जाते हैं।

8. सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवन यह स्पष्ट जानते हैं कि अमुक जीव अपने अमुक कर्म किस किस तरह से भोगेंगे। यथा- प्रदेश से या विपाक से, तप आदि से, अम्युपगम से (लोच आदि से) अथवा स्वाभाविक उदय से अमुक अमुक कर्मों को भोगेगा। उसी अनुसार जीव अपने कर्म फल को भुगत कर ही मुक्त होगा।

9. जीव, परमाणु और स्कंध ये त्रिकाल पदार्थ है।

10. सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन कर ही जीव सिद्ध होते हैं, छद्मस्थ कोई सिद्ध नहीं होते। चाहे अवधिज्ञानी हो, परमावधिज्ञानी हो, मनः पर्यव ज्ञानी अथवा चौदह पूर्वधर हो। छद्मस्थावस्था से अनंतर मुक्त नहीं होते किन्तु परंपरा से केवली बनकर फिर वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी होकर मुक्त हो सकते हैं। यह त्रैकालिक सिद्धांत है।

11. सर्वज्ञ सर्वदर्शी केवली 'अलमस्तु' कहे जाते हैं अर्थात् जिन्होंने प्राप्त करने योग्य सभी ज्ञानादि गुण प्राप्त कर लिये हैं। जिनके लिये प्राप्त करने योग्य कुछ भी अवशेष नहीं रहा, वे परिपूर्ण ज्ञानी 'अलमस्तु' संज्ञक है।

पांचवां उद्देशक-

1. 24 दंडक के आवास: नरकावास- 1. तीस लाख, 2. पच्चीस लाख, 3. पन्द्रह लाख, 4. दस लाख, 5. तीन लाख, 6. एक लाख में पांच कम, 7. सातवीं नरक में पांच नरकावास है।

भवनपति देवों के आवास- (दक्षिण)- 1. असुरकुमार- 34 लाख, 2. नागकुमार- 44 लाख, 3. सुवर्ण कुमार- 38लाख, 4. वायुकुमार- 50 लाख, शेष सभी के 40-40 लाख भवनावास है।

उत्तर में- 1. असुरकुमार- 30 लाख, 2. नागकुमार- 40 लाख, 3. सुवर्ण कुमार- 34 लाख, 4. वायु कुमार- 46 लाख। शेष सभी 36-36 लाख भवनावास है।

भवनपतियों के नाम	दक्षिण दिशा में	उत्तर दिशा में
1 असुरकुमार के	34 लाख	30 लाख
2 नागकुमार के	44 लाख	40 लाख
3 सुवर्णकुमार के	38 लाख	34 लाख
4 विद्युत्कुमार के	40 लाख	36 लाख
5 अग्निकुमार के	40 लाख	36 लाख
6 द्वीपकुमार के	40 लाख	36 लाख
7 उदधिकुमार के	40 लाख	36 लाख
8 दिशाकुमार के	40 लाख	36 लाख
9 वायुकुमार के	50 लाख	46 लाख
10 स्तनितकुमार के	40 लाख	36 लाख
कुल आवास 7,72,00,000 हुए	4,06,00,000	3,66,00,000

पहला देवलोक दूसरा देवलोक	32 लाख 28 लाख	नवमां देवलोक दसवां देवलोक	400
तीसरा देवलोक चौथा देवलोक	12 लाख 8 लाख	ग्यारहवां देवलोक बारहवां देवलोक	300
पाँचवाँ देवलोक	4 लाख	नवग्रैवेयक निचलीत्रिक	111
छठा देवलोक	50 हजार	नवग्रैवेयक बिचलीत्रिक	107
सातवाँ	40 हजार	नवग्रैवेयक ऊपरीत्रिक	100
आठवाँ	6 हजार	पाँच अणुत्तर विमान में	5
वैमानिक देवों के कुल 84,97,023 विमानावास हुए।			

पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच, मनुष्य, व्यंतर, ज्योतिषी के असंख्य-असंख्य आवास, नगरावास, विमानावास है।

वैमानिक देवलोक में- 1. बत्तीस लाख, 2. अट्ठाईस लाख, 3. बारह लाख, 4. आठ लाख, 5. चार लाख, 6. पच्चास हजार, 7. चालीस हजार, 8. छः हजार, 9-10. में चार सौ, 11-12 में तीन सौ, ग्रैवेयक में, 111, 107 और 100 विमान हैं। पांच अणुत्तर विमान में- पांच विमान हैं।

2. स्थिति स्थान- चौबीस ही दंडक में असंख्य स्थिति स्थान है अर्थात् नरक देव में 10000 वर्ष के बाद एक समय अधिक, दो समय अधिक यों संख्यात समय अधिक उम्र भी हो सकती है। उत्कृष्ट 33 सागर होती है। मनुष्य तिर्यंच में अंतमुहूर्त के बाद समयाधिक स्थितिएं समझ लेना उत्कृष्ट अपनी -अपनी स्थिति अनुसार जानना।

देवों की स्थिति	जघन्य	उत्कृष्ट
असुर कुमार	10,000 वर्ष	1 सागर झाझेरी
नवनिकाय भवनपति देवों की स्थिति	10,000 वर्ष	दो पल्योपम देशऊणी
वाणव्यंतर देवों की स्थिति	10,000 वर्ष	एक पल्योपम
ज्योतिषी देवों की स्थिति	पल्य का आठवां भाग	1 पल्य 1 लाख वर्ष
पहला देवलोक देवों की स्थिति	एक पल्योपम	2 सागरोपम
दूसरा देवलोक देवों की स्थिति	एक पल्य झाझेरी	2 सागरोपम झाझेरी
तीसरा देवलोक देवों की स्थिति	दो सागरोपम	सात सागरोपम
चौथा देवलोक देवों की स्थिति	दो सागर झाझेरी	सात सागर झाझेरी
पाँचवाँ देवलोक देवों की स्थिति	सात सागरोपम	दस सागरोपम
छठा देवलोक देवों की स्थिति	दस सागरोपम	चौदह सागरोपम
सातवाँ देवलोक देवों की स्थिति	चौदह सागरोपम	सत्रह सागरोपम
आठवाँ देवलोक देवों की स्थिति	सत्रह सागरोपम	अठारह सागरोपम

	जघन्य	उत्कृष्ट
पृथ्वीकाय की स्थिति	अन्तर्मुहूर्त	22000 वर्ष
अप्काय की स्थिति	अन्तर्मुहूर्त	7000 वर्ष
तेउकाय की स्थिति	अन्तर्मुहूर्त	3 अहोरात्रि
वायुकाय की स्थिति	अन्तर्मुहूर्त	3000 वर्ष
वनस्पतिकाय की स्थिति	अन्तर्मुहूर्त	10000 वर्ष

जघन्य स्थिति के नैरयिक शाश्वत मिलते हैं फिर एक समयाधिक से लेकर संख्यात समयाधिक तक के नैरयिक कभी होते हैं कभी नहीं होते अर्थात् अशाश्वत है। असंख्य समयाधिक से लेकर उत्कृष्ट स्थिति तक के नैरयिक शाश्वत मिलते हैं। चार कषाय क्रोधी मानी आदि की अपेक्षा शाश्वत स्थिति स्थान में एक क्रोध शाश्वत और तीन कषाय अशाश्वत होने से 27 भंग होते हैं और अशाश्वत स्थिति स्थान में चारों कषाय अशाश्वत होने से 80 भंग बनते हैं। भंग पद्धति प्रज्ञापना सूत्र के 16वें पद से जाने।

सातों नरक, 10 भवनपति, व्यंतर, ज्योतिषि, वैमानिक, विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, मनुष्य सभी में जघन्य स्थिति के बाद संख्यात समयाधिक तक के स्थिति स्थान अशाश्वत है। चार कषायों के भंग नारकी के समान देवता में है किंतु भंग कथन क्रोध के स्थान पर लोभ की प्रमुखता से है। औदारिक दंडकों में अशाश्वत स्थिति स्थानों में 80 भंग और शेष सभी स्थिति स्थानों में अभंग (एक भंग) ही होता है।

पांच स्थावर में जघन्य से उत्कृष्ट तक सभी स्थिति स्थान शाश्वत है। अतः सभी स्थिति स्थान में चार कषायों की अपेक्षा अभंग (एक भंग) ही है।

मनुष्य में सर्व जघन्य स्थिति स्थान भी अशाश्वत है अतः उसमें भी 80 भंग होते हैं।

3. अवगाहना स्थान– सभी दंडकों में असंख्य अवगाहना स्थान है जिसमें जघन्य से लेकर संख्यात प्रदेशाधिक तक के अवगाहना स्थान शाश्वत हैं। शेष सभी अवगाहना स्थान शाश्वत है, पाँच स्थावर में सभी अवगाहना स्थान शाश्वत है।

नारकी देवता में अशाश्वत अवगाहना स्थानों में चार कषाय के 80 भंग एवं शाश्वत अवगाहना स्थानों में 27 भंग होते हैं।

पांच स्थावर में सभी शाश्वत अवगाहना स्थानों में अभंग है।

शेष औदारिक दंडकों में अशाश्वत अवगाहना स्थानों में 80 भंग है और शाश्वत स्थानों में अभंग है।

4. शरीर– 24 दंडक में जिनके जितने शरीर है वे सभी शाश्वत मिलते हैं केवल मनुष्य में आहारक शरीर अशाश्वत है।

नारकी देवता के प्रत्येक शरीर में कषाय के 27 भंग होते हैं। औदारिक दंडकों में प्रत्येक शरीर में अभंग (एक) ही होता है। मनुष्य के आहारक शरीर में 80 भंग होते हैं।

5. संहनन संस्थान– जिस दंडक में जितने जितने संहनन संस्थान है वे सभी शाश्वत है। अतः नारकी देवता में कषायों की अपेक्षा 27 भंग शेष सभी में अभंग होता है।

6. लेश्या– जिस दंडक में जितनी लेश्या है उसमें पृथ्वी पानी वनस्पति में तेजोलेश्या अशाश्वत है शेष सभी लेश्याएं शाश्वत है।

पृथ्वी पानी वनस्पति की अशाश्वत लेश्या में 80 भंग कषायों के हैं। उसके अतिरिक्त वैक्रिय दंडकों में 27 और औदारिक दंडकों में अभंग (एक भंग) है।

7. दृष्टि– जिस दंडक में जितनी दृष्टि है उसमें मिश्र दृष्टि सर्वत्र (16 दंडक में) अशाश्वत है और तीन विकलेन्द्रिय में सम्यग्दृष्टि अशाश्वत है। अशाश्वतों में 80 भंग होते हैं शेष वैक्रिय दंडक में चार कषायों के 27 भंग होते हैं और औदारिक दंडकों में अंभग होता है।

8. जिस दंडक में– जितने ज्ञान अज्ञान है उसमें विकलेन्द्रिय में 2 ज्ञान अशाश्वत है। शेष सभी में सभी ज्ञान अज्ञान शाश्वत पाये जाते हैं अर्थात् मनुष्य में मनःपर्यव ज्ञानी आदि पांचों ज्ञान शाश्वत है। अशाश्वत ज्ञान में 80 भंग शेष में पूर्ववत् 27 और अभंग है।

9. योग उपयोग– तीन योग और दो उपयोग में से जहां जितने हैं वे सभी शाश्वत है अतः वैक्रिय दंडकों में चार कषाय के 27 भंग एवं औदारिक दंडकों में 'अभंग' है।

दंडकों में शरीर, अवगाहना, लेश्या आदि का वर्णन जीवाभिगम सूत्र प्रथम प्रतिपति से जानना चाहिये।

नाम	स्थि.	अव.	शरी.	संह.	सं.	ले.	दृष्टि	ज्ञान	अज्ञा.	योग	उप.	कु.भांगा
अशाश्वत् शाश्वत्												
समुच्चय नरक	4	4	3	–	1	3	3	3	3	3	2	= 29
पहली नरक	4	4	3	–	1	1	3	3	3	3	2	= 27
दूसरी नरक	4	4	3	–	1	1	3	3	3	3	2	= 27
तीसरी नरक	4	4	3	–	1	2	3	3	3	3	2	= 28
चौथी नरक	4	4	3	–	1	1	3	3	3	3	2	= 27
पाँचवीं नरक	4	4	3	–	1	2	3	3	3	3	2	= 28
छठी नरक	4	4	3	–	1	2	3	3	3	3	2	= 27
सातवीं नरक	4	4	3	–	1	2	3	3	3	3	2	= 27
भवनपति	4	4	3	–	1	4	3	3	3	3	2	= 30
वाणव्यन्तर	4	4	3	–	1	4	3	3	3	3	2	= 30
ज्योतिषी से 12वें देवलोक	4	4	3	–	1	1	3	3	3	3	2	= 27
नवग्रैवेयक	4	4	3	–	1	1	2	3		3	2	= 26
पाँच अणुत्तर विमान	4	4	3	–	1	1	1	3	3	3	2	= 22
पृथ्वी पानी वनस्पति	4	4	3	1	1	4	1	0	2	1	2	= 23
तेउकाय	4	4	3	1	1	3	1	0	2	1	2	= 22
वायुकाय	4	4	4	1	1	3	1	0	2	1	2	= 23
तीन विकलेन्द्रिय	4	4	3	1	1	3	2	2	2	2	2	= 26
तिर्यंच पंचेन्द्रिय	4	4	4	6	6	6	3	3	3	3	2	= 44
मनुष्य	4	4	5	6	6	6	3	5	3	3	2	= 47

छट्ठा उद्देशक-

1. सूर्य जितना दूर सूर्योदय के समय होता है अस्त के समय भी उतना ही दूर होता है जितना ताप या प्रकाश सूर्योदय के समय करता है उतना ही ताप प्रकाश सूर्यास्त के समय करता है। सूर्य की किरणें उस उस क्षेत्र को सभी दिशाओं से स्पर्श करते हुए आतापित एवं प्रकाशित करती है।

2. लोक अलोक को और अलोक लोक को किनारों पर छहों दिशाओं से स्पर्श करता है वैसे ही द्वीप और समुद्र धूप और छाया, जहाज और पानी वस्त्र और छिद्र आदि ये सब एक दूसरे के किनारों से स्पर्श किये हुए होते हैं।

3. जीव को 18पाप किसी भी करण और योग से स्वयं के करने से लगते हैं बिना किये या दूसरों के करने से पाप नहीं लगते हैं। अव्रत की क्रिया में त्याग नहीं होने से अनुमोदन की परंपरा चालू रहती है।

4. लोक अलोक, जीव अजीव, भवी अभवी, नरक, पृथ्वी आदि, घनोदधि आदि द्वीप समुद्र पर्वत, शरीर, कर्म, लेश्या आदि इनमें कोई किसी से पहले हुए या पीछे हुए, पहले थे या पीछे थे, ऐसा कुछ भी नहीं होता है ये सब शाश्वत सदा से रहने वाले पदार्थ है। यथा-कुकडी और अंडा इसमें कोई पहले पीछे नहीं कहा जा सकता, दोनों ही अनादि परंपरा से चलते आ रहे हैं।

भगवान के अंतेवासी शिष्य रोहा अणगार के प्रश्नोत्तर का सार रूप यह उक्त विषय है।

5. लोक संस्थिति- आठ प्रकार की लोक संस्थिति है- 1. आकाश के आधार पर वायु है। 2. वायु के आधार पर जल है। 3. जल के आधार पर पृथ्वी है। 4. पृथ्वी पर त्रस स्थावर जीव हैं। 5. अजीव जीव प्रतिष्ठित हैं (शरीर आदि) 6. जीव (कर्माधीन) कर्म वशवर्ती रहे हुए हैं। 7. अजीव को जीवों ने संग्रह कर रखा है। 8. जीव को कर्मों ने संग्रह कर रखा है, रोक रखा है।

मशक में पानी और हवा विशिष्ट तरीके से भरी जाय तो हवा पर पानी रह सकता है। हवा भरी हुई मशक को पीठ में बांधकर जल को तैर कर पार किया जा सकता है। ये हवा के आधार लोक संस्थिति को समझने के लिये दृष्टांत है।

हम जिस पृथ्वी पर हैं उसके नीचे धनोदधि है, फिर उसके नीचे घनवात है, उसके नीचे तुनवात है और उसके नीचे केवल आकाश है।

6. तालाब में- डूबी हुई नौका जिस तरह जल में एक मेक होकर रहती है उसी तरह जीव और पुद्गल आपस में एक-मेक होकर लोक में रहे हुए हैं।

7. स्नेह काय- सूक्ष्म स्नेह काय-बरसात के मौसम में जो सील संध मय हवा होती है उससे भी अत्यंत सूक्ष्म एक प्रकार की स्नेह काय होती है यह 24 घंटे, बारहों मास निरंतर गिरती रहती है अर्थात् लोक में एक प्रकार के अत्यंत सूक्ष्म स्नेहिल शीत पुद्गल जो जल का ही सूक्ष्म सूक्ष्मतर कोई पर्याय रूप है गिरते रहते हैं। किन्तु जिस प्रकार ओस आदि इकट्ठा होकर बूंद रूप बन कर रह सकता है वैसा इस सूक्ष्म स्नेह काय से नहीं हो सकता है, यह तो स्वतः ही तत्काल नष्ट हो जाती है। यह सूक्ष्म स्नेह काय अपकाय के जीव मय होती है। या स्नेहिल वायुमय होती है। इसमें कौन से जीव होते हैं, या यह अचित होती है, इत्यादि स्पष्टीकरण सूत्र में यहाँ नहीं किया गया है। यदि यह सचित अपकाय मय है तो भी अत्यंत सूक्ष्म है, चर्म चक्षु ग्राह्य भी नहीं है एवं स्वतः शीघ्र ही विध्वस्त होकर उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

अतः इसका सम्बन्ध संयम के नियमों में कुछ भी नहीं पड़ता है। अचेल निर्वस्त्र और जिनकल्पी एंव पडिमाधारी साधु भी सूर्यास्त तक विहार कर सकते हैं। रात्रि में मल-मूत्र त्यागने के लिये वे निर्वस्त्र और सवस्त्र दोनों ही साधक गमनागमन कर सकते हैं। उनके कार्यों में कल्प में कोई रूकावट होना किसी आगम में नहीं कहा है। सामान्य स्थविर कल्पी साधक के भी संयम के सामान्य नियम तो वे ही होने से उन्हें भी इस सूक्ष्म स्नेह काय से अपनी दिनचर्या में कोई रूकावट नहीं आती है।

दशाश्रुत स्कंध सूत्र में पडिमाधारी के वर्णन से ऐसा प्रतिध्वनित होता है कि यह सूक्ष्म स्नेहकाय सूक्ष्म जल स्वरूप होती है।

इस सूक्ष्म काय को लेकर परंपराओं में श्रमणों को रात्रि में खुल्ले स्थान पर रहने बैठने सोने का निषेध किया जाता है या रात्रि में मस्तक ढंक कर बाहर जाने का विधान किया जाता है और कभी कभी दिन में भी कंबल ओढ कर गोचरी आदि जाने का कायदा बताया जाता है किन्तु ये सब एकांतिक कायदे आगम सम्मत नहीं है। क्योंकि जैनागम वस्त्र रखने का एकांत कायदा नहीं करते हैं। वस्त्र त्याग कर क्रमशः अचेल होने की प्रेरणा करते हैं। वे आगम ऐसे वस्त्र कंबल एकांतिक कायदों के समर्थक कदापि नहीं हो सकते। इस विषय की कुछ जानकारी चर्चा विचरणा छेद सूत्रों में भी सूत्र प्रमाण के साथ दी गई है।

सातवां उद्देशक–

1. जीव जहां भी जन्म लेता है या जहां से भी मरता है वह सर्व आत्म प्रदेशों से उत्पन्न होता है मरता है। उस स्थान की प्रारंभिक ग्रहण करने योग्य सर्व अवगाहना स्थान को ग्रहण करता है और ग्रहण किये सर्व स्थान को छोड़ता है।

आहार भी जीव परिणमन की अपेक्षा सर्व आत्म प्रदेशों से करता है अर्थात् ओजाहार, रोमाहार, एवं कवलाहार का परिणमन रूप आहार सर्वात्मना होता है। ग्रहण किये जाने आहार पुद्‌गलों का ओजाहार रोमाहार की अपेक्षा संपूर्ण आहार परिणमन होता है कवलाहार की अपेक्षा ग्रहण किये आहार का संख्यातवां भाग परिणमन होता है।1 अनेक संख्यातवें भाग शरीर में परिणत न होकर ऐसे ही मल आदि रूपों में निकल जाता है। शरीर के उपयोग में आने को ही आगम में वास्तविक आहार करना गिना गया है। उसके अतिरिक्त तो ग्रहण निस्सरण रूप ही होता है।

जीव कुछ आत्म प्रदेशों से या आधे आत्म प्रदेशों से जन्मता मरता नहीं है एवं आहार भी नहीं करता है।

2. चौबीस दंडक में एक-एक कभी विग्रह गति वाला भी होता है और कभी अविग्रह गति वाला भी होता है। अनेक जीवों की अपेक्षा एकेन्द्रिय में उक्त दोनों ही अवस्था में बहुत जीव होते हैं। शेष 19 दंडक में विग्रह गति में जीव सदा नहीं मिलने से तीन भंग (एक अशाश्वत के) होते हैं।

3. महर्द्धिक देव मृत्यु समय निकट जानकर मनुष्य तिर्यंच के अशुचिमय जन्म, जीवन, आहार को अवधि से देख कर एक बार घृणा, लज्जा और दुख से अभिभूत होकर आहार भी छोड़ देता है। किन्तु बाद में आहार करके मर जाता है और फिर तिर्यंच या मनुष्य में उत्पन्न होकर वहां का आहार उसे करना ही पड़ता है। जैसा आयुष्य बांधा है, वैसे स्थान में जाकर जन्म लेना ही पड़ता है।

(1) **टिप्पण–** कवलाहार की अपेक्षा संख्यातवां भाग परिणमन कहने पर ही संगति बैठ सकती है

कई जगह असंख्यातवा भाग परिणमन कहा जाता है वह अशुद्ध है। क्योंकि प्रतिदिन बालक

के शरीर का वजन आहार का संख्यातवां भाग जितना बढ़ता है। अतः आहार भी संख्यातवें भाग ही परिणमन होना मानना पड़ेगा।

अंसख्यातवें भाग कवलाहार का परिणमन होना माना जाय तो जीवन भर में 10000 या 20000 दिनों में एक किलो वजन भी बालक का नहीं बढ़ सकेगा, जो कि सर्वथा असंगत है और प्रत्यक्ष से भी विरूद्ध होता है।

4. भावेन्द्रिय की अपेक्षा गर्भ में सइन्द्रिय जीव आकर जन्मता है और द्रव्येन्द्रिय की अपेक्षा अनिन्द्रिय जीव जन्म लेता है।

तैजस कार्मण की अपेक्षा शरीरी आता है शेष तीन शरीर की अपेक्षा अशरीरी आता है।

गर्भ में आने वाला जीव सर्व प्रथम प्रारम्भ में माता के रज एवं पिता के वीर्य मिश्रित पुद्‌गल का आहार करता है। बाद में माता के द्वारा किये गये आहार का एक अंश स्नेह के रूप में खींच कर उसका आहार करता है।

माता के शरीर से सम्बन्धित एक रसहरणी नाड़ी पुत्र के शरीर को स्पर्श की हुई रहती है। और पुत्र के नाभी स्थान में एक रसहरणी होती है जो माता के शरीर से स्पर्श की हुई रहती है। इन्हीं दोनों नाड़ियों के द्वारा पुत्र के शरीर में आहार का प्रवेश एवं परिणमन होता है तथा चय उपचय होकर शरीर वृद्धि होती है।

यह रसहरणी से प्राप्त आहार औजाहार रूप है इसका सम्पूर्ण परिणमन होता है मल आदि नहीं बनता है इसीलिये गर्भगत जीव के टट्टी, पेशाब, कप, नाक का मैल, वमन, पित्त आदि विकार नहीं होते हैं। किन्तु अवशिष्ट पुद्‌गल भी हड्डी, मज्जा रोम केश नख आदि शरीरावयव रूप में परिणित हो जाते हैं।

शरीर में मांस खून और मस्तक माता के अंग गिने गये हैं और हड्डी, मज्जा और दाढ़ी मूंछ ये पिता के अंग माने गये हैं।

माता-पिता से निष्पन्न ये शरीरावयव जीवन भर तक रहते हैं। समय समय क्षीण होते हुए भी अंत तक रह पाते हैं। गर्भ गत जीव विशेष ज्ञान के निमित्त से युद्धापित के परिणामों को प्राप्त करके आयुष्य समाप्त हो जाने पर काल करके प्रथम नरक में जा सकता है। एवं कई गर्भस्थ जीव शुभ अध्यवसायों एवं धर्म भावना से ओत प्रोत होकर मृत्यु को प्राप्त करके दूसरे देवलोक तक जा सकते हैं। माता द्वारा धर्म श्रवण कर श्रद्धा आचरण करने पर यह गर्भ गत जीव भी उस भावना से भावित होता है, उसके भी धर्मोपदेश सुनना श्रद्धा करना गिना जाता है। व्रत परिणाम भी उसके माने गये हैं।

गर्भगत जीव सीधा पांव को आगे करके या मस्तक को आगे करके गर्भ से बाहर आता है तब सुख पूर्वक आता है किन्तु तिरछा आ जाने पर या तो मर जाता है या कष्ट पूर्वक जन्मता है। वह जीव शुभ नाम कर्म लाया हो तो वर्णादि शुभ प्राप्त करता है और अशुभ नाम कर्म लाया हो तो वर्णादि एवं स्वर आदि अशुभ अमनोज्ञ प्राप्त करता है।

आठवां उद्देशक-

1. एकांत बाल (चार गुणस्थान वाला) मनुष्य चारों गति का आयुष्य बंध करता है। फिर जिस गति का आयु एक बार बांध लिया है वहीं जाता है। आयु बांधे बिना भी जीव कहीं नहीं जाता है और आयु बांधने के बाद फिर अन्यत्र कहीं भी नहीं जाता है।

कोई एकांत पंडित (छट्ठे गुणस्थान से आगे के गुणस्थान वाले साधु) मनुष्य आयु नहीं बांधते हैं वे मोक्ष गति में जाते हैं और जो आयु बांधते हैं वे केवल (वैमानिक) देव गति का ही आयुष्य बांधते हैं।

बाल पंडित मनुष्य (पांचवे गुणस्थान वाला श्रावक) देव आयुष्य का बंध करता है अर्थात् केवल वैमानिक के 12 देवलोकों का आयु बंध करता है।

2. मृग फंसाने के लिये जाल बिछाने पर तीन क्रिया लगती है। मृग के फंस जाने पर परितापनिकी क्रिया सहित चार क्रिया लगती है और मृग के मर जाने पर या मारने पर प्राणातिपातिकी क्रिया सहित पांच क्रिया लगती है।

सजीव घास को जलाने के लिये इकट्ठा करने तीन क्रिया लगती है, उसमें आग डालने पर चार क्रिया और घास के जलने पर पांच क्रिया लगती है।

किसी जीव को मारने के लिए बाण छोड़ा तो तीन क्रिया लगती है, बाण उसके लग गया तो चार क्रिया और वह जीव मर गया तो पांच क्रिया लगती है।

किसी जीव को मारने के संकल्प से धनुष की प्रत्यंचा खींचे हुए कोई व्यक्ति खड़ा है। किसी दूसरे व्यक्ति ने आकर उसे तलवार का वार करके मार दिया। जिससे हाथ का खींचा हुआ बाण निशाने पर जाकर लग गया और वह जीव भी मर गया, तब मनुष्य को तलवार से मारने वाले को भी उसकी पांच क्रिया लगती है बाण से मरने वाले जीव के निमित्त से धनुष वाले मनुष्य को भी पांच क्रिया लगती है।

किसी भी प्रहार के निमित्त से कोई जीव कुछ देर बाद मरता है अर्थात् छह महीने के अंदर मरता है तो पांच क्रिया लगती है। छः महीने बाद मरने पर पांचवी प्राणातिपातिकी क्रिया नहीं लगती है फिर उसका मरना प्रहार निमित्तक नहीं गिना जता है। यह व्यवहार नयापेक्षा कथन है।

तलवार बरछी आदि से हाथों हाथ मारने वाला व्यक्ति तीव्र वैर से स्पृष्ट होता है और उस कृत्य का फल उसे शीघ्र निकट भविष्य में मिलता है।

3. शारीरिक अनेक योग्यताओं से एवं साधनों से समान दो पुरुषों में युद्ध होने पर एक व्यक्ति जीत जाता है एक हार जाता है इसमें वीर्यान्तराय कर्म के उदय अनुदय का मुख्य कारण होता है। वीर्यवान विशेष पराक्रमी व्यक्ति जीत जाता है कुछ भी कम पराक्रम हो वह हार जाता है।

4. वीर्य दो प्रकार का है- 1. लब्धि वीर्य, 2. करण वीर्य। आत्म शरीर वीर्य की उपलब्धि होना लब्धि वीर्य है। वीर्य को उपयोग में लेना, प्रवृत्त होना यह करण वीर्य है।

चौबीस ही दंडकों के जीव लब्धि वीर्य से सवीर्य होते हैं और करण वीर्य से सवीर्य अवीर्य दोनों होते हैं। मनुष्य शैलेशी अवस्था में लब्धि वीर्य से सवीर्य और करण वीर्य से अवीर्य होते हैं। सिद्ध दोनों ही अपेक्षा से अवीर्य होते हैं। क्योंकि उनके शरीर नहीं है। आत्म सामर्थ्य से वे सम्पन्न होते हैं।

नवमां उद्देशक-

1. अठारह पापों का त्याग करने से जीव (कर्मों से) हल्का होता है और सेवन करने से भारी होता है। त्याग करने से जीव संसार को परित्त करता है घटाता है एवं संसार पार कर मोक्ष में चला जाता है। इसके विपरीत पाप का सेवन करने वाले संसार बढाते हैं एवं संसार में ही बांरबार भ्रमण करते हैं।

2. अगुरु लघु द्रव्य- आकाश, आकाशांतर, कार्मण शरीर, कर्म, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीव,, भावलेश्या, दृष्टि, दर्शन, ज्ञान, अज्ञान, संज्ञा, मनोयोग, वचन योग दोनों उपयोग, तीनों काल, सर्वद्धा काल।

गुरु लघु द्रव्यः तनुवाय, धनवाय, पृथ्वी, द्वीप, समुद्र, औदारिक आदि चार शरीर, द्रव्य लेश्या, काय योग।

उभय द्रव्य– कर्म पुद्गल द्रव्य अगुरु लघु होते हैं और कई गुरु लघु होते हैं। इसलिये पुद्गलास्तिकाय उभय स्वरूप है। 24 दंडक के जीव भी कार्मण शरीर एवं आत्मा की अपेक्षा अगुरु लघु है और चार शरीरों का अपेक्षा गुरू लघु है अतः वे भी उभय स्वरूप है। सर्व द्रव्य, सर्व प्रदेश सर्व पर्याय आदि ये समुच्चय बोल होने से उभय स्वरूप है।

3. श्रमण निर्ग्रन्थ को लघुता, अल्पेच्छा, अमूर्च्छा भाव, अप्रतिबद्धता आदि गुणों को बढ़ाना चाहिये एवं क्रोधादि से रहित होने का प्रयत्न करना चाहिये। राग द्वेष से मुक्त जीव ही कांक्षा प्रदोष (अन्यमत का आग्रह एवं आसक्ति) के नष्ट होने पर मुक्त हो सकता है। वही चरम शरीरी होता है। एक ही भव में जीव बहुमोह वाला होकर भी, बाद में मोह मुक्त, संवर युक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

4. एक जीव एक समय में एक ही आयुष्य कर्म का उपभोग करता है अर्थात् वर्त्तमान भव का आयुष्य भोगता है, भूत या भविष्य भव का आयु नहीं भोगता है। यदि कोई भी सिद्धांत वाले दो आयु एक साथ भोगना कहे तो उनका वह कथन मिथ्या समझना चाहिये।

आबाधा काल की अपेक्षा अगले भव का आयु व्यतीत होता है किन्तु वह आबाधा रूप होने से उदय में नहीं गिना जाता है। अर्थात् उस समय विपाकोदय या प्रेदशोदय दोनों प्रकार के उदय का अभाव होता है। अतः आबाधाकाल रूप समय के व्यतीत होने को उदय नहीं कहा जा सकता। मतांतर से प्रदेशोदय होता है विपाकोदय नहीं होता है।

5. अणगार एवं स्थविर संवाद– एक बार तेवीसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के परंपरानुसार शिष्य कालास्यवेषिपुत्र नामक अणगार ने भगवान महावीर स्वामी के स्थविर भगवंतों के समीप पहुंच कर आक्षेपात्मक प्रश्न किये। तब स्थविरों ने योग्य उत्तर दिया। वह संवाद इस प्रकार है-

प्रश्न– आप स्थविर लोग सामायिक, सामायिक का अर्थ नहीं जानते हो, इसी तरह पच्चक्खाण संयम, संवर, विवेक, व्युत्सर्ग और इनका अर्थ-परमार्थ तो नहीं जानते हो?

उत्तर– हम सामायिक आदि और उनका परमार्थ जानते हैं।

प्रश्न– यदि जानते हो तो बताओ कि सामायिक आदि क्या है और उनका परमार्थ क्या है?

उत्तर– प्रश्न कर्ता की उलझन निश्चय नय की अपेक्षा से है ऐसा जानकर स्थविरों द्वारा उत्तर दिया गया कि आत्मा ही सामायिक आदि है और आत्मा ही इनका अर्थ परमार्थ है। गुण गुणी में रहते हैं। ये उक्त सारे गुण और उनका परमार्थ और फल आत्मा को ही होने वाले हैं। अतः गुण गुणी के अभेद रूप निश्चय नय से कहा गया है।

प्रश्न– जब ये सब आत्मा है तो क्रोध मान आदि भी आत्मा ही है उसकी (निंदा) गर्हा क्यों करते हो?

उत्तर– संयम के लिये, संयम वृद्धि के लिये, आत्म गुण विकास के लिये, अवगुण समाप्ति के लिये, इनकी (निंदा) गर्हा करते हैं।

प्रश्न– तो क्या गर्हा संयम है या अगर्हा संयम है?

उत्तर– पाप कृत्यों की गर्हा करना संयम है। ऐसा करने से दोषों का ह्रास होता है। बाल भाव को जानकर समझ कर उसका त्याग होता है संयम की पुष्टि होती है। आत्मा अधिकाधिक संयम भावों में उपस्थित होती है।

कालास्यवेषिपुत्र अणगार की वैचारिक उलझन का समाधान हो जाता है, श्रद्धा स्थिर हो जाती है। वंदन करके स्थविर भगवंतों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है एवं चार याम धर्म से पांच महाव्रत रूप धर्म स्वीकार करता है। अर्थात भगवान महावीर के शासन में शिष्यत्व स्वीकार कर लेता है। उसके बाद उसने अनेक वर्ष तक संयम पर्याय का पालन किया एवं आराधना करके सम्पूर्ण कर्म क्षय कर मोक्ष प्राप्त किया।

(**विशेष ज्ञातव्य–** भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य भगवान महावीर के शासन में पूर्ण रूप से शीघ्र मिल नहीं पाये थे किन्तु इस तरह समय-समय पर चर्चा वार्ता करके कई श्रमण शासन में मिलते थे। इसका प्रमुख एक कारण यह बन गया था कि गौशालक मंखली पुत्र भी भगवान महावीर के सम काल में ही धर्म प्रणेता बन गया था एवं अपने को चौबीसवां तीर्थंकर घोषित करता था। देव सहयोग से एवं निमित्त ज्ञान चमत्कार प्रयोग से अधिकांश जनता को उसने चक्कर में ले रखा था। इसी कारण पशोपेश में पड़े भगवान पार्श्वनाथ के कई श्रमण शासन में नहीं मिल पाते एवं कई हिम्मत करके प्रश्नों द्वारा परीक्षण करते थे। उसके पूर्व वे वंदन भी नहीं करते। सही परीक्षण के बाद वीर शासन में मिलते। तो भी सैकड़ों साधु तो गौशालक के चक्कर में आ ही गये थे एवं उसका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया था। चौथे आरे एवं सतयुग कहलाने वाले समय में भी ऐसी अनहोनी घटनाएं हो जाती थी।)

6. अव्रत की क्रिया अर्थात् अप्रत्याख्यान प्रत्यया क्रिया सभी अविरत जीवों को समान ही लगती है चाहे वर्त्तमान में कोई सेठ हो, या राजा, भिखारी, छोटा-बड़ा कोई भी क्यों न हो।

जैसा भी है वह वर्त्तमान में है उसका वर्त्तमान प्रत्यक्ष प्रवृत्तियों से बंध तदनुसार हो सकता है किंतु परोक्ष से सम्बन्धित अव्रत क्रिया के आगमन में वर्त्तमान अव्रत का प्रभाव नहीं पड़ता है। किंतु यदि वह कोई भी जीव व्रती बन जाता है देशविरति या सर्वविरति स्वीकार कर लेता है तो उसके वह अव्रत की क्रिया पर प्रभाव पड़ जाता है अर्थात् वह प्रभावित हो जाती है और उसका अस्तित्व अवरूद्ध हो जाता है। किन्तु जो अव्रती जीव है वह चाहे हाथी है या कीड़ी उन्हें तो अव्रत क्रिया समान ही होती है।

7. जो साधु ईरादा पूर्वक जान बूझ कर आधाकर्मी अपने निमित्त से बने आहारादि का सेवन करता है वह कर्मों को सघन करता है। आयुष्य कर्म तो जीवन में एक बार ही बंधता है उसमें अभिवृद्धि हानि कुछ नहीं होती है। अतः उक्त वृद्धि सात कर्मों की अपेक्षा जानना। उसमें भी अशाता वेदनीय का विशेष विशेषतर बंध होता है।

इस प्रकार आधाकर्मी आहार को सेवन करके साता चाहने पर भी असाता योग्य कर्मों का ही अधिकाधिक संग्रह बढता जाता है।

किसी सूत्र में आधाकर्मी आहारादि सेवन से कर्म बंध होने में विकल्प भी कहा है वह अनाभोग या सपरिस्थितिक अपवाद कारण आदि की अपेक्षा है एवं एकांत भाषा प्रयोग के निषेध के लिये है। क्योंकि कोई भी जीव किसी प्रवृत्ति के करते हुए कैसा कर्म बंध करे यह उसके व्यक्तिगत परिणामों पर निर्भर है, जिसे छद्मस्थ मानव नहीं जान सकता, नहीं समझ सकता। अतः उसने कर्म बंध किया या कर्म बंध नहीं किया ऐसा फेसला देने का अधिकार व्यक्तिगत किसी छद्मस्थ को नहीं होता है। किन्तु सिद्धान्त रूप में कथन किया जा सकता है। उक्त प्रासंगिक सूत्र में भी कर्म बंध सम्बन्धी सिद्धांत का ही कथन किया गया है।

इसका आशय यह है कि जो साधु आगाढ परिस्थिति के बिना प्रमादवश लापरवाहीवश संयम के शिथिल मानस से ऐसी प्रवृत्ति करता है, उसकी आलोचना प्रायश्चित नहीं करता है, उसका खेदानुभव नहीं करता है, वह ऐसे परिणामों वाला उक्त बंध करता है एवं संसार भ्रमण की वृद्धि करता है।

8. प्रासुक एषणीय एवं सभी प्रकार के शास्त्रोक्त दोषों से रहित पूर्ण शुद्ध आहारादि ग्रहण करने वाला, भोगने वाला, श्रमण, इन उक्त कर्मों का बंध नहीं करता है, अपितु विशेष रूप से क्षय करता है एवं शीघ्र ही संसार भ्रमण को घटाकर सिद्ध अवस्था को प्राप्त करता है।

इसका कारण यह है कि शुद्ध गवैषणा करने वाला अणगार आत्म साक्षी से संयम धर्म का अतिक्रमण नहीं करता है, छः काया के जीवों की भी पूर्ण रूप से रक्षा करता है, उन जीवों की पूर्ण दया कर पाता है। किन्तु आधाकर्मी सेवन करने वाला तो उन जीवों की रक्षा या अनुकम्पा के प्रति उपेक्षित हो जाता है।

9. अस्थिर स्वभाव वाली आत्मा ही इस तरह संयम भाव से असंयम भाव में परिवर्तित होती है अर्थात् गवेषणा से अगवेषणा भाव में बदल जाती है। अस्थिर बनी आत्मा ही व्रतों का भंग करती है संयम मर्यादा भंग करती है। अतः मोक्षार्थी को अपनी आत्मा को स्थिर परिणामी बनाना चाहिये। क्योंकि बाल और पंडित होने वाला जीव तो शाश्वत होता है किन्तु बालत्व और पंडितत्व ये अशाश्वत है। अतः स्थिर परिणामों से पंडितपना स्थिर रह सकता है और अस्थिर परिणामों से यह बालत्व में परिवर्तित हो सकता है। अतः आत्म साधक जीवों को संयम के नियमों का स्थिर परिणामी होकर पालन करना चाहिये। आधाकर्मी आदि दोषों का सेवन नहीं करना चाहि तभी उसका पंडितपन कायम रह सकता है।

दसवां उद्देशक-

1. अन्य तीर्थिक मान्यताएं- 1. किये जाते हुए को किया ऐसा नहीं कहना, 2. दो परमाणु का आपस में सम्बन्ध नहीं होता क्योंकि उनमें स्नेह नहीं होता किंतु तीन परमाणु में संबंध होता है। 3. तीन प्रदेशी स्कंध के डेढ़ डेढ़ परमाणु रूप दो टुकड़े हो जाते हैं। 4. पांच परमाणु इकट्ठे होकर दुःख रूप होते हैं वह दुःख शाश्वत रहता है। पहले पीछे भाषा होती है बोलते समय अभाषा होती है। 6. इसी तरह क्रिया भी पहले पीछे दुःखकर होती है करते समय नहीं। वह भी बिना किये दुःखकर होती है करने से नहीं। 7. बिना किये, बिना स्पर्शे ही जीव दुःख वेदना वेदते हैं। 8. सांपरायिक और इर्यापथिक दोनों क्रिया एक साथ लगती है।

ये सब मिथ्या खोटी मान्यताएं हैं। सत्य से विपरीत है। चलते हुए को चला कहना सत्य है। दो परमाणु में स्नेह होता है बंध भी होता है। डेढ परमाणु कभी नहीं होता है। कोई भी दुःख शाश्वत नहीं होता, किसी भी स्कंध का दुःख सुख स्वभाव परिवर्तित होता रहता है। बोलते समय ही भाषा भाषारूप कही जाती है। क्रिया करते समय लगती है। बिना किये नहीं लगती है। किये कर्म का फल स्पर्श करके जीव वेदना वेदते हैं।

सांपरायिक क्रिया जब जहां तक लगती है, ईर्यापथिकी क्रिया तब तक नहीं लगती है। 10 गुण स्थान तक सांपरायिक क्रिया है, आगे 11-12-13 वें गुणस्थान में ईर्यावहि क्रिया है। अतः साथ में दोनों क्रिया नहीं होती।

2. चौबीस दंडक का उत्पात विरह प्रज्ञापना पद 6में कहा गया है देखें।

दूसरा शतक

पहला उद्देशक-

1. जिस तरह बेइन्द्रिय आदि श्वासोच्छवास लेते हैं वैसे ही एकेन्द्रिय भी अनंत प्रदेशी वर्ण गंध रस स्पर्श वान पुद्‌गलों का श्वासोश्वास लेते हैं, छोड़ते हैं।

वायुकाय भी श्वासोश्वास लेते हैं। अचित्त वायु श्वासोश्वास वर्गणा रूप अलग होती है, उसका श्वासोश्वास लिया जाता है। वायुकाय जीव वायुकाय में लाखों भव एक साथ कर सकते हैं अर्थात् असंख्य भव निरंतर हो जाते हैं। परभव में जाते समय तैजस कार्मण शरीर साथ रहता है औदारिक वैक्रिय शरीर नहीं रहता है।

2. अचित्त भोजी बना अणगार यदि भव प्रपंच से मुक्त नहीं होता है तो वह भी संसार में जन्म मरण करता है। वहां प्राण भूत जीव या सत्व कुछ भी हो सकता है कहा जा सकता है। 1. प्राणः श्वासोश्वास लेने से, 2. भूतः शाश्वत होने से, 3. जीवः आयुष्य कर्म से जीता है इसलिये, 4. सत्वः शुभा शुभ कर्मों की सत्ता से, 5. विष्णु विज्ञः रसादि को जानने से, 6. वेदकः सुख दु:ख वेदने से।

भव प्रपंच को समाप्त कर देने वाला अणगार प्राण भूत आदि नहीं कहलाता है वह सिद्ध बुद्ध मुक्त, पारगत, परिनिवृत्त, अंतकृत कहा जाता है। सब दुःखों से रहित कहा जाता है।

3. स्कंधक अणगार-

श्रावस्ती नगरी में गर्दभाल नामक परिव्राजक का शिष्य स्कंधक परिव्राजक रहता था। जो ब्राह्मण परिव्राजक मत में निष्णात था वेदों का पारगामी था। उसी नगरी में श्रमण भगवान महावीर का (श्रावक) भक्त पिंगल निर्ग्रन्थ भी रहता था। (टिप्पण पृष्ठ 192 पर)

पिंगल श्रावक- एक बार 'पिंगल' स्कंधक के पास गया और निम्न प्रश्न रखेः-

प्रश्न- 1. लोक सांत है या अनंत, 2. जीव सांत है या अनंत, 3. सिद्धि सांत है या अनंत, 4. सिद्ध सांत है या अनंत, 5. किस मरण से मरता हुआ जीव संसार बढ़ाता है या घटाता है।

उक्त प्रश्नों को सुनकर स्कंधक परिव्राजक कोई भी निर्णयात्मक उत्तर नहीं दे सका। पिंगल ने पुनः पुनः प्रश्न दुहराया और उत्तर देने का आग्रह किया किंतु स्कंधक संदेहशील होकर मौन ही रहा। पिंगल चला गया।

भगवान महावीर स्वामी विचरण करते हुए कृतंगला नगरी में पधारे जो कि श्रावस्ती नगरी के नजदीक ही थी। स्कंधक को भी जानकारी मिली उसने भी उक्त प्रश्नों का समाधान भगवान से प्राप्त करने का विचार किया एवं अपनी परिपूर्ण वेशभूषा के साथ चल दिया।

स्कंधक भगवान की सेवा में- स्कंधक संन्यासी पूर्व में गौतम स्वामी का मित्र सहचारी था। भगवान ने गौतम स्वामी से जिक्र किया कि आज तुम्हारा पुराना मित्र मिलने वाला है। गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान ने उसका नाम एवं आने का प्रयोजन बता दिया। पुनः गौतम स्वामी ने प्रश्न किया कि वह आपके पास दीक्षित होगा? भगवान ने स्वीकृति रूप उत्तर दिया। इतने में ही तो स्कंधक परिव्राजक आते हुए गौतम स्वामी को दिख गया।

गौतम स्वामी उठे, सामने गये एवं वचनों से उसका स्वागत किया और कहा कि तुम अमुक प्रसंग को लेकर उपस्थित हुए हो? स्कंधक की आश्चर्यमय जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहा कि मेरे धर्म गुरु धर्माचार्य ज्ञानी हैं उन्होंने ही आपके मन की बात मुझे बताई है। स्कंधक भगवान के ज्ञान के प्रति श्रद्धान्वित हुआ।

उन दिनों भगवान नित्य भोजन चर्या में थे। कोई भी तपस्या नहीं चल रही थी। अतः शरीर स्वभावतः विशेष सुन्दर एवं उपशोभित था। स्कंधक भगवान की शरीर संपदा देखकर भी परम आनंदित हुआ। भगवान को उसने सभक्ति तीन बार आवर्त्तन पूर्वक वंदन नमस्कार किया एवं पर्युपासना करने हेतु बैठ गया।

प्रश्नों का समाधान– श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने स्वतः स्कंधक को संबोधन करके उसके प्रश्नों का उच्चारण कर समाधान कर दिया। वह इस प्रकार है।

द्रव्य से और क्षेत्र से लोक सांत है। काल एवं भाव से अनंत है। इसी तरह जीव द्रव्य भी उक्त दो से सांत और दो से अनंत है। ऐसे ही सिद्ध और सिद्धी भी समझना। अर्थात् द्रव्य से इनकी संख्या है, क्षेत्र से अवगाहना क्षेत्र सीमित है, काल से ये चारों शाश्वत है और भाव से इनके गुण आदि भी शाश्वत है। अतः उत्तर अनैकांतिक वचन मय इस प्रकार होता है कि 'ये सांत भी है और अनंत भी है'।

बाल मरण से मरता हुआ जीव संसार वृद्धि करता है एवं पंडित मरण से मरता हुआ जीव संसार घटाता है।

स्कंधक अणगार– स्कंधक प्रभावित तो पहले ही हो चुका था, भगवान द्वारा साक्षात समाधान सुनकर उसका हृदय परिवर्तित हो गया, उसने भगवान के समीप श्रमण दीक्षा स्वीकार की। संयम विधि का ज्ञान प्राप्त किया, तप संयम से आत्मा को भावित करने लगा।

स्कंधक अणगार ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। फिर आज्ञा पूर्वक भिक्षु की बारह पड़िमा का आराधन किया। गुण रत्न संवत्सर तप विधि को पूर्ण किया एवं अन्य विविध मासखमण पर्यन्त की तपस्याओं का आराधन किया। 12 वर्ष की संयम पर्याय में शरीर को सुखाकर हड्डियों का ढांचा बना दिया। जब शरीर से प्रत्येक कार्य करने में पीड़ा होने लगी तब धर्म जागरण करते हुए संलेखना संथारा ग्रहण करने का निर्णय किया एवं भगवदाज्ञा लेकर सशक्त श्रमणों की सहायता से धीरे-धीरे विपुल पर्वत पर चढकर आजीवन अनशन स्वीकार किया एक महिने तक उनका पादपोपगमन संथारा चला फिर आयु समाप्त होने पर दिवंगत हुए।

सेवा में रहे सशक्त श्रमणों ने उनके परिनिर्वाण का कायोत्सर्ग किया और उनके शरीर को वहीं वोसिरा कर, अवशेष उपकरणों को लेकर, भगवान की सेवा में पहुंच कर, वंदन नमस्कार किया एवं स्कंधक अणगार के सफल संथारे की एवं काल करने की सूचना देते हुए उनके अवशेष उपकरण समर्पित किये।

स्कंधक की गतिः गौतम स्वामी के प्रश्न करने पर भगवान ने फरमाया कि मेरा अंतेवासी गुण सम्पन्न स्कधंक अणगार संयम की आराधना करके 12वें देवलोक में गया है। वहां से 22 सागरोपम की आयुष्य पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर यथा समय संयम ग्रहण कर सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करेगा एवं सिद्ध बुद्ध मुक्त होगा।

बालमरण, पंडित मरण, भिक्षु पडिमा, गुणरत्न संवत्सर तप आदि का वर्णन पूर्व सारांशों में पहले कर दिया गया है।

टिप्पण– स्कंधक संन्यासी से प्रश्न पूछने वाला 'पिंगल' श्रावक था या श्रमण, यह प्रश्न खड़ा होता है? क्योंकि सूत्र में निर्ग्रन्थ और श्रावक दोनों शब्द उपलब्ध होते हैं। सूत्र में पिंगल के लिए 'परिवसई' क्रिया का प्रयोग किया गया है, जो श्रमणोपासक गृहस्थ या परिव्राजकों के लिये प्रयोग किया जाता है। निर्ग्रन्थ श्रमण के लिये ऐसी क्रिया का प्रयोग उपयुक्त नहीं होता है। श्रमण के लिये गामाणुगामं दुइज्जमाणे...समोसढे। अथवा थेराणं थेर भूमि पत्ताणं, ऐसा प्रयोग होता है। अतः यहां 'नियंठे'शब्द संदेहास्पद है, कभी लिपि काल में बढ गया होगा। निर्ग्रन्थ शब्द को अस्वीकार कर लेने पर कोई भी प्रश्न खड़ा नहीं रहता है। ''तत्वं तु केवलीगम्य''।

उद्देशक दूसरा तीसरा चौथा-

1. समुद्घात सम्बन्धी वर्णन प्रज्ञापना पद 36में है वह वर्णन यहां लगभग सम्पूर्ण समझें।

2. नरक पृथ्वी पिंड आदि का वर्णन के लिये जीवाभिगम सूत्र तीसरी प्रतिपत्ति का प्रथम उद्देशक सम्पूर्ण यहां समझें।

3. इन्द्रियों सम्बन्धी वर्णन के लिये प्रज्ञापन पर 15 का प्रथम उद्देशक यहां सम्पूर्ण समझें।

पांचवां उद्देशक-

1. देव गति में देवों के परिचारणा विविध प्रकार की होती है। स्वाभाविक रूप से अपनी देवियों के साथ परिचारणा करते हैं विशेष रूप में अपनी देवियों द्वारा वैक्रिय कृत हजारों देवियों के साथ भी परिचारणा करते हैं।

कदाचित विकृत बुद्धि वाले देव अन्य देवों की देवी के साथ भी परिचारणा करते हैं एवं निदान कृत कोई देव स्वयं की देवियों की विकुर्वणा करके उन रूपों के साथ परिचारणा करता है।

ये सभी प्रकार की परिचारणा करने वाले देव केवल एक पुरुष वेद का ही वेदन करते हैं एक समय में एक जीव के दो वेद का उदय एक साथ नहीं होता है अतः स्वयं देवी रूप बनना विडंबना संयोग मात्र होता है वह देव परिचारणा करने में एक पुरुष वेद का ही अनुभव करता है स्त्री वेद का अनुभव नहीं करता है। क्योंकि वह पुरुष वेद की उपशांति के लिये ही देवी का रूप बनाता है।

(**नोट-** यहां मूल पाठ में लिपि दोष- काल दोष आदि से पाठ विकृत बना हुआ प्रतीत होता है। 'नो' शब्द छूट जाने से संयम आराधन करके देव बनने वाले को भी दूसरे देवों की देवियों के साथ परिचारणा करने का अर्थ निकलता है वह अनुपयुक्त है। अतः 'नो' शब्द का युक्त पाठ समझना चाहिये। उक्त सारांश सही पाठ की अपेक्षा लिखा है।

अन्यतीर्थिक लोग अन्य सभी प्रकार की परिचारणा का निषेध करके स्वयं के द्वारा विकुर्वित देवी के साथ वाली केवल एक प्रकार की परिचारणा का कथन करते हैं और एक समय में दो वेद का वेदन एक व्यक्ति के होना कहते हैं। उनका वह कथन मिथ्या एवं भ्रम पूर्ण है। विभंग ज्ञान के निमित्त से ऐसे कई भ्रम प्रचलित हो जाते हैं। जिनानुमत सत्य कथन ऊपर बताया गया है। उसका विशेष स्पष्टीकरण जानने के लिये ब्यावर से प्रकाशित दशाश्रुत स्कंध सूत्र में 9 निदान का विवेचन देखना चाहिये।)

गर्भ विषय-

2. बादल रूप में अपकाय के जीवों का रहना जघन्य एक समय उत्कृष्ट छः महिना तक हो सकता है। इसे उदक गर्भ काल कहा गया है।

3. तिर्यंच का गर्भ काल जघन्य अंतमुहूर्त है उत्कृष्ट आठ वर्ष का है। मनुष्य का गर्भ काल जघन्य अंतमुहूर्त का है उत्कृष्ट 12 वर्ष का है। अर्थात् अंतमुहूर्त के बाद गर्भ गत जीव का आयुष्य पूरा हो जाता है और कोई आठ या 12 वर्ष तक भी गर्भ में जीवित रह सकता है ?

4. एक जीव गर्भ में मरकर गर्भ में जन्मे तो ऐसे गर्भ की कायस्थिति की अपेक्षा उत्कृष्ट 24 वर्ष तक एक ही गर्भ स्थान में जीव रह सकता है। गर्भ में दूसरा जन्म करने वाला पुनः नया शरीर बनाता है वह मृत शरीर तो येन केन प्रकारेण विशीर्ण हो जाता है, निकल जाता है या निकाल दिया जाता है।

5. मनुष्यों और तिर्यंचों के परिचारणा के बाद योनि स्थान उत्कृष्ट 12 मुहूर्त तक जीव के उत्पन्न होने योग्य बना रहता है अर्थात् योनि में मिश्रित बना शुक्र शोणित उत्कृष्ट 12 मुहूर्त्त तक उसी रूप में सुरक्षित रह सकता है। जघन्य मध्यम की अपेक्षा हीनाधिक कोई भी समय यथायोग्य हो सकता है। एकांत 12 मुहूर्त नहीं समझ लेना चाहिये। वह तो उत्कृष्टतम काल कहा गया है।

तात्पर्य यह है कि किसी स्त्री के अंतमुहूर्त में ही वे पुद्‌गल शरीर रूप में परिणत हो सकते है; किसी के मुहूर्त्त, दो मुहूर्त्त तीन मुहूर्त्त में ही वे पुद्‌गल शरीर रूप में परिणत हो सकते है; किसी के मुर्हूत्त, दो मुहूर्त्त तीन मुहूर्त्त आदि भी रह सकते हैं अधिकतम किसी स्त्री के रहे तो रह सकते हैं यह 12 मुहूर्त्त कहने का आशय समझना चाहिये।

6. एक जीव एक भव में जघन्य एक-दो-तीन उत्कृष्ट अनेक सौ व्यक्तियों का पुत्र हो सकता है अर्थात् उसके अनेक सौ पिता हो सकते हैं।

7. एक जीव के एक भव में उत्कृष्ट अनेक लाख (लाखों) जीव पुत्र रूप में जन्म ले सकते हैं। अर्थात् वह लाखों जीवों का पिता हो सकता है।

8. मैथुन सेवन भी एक प्रकार का महान् असंयम है। जो आत्मा के विकार भाव रूप विडम्बना मात्र है। इससे अनेक प्रमाद एवं दोषों के उत्पत्ति की परंपरा बढती है। इस कारण इसे पापों का एवं अधर्म का मूल एवं दोषों का भंडार (ढेर-ढिगला) दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है यथा- ''मूलमेयम् अहम्मस्स, महादोस समुस्सयं''।

9. तुंगियापुरी (नगरी) के श्रमणोपासक-

तुंगिया नामक नगरी में अनेक आदर्श श्रमणोपासक रहते थे। एक बार वहां पार्श्वनाथ भगवान के शासनवर्ती स्थविर श्रमण 500 श्रमण परिवार से पधारे। वे श्रावक मिलकर पर्यूपासना करने लगे। दर्शन वंदन कर धर्मोपदेश सुना, प्रश्न पूछे समाधान प्राप्त किया एवं विनय भक्ति करके चले गये। कुछ समय बाद उसी नगरी में भगवान महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ। वहां गौतम स्वामी पारणा लेने गोचरी चले गये नगर में लोगों से चर्चा सुनने को मिली कि यहां पार्श्वनाथ भगवान के स्थविरों से अमुक श्रावकों ने ऐसा पूछा और यह समाधान श्रमणों ने दिया।

गौतम स्वामी ने जो भी सुना भगवान की सेवा में आने पर निवेदन किया और पूछा कि ऐसा उत्तर स्थविर दे सकते हैं और यह उत्तर उनका सही है। भगवान ने उस घटनाक्रम एवं उत्तरों के सत्य होने का कथन किया।

10. श्रमणोपासक का परिचय, गुण वर्णन- वे श्रमणोपासक ऋद्धि सम्पन्न, देदिप्यमान (यशस्वी) थे। मकान, शयन, भवन, आहार, पानी, यान वाहन से सम्पन्न थे। प्रभूतधन एवं स्वर्ण-रजत से सम्पन्न थे। संपत्ति के आदान-प्रदान के व्यवसाय वाले थे। प्रचुर भोजन उनके घर में अवशेष रहता था। दास, दासी नौकर पशु धन से भी संयुक्त थे।

जीवा जीव पदार्थों के ज्ञाता पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बंध, मोक्ष के ज्ञान में एवं उसके विवेक में कुशल थे। देवों के सहाय की चाहना नहीं करने वाले, यक्ष राक्षस, आदि से भी नहीं डरने वाले अर्थात् ये देव महान् उपद्रव करके भी उन्हें धर्म से चलायमान नहीं कर सकते थे। वे निर्ग्रन्थ प्रवचन में शंका कांक्षा वितिगिच्छा आदि से रहित थे। वे निर्ग्रन्थ प्रवचन में लब्धार्थ ग्रहितार्थ पृच्छितार्थ अभिगतार्थ एवं विनिश्चयार्थ थे अर्थात् जिनमत के तत्त्वों को पूर्ण रुप से समझे हुए थे। उनके अंतर तह तक हाड हाड में धर्म रंग धर्म प्रेम-अनुराग भरा हुआ था। वे ऐसा अनुभव करते थे कि 'यही निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थ भूत है, परमार्थ रूप है, शेष सारे संसार प्रपंच निरर्थक है, उनसे आत्मा का मनुष्य भव प्राप्त करने का कोई प्रयोजन सिद्ध होने वाला नहीं है।'

उनके घर का मुख्य प्रवेश द्वार अंदर से बंद नहीं रहता था अथवा तो यथासमय द्वार खुले ही रहते थे। वे बिना प्रयोजन राज अंतःपुर या अन्य घरों में प्रवेश नहीं करते अर्थात् वे ब्रह्मचर्य एवं शील में पूर्ण मर्यादित थे। अथवा सर्वत्र जिनका पूर्ण विश्वास जमा हुआ था। उन्होंने बहुत से व्रत नियम त्याग प्रत्याख्यान ले रखे थे। अष्टमी चतुर्दशी अमावस पूनम का प्रतिपूर्ण (आश्रव त्याग की प्रमुखता से) पौषध करते थे। श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक एषणीय कल्पनीय आहार पानी, वस्त्र-पात्र, मकान, शय्या, औषध भेषज आदि प्रतिलाभित करते हुए स्वयं भी तपस्याओं के द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते थे।

11. श्रमण गुणों का अन्य सूत्रों में वर्णन किया गया है। औपपातिक सूत्र देखें। भगवान के श्रमण भी कुत्रिकापण, देवाधिष्ठित ? दुकान के समान गुणों के भंडार रूप होते हैं।

12. भगवान के अथवा श्रमणों के दर्शन करने के लिये श्रावक पैदल भी जाते और वाहन से भी। स्नान आदि नित्य क्रिया करके भी जाते और बिना किये भी जाते। अकेले भी जाते और समूह रूप में एकत्रित होकर भी जाते। तुंगियापुरी के श्रावक पैदल चल कर गये थे। स्नानविधि क्रिया पूर्ण करके समूह के साथ गये थे। स्नान क्रिया की पूर्ण विधि के संक्षिप्त पाठ के लिये भलावण देते हुए सूत्र में ''कृतवलिकर्मा'' शब्द प्रयुक्त होता है जिसका अर्थ है- '' और भी स्नान सम्बन्धी सभी कृत्य विधियाँ की''।

13. मुनि दर्शन के प्रसंग से पांच अभिगम (आवश्यक विधि पालन) करना श्रावकों का प्रमुख कर्तव्य होता है। तुंगियापुरी के श्रावकों ने उसका बराबर पालन किया। पांच अभिगम में दूसरे अभिगम में अर्थ भ्रम के कारण लिपि दोष आदि से ''अ'' प्रक्षिप्त हो जाता है जो अनुपयुक्त है। ''अचित्ताणं दव्वाणं विउस्सरणियाए'' पाठ उपयुक्त है इसका मतलब अचित्त जूता शस्त्र आदि का त्याग करना आवश्यक होता है।

14. संयम का फल अनाश्रव है और तप का फल पूर्व संचित कर्म क्षय होना है।

15. अवशेष कर्मों के कारण ही जीव पूर्व तप से और सराग संयम से देवलोक में जाता है। कर्म अवशेष न रहे तो तप संयम से मुक्ति की प्राप्ति होती है।

16. गौतम स्वामी ने पारणे के लिये जाते समय मुखवस्त्रिका का प्रतिलेखन किया अनेक पात्रों का वस्त्रों का प्रतिलेखन प्रमार्जन किया फिर भगवान की आज्ञा लेकर गोचरी गये। आहार पानी आदि सम्पूर्ण सामग्री एक ही बार में स्वयं के लिये लाये। भगवान को दिखा कर फिर यथास्थान में बैठकर पारणा किया।

17. पर्यूपासना का फल- श्रमणों की सेवा में पहुंच कर वंदन नमस्कार कर कुछ समय बैठने से धर्म श्रवण की प्रथम उपलब्धि होती है जिससे क्रमशः 1. श्रवण, 2. ज्ञान, 3. विज्ञान, 4. प्रत्याख्यान, 5. संयम, 6. अनाश्रव, 7. तप, 8. निर्जरा, 9. अक्रिया, 10. सिद्धि-मुक्ति फल की प्राप्ति होती है।

18. राजगृह नगर के बाहर वैभारगिरि पर्वत के नजदीक ''महातपोपतीर प्रभव'' नामक एक झरना है। जो 500 धनुष लम्बा चौड़ा है, अनेक वृक्ष उसके आसपास सुशोभित है। उसमें उष्ण योनिक जीव और पुद्‌गल आकर उत्पन्न होते रहते हैं और निकलते रहते हैं अतः उससे उष्ण जल झरता रहता है।

अन्य तीर्थिक इसे ही ह्रद-कुण्ड कहते हैं एवं अनेक योजन का लम्बा चौड़ा कहते हैं।

छट्ठा सातवां उद्देशक-

1. प्रज्ञापना सूत्र पद 11 में वर्णित पूर्ण भाषा वर्णन यहां जानना।

2. प्रज्ञापना पद 2 में वर्णित देवों के स्थान सम्बन्धी वर्णन यहां जानना एवं जीवाभिगम सूत्र के तृतीय प्रतिपत्ति के वैमानिक उद्देशक का विमानों सम्बन्धी वर्णन यहां जानना।

आठवां उद्देशक-

1. चमरेन्द्र की सुधर्मा सभा- मेरू पर्वत से दक्षिण में असंख्य द्वीप समुद्र के बाद अरूणोदय समुद्र है। उसमें किनारे से 42 लाख योजन अंदर पानी में ''तिगिच्छ कूट'' नामक चमरेन्द्र का उत्पात पर्वत है। उससे दक्षिण दिशा में 6,55,35,50,000 छः अरब पचपन करोड पेंतीस लाख पच्चास हजार योजन समुद्र में जाने के बाद चमरेन्द्र की चमरंचा राजधानी में जाने का मार्ग है उस मार्ग से 40000 चालीस हजार योजन नीचे जाने पर चमरचंचा राजधानी आती है वहां उसमें चरमेन्द्र की सुधर्मा सभा है।

2. राजधानी- एक लाख योजन लम्बी चौड़ी जम्बूद्वीप प्रमाण राजधानी है। 150 योजन ऊंचा 50 योजन चौड़ा कोट है। दो हजार द्वार है। जो 250 योजन ऊंचे 125 योजन चौड़े हैं।

उपकारिकालयन (राज भवन क्षेत्र) 16हजार योजन लम्बा चौड़ा है। उसका आभ्यंतर बाह्य वर्णन विजय देव की राजधानी के समान है। यह सम्पूर्ण जन्माभिषेक पर्यन्त वर्णन विजय देव या सूर्याभ देव के समान जानना। जिसके लिये देखें राजप्रश्नीय औरजीवाभिगम का सारांश।

3. उत्पात पर्वत- ऊंचाई 1721 योजन। मूल में चौड़ाई 1022 योजन मध्य में 424 योजन ऊपर 123 योजन है। परिक्षेप सर्वत्र तिगुना साधिक है। सर्वरत्नमय यह पर्वत है। पद्मवर वेदिका और वनखंड से घिरा हुआ है। ऊपर शिखर पर बीच में प्राषादावतंसक (महल) है जो 250 योजन ऊंचा 125 योजन चौड़ा है। उसमें चबूतरे पर सपरिवार चमरेन्द्र के बैठने हेतु सिंहासन एवं भद्रासन है। नीचा लोक से तिर्च्छा लोक में आते समय चमरेन्द्र आदि इस पर्वत पर एक विश्राांति करते हैं, भ्रमण करते हैं। विमान संकोच आदि करते हैं।

नवमां उद्देशक- समय क्षेत्र का वर्णन जीवाभिगम सूत्र के समान है।

दसवां उद्देशक-

1. पंचास्तिकाय- धर्मास्तिकाय एवं अधर्मास्तिकाय द्रव्य से एक एक द्रव्य है, क्षेत्र से लोक प्रमाण है, काल से अनादि अनंत है, भाव से वर्णादि से रहित अरूपी अजीव है। आकाशास्तिकाय भी इसी प्रकार है किन्तु क्षेत्र से लोकालोक प्रमाण है।

जीवास्तिकाय द्रव्य से अनंत द्रव्य है, शेष धर्मास्तिकाय के समान है किन्तु अजीव नही है। पुद्‌गलास्तिकाय जीव के समान है किन्तु वर्णादि है रूपी अजीव है।

गुण- 1. धर्मास्तिकाय-चलन सहाय गुण, 2. अधर्मास्तिकाय- स्थिर सहायगुण, 3. आकाशास्तिकाय - अवगाह (जगह देने का) गुण, 4. जीवास्तिकाय- उपयोग गुण, 5. पुद्‌गलास्तिकाय-ग्रहण-धारण गुण।

2. संपूर्ण स्कंध धर्मास्तिकाय आदि कहा जाता है। किंचित भी न्यून हो उसे धर्मास्तिकाय आदि का देश कहा जाता है।

3. उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरूषकार पराक्रम वाला जीव अपने आत्म भाव को, जीवत्व भाव को दिखाता है, प्रकट करता है। जीव के मतिज्ञान आदि 12 उपयोगों के अनंत पर्यव है। उनसे भी वह अपने जीवत्व भाव को प्रकट करता है प्रकाशित करता है दिखाता है।

4. आकाश के दो विभाग है- लोकाकाश और अलोकाकाश। लोकाकाश में जीव अजीव आदि षट् द्रव्य रहते हैं। अलोकाकाश में ये उक्त कुछ भी नहीं होते। केवल अगुरु लघु गुण संयुक्त आकाश ही होता है।

5. नीचालोक में धर्मास्तिकाय आदि लोक के आधे भाग से अधिक है। ऊंचा लोक में ये आधे भाग से कम है। तिर्च्छालोक में असंख्यातवां भाग मात्र है।

नरक, पृथ्वी, द्वीप, समुद्र, देवलोक, घनोदधि आदि सभी में धर्मास्तिकाय आदि असंख्यातवें भाग मात्र है। सात नरक के प्रत्येक आकाशांतर में संख्यातवें भाग है।

तीसरा शतक

पहला उद्देशक-

1. देवों की वैक्रिय शक्ति- चमरेन्द्र वैक्रिय के द्वारा जम्बू द्वीप जितने क्षेत्र को कुमार कुमारिकाओं से सघन भर सकता है। एवं सामर्थ्य की अपेक्षा असंख्य द्वीप भरने की क्षमता होती है। किन्तु वैसा किया नहीं जाता है। इसी प्रकार सभी भवनपति व्यंतर ज्योतिषी के इन्द्रों की वैक्रिय शक्ति है। विशेषता यह है कि पल्योपम की स्थिति वालों के संख्याता द्वीप समुद्र भरने की क्षमता होती है एवं सागरोपम की स्थिति वालों के असंख्याता द्वीप समुद्र भरने की क्षमता होती है। बलीन्द्र के साधिक जम्बूद्वीप कहना।

वैमानिक में पहले देवलोक में इन्द्र के दो जम्बूद्वीप, दूसरे देवलोक में साधिक दो जम्बू द्वीप। तीसरे देवलोक में चार जम्बू द्वीप, चौथा देवलोक में साधिक 4 जम्बू द्वीप। पांचवे में आठ जम्बू द्वीप, छट्ठे में साधिक आठ। सातवें में 16जम्बू द्वीप और आठवें में साधिक सोलह जम्बू द्वीप। नवमें दसवें देवलोक में इन्द्र के 32 जम्बू द्वीप और ग्यारहवें 12वें देवलोक में इन्द्र के साधिक 32 जम्बू द्वीप भर सकने का कहना चाहिये।

चमरेन्द्र (दक्षिण दिशा)	संपूर्ण जम्बूद्वीप भरे	तिरछा असंख्याता द्वीप समुद्र भरे
बलीन्द्र (उत्तर दिशा)	जम्बूद्वीप झाझेरा	तिरछा असंख्याता द्वीप समुद्र
इनके सामानिक, तायत्तीसग	अपने इन्द्र के समान	तिरछा असंख्याता द्वीप समुद्र
लोकपाल अग्रमहिषी	अपने इन्द्र के समान	तिरछा संख्याता द्वीप समुद्र
नवनिकायदेव, व्यन्तर ज्योतिषी	एक जम्बूद्वीप	तिरछा संख्याता द्वीप समुद्र
पहले देवलोक के 3 बोल के	दो जम्बूद्वीप	तिरछा असंख्याता द्वीप समुद्र
पहले देवलोक लोकपाल अग्रमहिषी	दो जम्बूद्वीप	तिरछा संख्याता द्वीप समुद्र
दूसरे देवलोक 3 बोल के देव	दो जम्बुद्वीप झाझेरा	तिरछा असंख्याता द्वीप समुद्र

दूसरे देवलोक लोकपाल अग्रमहिषी	दो झाझेरा जम्बू.	तिरछा संख्याता द्वीप समुद्र
तीसरे के देव	चार जम्बूद्वीप	तिरछा असंख्याता द्वीप समुद्र
चौथे देवलोक के देव	चार जम्बूद्वीप झाझेरा	तिरछा असंख्याता द्वीप समुद्र
पाँचवें देवलोक के देव	आठ जम्बूद्वीप	तिरछा असंख्याता द्वीप समुद्र
छठे देवलोक के देव	आठ जम्बूद्वीप झाझेरा	तिरछा असंख्याता द्वीप समुद्र
सातवें देवलोक के देव	सोलह जम्बूद्वीप	तिरछा असंख्याता द्वीप समुद्र
आठवें देवलोक के देव	सोलह जम्बूद्वीप झाझेरा	तिरछा असंख्याता द्वीप समुद्र
नवमें दसवें देवलोक के देव	32 जम्बूद्वीप	तिरछा असंख्याता द्वीप समुद्र
ग्यारवें बारहवें देवलोक के देव	32 जम्बूद्वीप झाझेरा	तिरछा असंख्याता द्वीप समुद्र

सामानिक और त्रायत्रिंशक देवों की वैक्रिय शक्ति इन्द्र के समान ही समझना। अग्रमहिषी और लोकपाल के सामर्थ्य संख्याता द्वीप समुद्र का ही कहना। भरने की शक्ति दो जम्बू द्वीप प्रमाण समझना।

लोक पाल सभी इन्द्रों के चार चार ही होते हैं। त्रायत्रिंशक सभी इन्द्रों के तेंतीस ही होते हैं।

सामानिक देव- चमरेन्द्र 64000 बलीन्द्र- 60000 नवनिकायों के 6000 शकेन्द्र के 84000 ईशानेन्द्र के 80000 तीसरे देवलोक में 72 हजार, चौथे में 70 हजार, पांचवें में 60 हजार, छट्ठे में 50 हजार, सातवें में 40 हजार, आठवें में 30 हजार, नवें दसवें में 20 हजार, ग्यारहवें बारहवें में 10 हजार।

अग्रमहिषी– चमरेन्द्र के 5, बलीन्द्र के 5, नवनिकाय के 6-6, शक्रेन्द्र के 8, इशानेन्द्र के 8

लोकपाल– सामानिक से चार गुणे लोकपाल होते हैं।

2. अग्रमहिषियों के भी 1000 सामानिक देवियां होती है। महत्तरिका देवियां और परिषदा भी होती है।

3. भगवान द्वारा प्राप्त उत्तर को दूसरे गणधर अग्निभूति से सुनकर तीसरे गणधर वायुभूति को श्रद्धा नहीं होती है। भगवान से पुनः पूछकर फिर श्रद्धा करते हैं एवं दूसरे गणधर से क्षमायाचना करते हैं।

4. व्यंतर एवं ज्यातिषी देवों में लोकपाल और त्रायत्रिंशक नहीं होते। इनके चार हजार सामानिक देव होते हैं। चार-चार अग्रमहिषियां होती है।

5. भगवान महावीर स्वामी का अंतेवासी शिष्य तिष्यक अणगार शकेन्द्र का सामानिक देव बना। उसके चार अग्रमहिषी, 4 हजार सामानिक देव है। वैक्रिय शक्ति इन्द्र के समान है। तिष्यक अणगार ने बेले बेले पारणा किया। 8वर्ष संयम पर्याय का पालन किया। एक मास का संथारा आया।

6. भगवान महावीर स्वामी का अंतेवासी शिष्य कुरूदत्त पुत्र अणगार ईशानेन्द्र का सामानिक देव बना। छः महिने की संयम पर्याय में तेले तेले की तपस्या एवं पारणे में आयंबिल किया। 15 दिन का संथारा चला। आराधक हुआ।

7. ईशानेन्द्र का वर्णन– एक बार राजगृही नगरी में ईशानेन्द्र भगवान के दर्शन करने आया एवं सूर्याभ देव के समान अभी ऋद्धि एवं नाट्य विधि दिखा कर चला गया। गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान ने उसके पूर्व जन्म का वर्णन इस प्रकार किया।

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में ताम्रलिप्ति नामक नगरी में तामली नामक मोर्यपुत्र गाथापति रहता था। एक बार उसे चिंतन उत्पन्न हुआ कि पूर्व पुण्यवानी से सब अच्छे संयोग मिले हैं। अब भी मुझे शक्ति रहते धर्माचरण कर लेना चाहिये। तद्नुसार उसने स्वजन सम्बन्धियों को भोजन कराकर बड़े पुत्र को कुटुम्ब भार संभला कर ''प्राणामा'' नामक तापसी प्रव्रज्या अंगीकार की। बेले-बेले पारणे का अभिग्रह किया। पारणे में प्राप्त भोजन को वह 21 बार जल में धोकर आहार करता था आतापना लेता और राजा, रंक, पशु, पक्षी, देव, मानव जो भी दिख जाता, उसे प्रणाम करता। अंत में शररीर के कृश-शुष्क हो जाने पर पादपोपगमन संथारा किया।

चमर चंचा राजधानी में उस समय इन्द्र का विरह था। अतः वहां के देव देवी उसके पास संथारे में पहुंचे और अपना स्वामी इन्द्र बनने के लिये नियाणा करने का निवेदन करने लगे। तामली तापस ने उनके निवेदन एवं आग्रह पर कोई ध्यान नहीं दिया और अपने संथारे में लीन रहा। वे देव देवियां चले गये।

आयु समाप्त होने पर 60 हजार वर्ष की संयम पर्याय पूर्ण कर एवं दो महिने का संथारा पूर्ण करके वह तामली तापस ईशानेन्द्र देव बना।

चमर चंचा राजधानी के देवों को जब यह ज्ञात हुआ तो वे अत्यन्त कुपित हुए और वहां मर्त्य लोक में आकर उसके मृत शरीर को रस्सी से बांध कर मुंह में थूक कर नगर में घुमाया और महान अपमान निंदा की।

यह सब घटनाचक्र ईशानेन्द्र ने अपने देवों के द्वारा जाना तो प्रचंड क्रोध में आकर चमर चंचा राजधानी को तेजो लेश्या से प्रभावित किया। जिससे वह राजधानी तपतपायमान होने लगी। वहां के देवी देवी घबरा कर भाग दौड़ करते करते परेशान हो गये। आखिर उन्होंने वहीं रहे हाथ जोडकर ऊपर मुख करके अनुनय विनय करते हुए ईशानेन्द्र से क्षमा मांगी। ईशानेन्द्र ने अपनी लेश्या संवृत कर ली। तब से वे असुर कुमार देव देवियां पुनः ईशानेन्द्र का आदर सत्कार करने लगे एवं आज्ञा निर्देश का पालन करने लगे। द्वेष भाव को त्याग दिया।

ईशानेन्द्र साधिक दो सागरोपम की स्थिति पूर्ण करके महाविदेह क्षेत्र से मुक्ति प्राप्त करेगा।

8. शक्रेन्द्र के विमानों से ईशानेन्द्र के विमान कुछ ऊंचाई पर है अर्थात् दोनों की समतल भूमि एक होते हुए भी उनका भूमि क्षेत्र कुछ उन्नत है जैसे सीधी हथेली में भी उन्नत और समतल दोनों अवस्था दिखती है।

9. शक्रेन्द्र ईशानेन्द्र का आपसी शिष्टाचार रहता है, छोटे बड़े मित्र के समान। शक्रेन्द्र छोटा और ईशानेन्द्र बड़ा। आमने सामने मिल सकते हैं, एक दूसरे को देख भी सकते हैं, आलाप संलाप भी करते हैं। ''दक्षिणार्थ लोकाधिपति शक्रेन्द्र देवेन्द्र देवराज !'' उत्तर लोकाधिपति ईशानेन्द्र देवराज !'' ये इनका संबोधन नाम होता है।

दोनों के आपस में कभी विवाद भी हो जाता है तो शक्रेन्द्र तीसरे देवलोक के इन्द्र सनत्कुमारेन्द्र को याद करता है, मन से ही बुलाता है, तो शीघ्र ही वह इन्द्र आता है और वह जो भी फेंसला आदेश देता है उसे दोनों स्वीकार कर लेते हैं।

10. सनत्कुमार देवेन्द्र भवी, सम्यग्दृष्टि परित्त-संसारी, सुलभ बोधि, एकाभवतारी है। महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर संयम तप द्वारा मुक्ति प्राप्त करेगा।

अभी सनत्कुमार की सात सागरोपम की स्थिति है वह साधु साध्वी श्रावक श्राविकाओं का परम भक्त परम हितैषी है।

दूसरा उद्देशक-

1. एक बार चमरेन्द्र भगवान महावीर स्वामी के दर्शन करने राजगृही नगरी में आया उपदेश श्रवण कर नाट्य विधि का प्रदर्शन करके चला गया।

2. असुरकुमार देवों का सामर्थ्य नीचे सातवीं नरक तक जाने का किन्तु जाते तीसरी नरक तक ही है। पूर्व मित्र या पूर्व शत्रु नरक में हो उसको सुख दुःख देने के निमित्त से जाते हैं।

तिर्च्छा असंख्य द्वीप समुद्र पर्यन्त जाने की क्षमता है परन्तु नन्दीश्वर द्वीप पर्यन्त गये हैं, जाते हैं। यह गमन तीन दिशाओं की अपेक्षा है। दक्षिण में असंख्य द्वीप समुद्र उनका मार्ग क्षेत्र ही है वहां से तो उनका जाना आना जम्बूद्वीप तक तीर्थंकर जन्म आदि पर चलता ही रहता है।

ऊपर प्रथम देवलोक तक गये और जाते हैं सामर्थ्य बारहवें देव लोक पर्यन्त है। पहले देवलोक के साथ इनका भव प्रत्ययिक जाति (जन्म) वैर होता है। वे शक्रेन्द्र के आत्म रक्षक देवों को त्रासित करते रहते हैं वहां से छोटे मोटे सामान्य रत्न चुरा कर ले आते हैं। जब शक्रेन्द्र को मालूम पड़ता है तो उन देवों को शारीरिक कष्ट देता है।

पहले देवलोक से देवियों को भी यहां ला सकते हैं। और यहां लाने के बाद भी उनकी इच्छा होने पर उनके साथ परिचारणा भी कर सकते हैं। किन्तु बलात्कार नहीं कर सकते। वहां प्रथम देवलोक में उनके साथ परिचारणा नहीं कर सकते हैं।

3. असुर कुमारों का प्रथम देवलोक में उपद्रवार्थ जाना भी ''लोक आश्चर्य भूत'' गिना गया है। वे अरिहंत या अरिहंत भगवान के श्रमण की निश्रा आलंबन लेकर ही जा सकते हैं। सभी नहीं जाते हैं कोईक महर्द्धिक देव ही कभी जाते हैं।

4. वर्तमान में जो चमरेन्द्र असुरेन्द्र है वह भगवान महावीर की निश्रा लेकर एक बार पहले देवलोक में शक्रेन्द्र के पास गया है।

5. चमरेन्द्र का पूर्वभव आदि- बेभेल नामक सन्निवेष में पूरण नाम का गाथापति रहता था वह ऋद्धि सम्पन्न सेठ था। तामली के समान इसे भी धर्माराधना का विचार उत्पन्न हुआ। तद्नुसार उसने ''दानामा'' नामक तापसी प्रव्रज्या स्वतः अंगीकार की। बेले-बेले की निरन्तर तपस्या एवं आतापना करने लगा। भिक्षा के लिये काष्ट पात्र के चार खंड बना रखे थे उसमें से तीन खंड में जो भिक्षा आती वह दान कर देता और एक अपना खंड रखा था उसमें प्राप्त भिक्षा से वह पारणा करता था।

चार खंड वाले चौमुखी काष्ट पात्र के एक खण्ड की भिक्षा पथिकों को दूसरे खंड की भिक्षा कुत्तों आदि पशु पक्षियों को, तीसरे पात्र की भिक्षा मच्छकच्छ जल जन्तुओं को वह तापस दे देता था। वर्षों तक इस प्रकार तप करते हुए उसका शरीर कृश शुष्क सा हो गया। सन्निवेष के बाहर अग्नि कोण- दक्षिणपूर्व में जाकर आधानिवर्तन क्षेत्र साफ किया एवं पादपोपगमन संथारा स्वीकार किया।

इस प्रकार 12 वर्ष की तापस पर्याय एवं एक मास के संथारे की पूर्ण पालन करके यह चमरेन्द्र देवेन्द्र बना। यहां उत्पन्न होते ही स्वाभाविक अवधि ज्ञान का उपयोग लगाने से उसने अपने ऊपर सीध में ऊंचे प्रथम देवलोक में शक्र सिंहासन पर शक्रेन्द्र को देखा तो उसे बहुत ही बुरा लगा। अपने सामानिक देवों को बुला कर पूछा यह कौन है उन्होंने महर्द्धिक शक्रेन्द्र का परिचय दिया।

परिचय सुनकर उसके ईर्ष्या द्वेष से क्रोध की प्रचण्डता बढ़ गई और स्वयं वहां जाकर शक्र को अपमानित कर उसकी शोभा को नष्ट करने के लिये तैयार हुआ। अवधिज्ञान से किसी महात्मा को शरण हेतु देखने लगा उसने भगवान महावीर स्वामी को देखा। उस समय भगवान छद्मस्थ काल में सुंसुमारपुर नगर के अशोक वनखंड नामक बगीचे में अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वी शिला पट्ट पर तेले की तपस्या से एक रात्रि की महाप्रतिमा 12 वीं पड़िमा ग्रहण कर ध्यान में लीन थे।

चमरेन्द्र ने भगवान की शरण लेकर जाने का निश्चय किया। अपने शस्त्रगार से ''परिघ'' नामक शस्त्र लेकर अकेला ही अपने उत्पात पर्वत पर होकर विकुवर्णा करके भगवान के समीप आया। वंदना नमस्कार किया और ''हे भगवन्! आपकी शरण है'' मैं इन्द्र की आशातना करना उसकी शोभा भ्रष्ट करना चाहता हूं। ऐसा कह कर वहां से अलग जाकर विकराल भयानक एक लाख योजन का राक्षसी रूप विकुर्वित किया एवं उछलते, कूदते, सिंह नाद करते, गर्जन करते, ज्योतिषी विमानों को अलग हटाते हुए, तिच्छे लोक से बाहर निकला। फिर ऊंचे लोक में असंख्य योजन क्षेत्र पार करके प्रथम देवलोक की सुधर्मा सभा के पास पहुंच गया। एक पांव पद्मवर वेदिका में और एक पांव सुधर्मा सभा में रखते हुए परिध रत्न से इन्द्र कील को प्रताड़ित करते हुए शक्रेन्द्र को अपशब्दों से सम्बोधित करके कहने लगा कि आज मैं तुझे मारुंगा और तुम्हारी अप्सराओं को मेरे वश में कर लूंगा।

शक्रेन्द्र अमनोज्ञ अश्रुतपूर्व कठोर, शब्दों को सुनकर क्रुद्ध हुआ बोला, हे असुरराज ! आज तेरा शुभ नहीं है, खैर नहीं है, सुख नहीं है, ऐसा कह कर सिंहासन पर बैठे ही अपना व्रज उठाया और हजारों अग्नि ज्वालाओं को छोड़ते हुए जाज्वल्यमान अग्नि से भी अत्यधिक ताप दीप्ति वाले महाभयावह भयंकर वज्र को चमरेन्द्र के वध के लिये छोड़ दिया।

उसे सामने आते दखकर ही चमरेन्द्र डरा और उल्टा सिर करके (नीचे सिर उपर पांव करके) उत्कृष्ट गति से चल दिया और भगवान के दोनों पांवों के बीच में प्रविष्ट हो गया। शक्रेन्द्र ने उपयोग लगा कर जाना कि यह चमरेन्द्र भगवान महावीर की शरण लेकर आया है तो उसे बहुत अफसोस हुआ कि '' अरे अकृत्य हो गया'' और शीघ्र अपने शस्त्र को पुनः पकड़ने के लिये उसके पीछे चल दिया। भगवान के मस्तक से चार अंगुल दूर रहे हुए ही उस शस्त्र को शक्रेन्द्र ने पकड़ लिया। एवं भगवान से हकीकत कह कर क्षमा मांगी।

फिर दूर जाकर भूमि आस्फालन कर चमरेन्द्र को सम्बोधन कर रहा है हे चमर ! मैं तुझे आज छोड़ता हूं। जा, आज से तूं मुक्त है श्रमण भगवान महावीर के प्रताप से छोड़ा जाता है। मेरे से तू निर्भय रह। ऐसा कह कर शक्रेन्द्र अपने स्थान चला गया।

चमरेन्द्र भी वहां से निकल कर भगवान को वंदन कर अपने स्थान पर गया। अपने देवों को सारी हकीकत कही और फिर महान् ऋद्धि के साथ भगवान के दर्शन करने के लिये आया वंदना नमस्कार कर कृतज्ञता प्रगट की क्षमा मांगी और बारंबार कीर्त्तन करते हुए नाटक दिखाकर चला गया। चमरेन्द्र वहां एक सागरोपम की स्थिति पूर्ण होने पर महाविदेह क्षेत्र से मुक्ति प्राप्त करेगा।

विशेष ज्ञातव्य– सभी इन्द्रियादि महर्द्धिक देवों का जन्माभिषेक विधि सहित किया जाता है, जो सूर्याभ देव के वर्णन में राजप्रश्नीय सूत्र में बताया गया है। किन्तु चमरेन्द्र असुरराज का जन्माभिषेक भी यथा- समय नहीं हो सका। देव दूष्य वस्त्र ढंकी शय्या में जन्म लेते ही देवदूष्य वस्त्र हटाकर उठते ही परिध शस्त्र लेकर अकेला ही चल दिया था। बाद में कभी जन्माभिषेक हुआ हो तो शास्त्र में वर्णन नहीं है।

6. नीची दिशा में चमरेन्द्र की गति तेज होती है उससे शक्रेन्द्र की मंद होती है उससे शक्रेन्द्र के शस्त्र वज्र की गति मंद होती है। इसी कारण वज्र चमरेन्द्र को मार्ग में ही नहीं लगा एवं भगवान के वज्र लगने से पहले शक्रेन्द्र भी पहुंच गया। इसी कारण शक्रेन्द्र भी चमरेन्द्र को मार्ग में ही नहीं पकड़ सका।

चमरेन्द्र को जितना नीचे आने में एक समय लगे, तो शक्रेन्द्र को दो समय और वज्र को तीन समय लगे। ऊपर की अपेक्षा शक्रेन्द्र को एक समय, वज्र को दो समय और चमरेन्द्र को तीन समय लगते है।। स्वयं की अपेक्षा चमरेन्द्र एवं शक्रेन्द्र की तिर्च्छलोक मे मध्यम गति होती है ऊपर नीचे जघन्य उत्कृष्ट गति होती है।

7. एक दूसरे की शक्ति सामर्थ्य को देखने पहचाने अजमाइस करने के लिये अनंत काल से कभी चमरेन्द्र ऊपर शक्रेन्द्र के पास जाता है। चोरी से जाने वाले देव यदा कदा जाते रहते होंगे। उनकी गिनती अच्छेरे में नहीं आती है और यहां भी विवक्षित नहीं की गई है।

जाने की मार्गणा	**जितना क्षेत्र जावे**	**जाने में जितना समय लगता है**
(1) शक्रेन्द्रजी को	ऊँचा क्षेत्र जाने में	1 समय लगता है
(2) वज्र को	ऊँचा क्षेत्र जाने में	2 समय लगता है
(3) चमरेन्द्रजी को	ऊँचा क्षेत्र जाने में	3 समय लगता है
(1) चमरेन्द्रजी को	नीचा क्षेत्र जाने में	1 समय लगता है
(2) शक्रेन्द्रजी को	नीचा क्षेत्र जाने में	2 समय लगता है
(3) वज्र को	नीचा क्षेत्र जाने में	3 समय लगता है

मार्गणा	ऊँचा क्षेत्र जावे	तिरछा क्षेत्र जावे	नीचा क्षेत्र जावे	ऊं. भाग	ति. भाग	नीचा भाग
शक्रेन्द्रजी 1 समय में	संख्यात भाग अधिक जावे 3	संख्यात भाग अधिक जावे 2	सबसे थोड़ा जावे 1	24	18	12
वज्र 1 समय में	विशेषाधिक जावे 3	विशेषाधिक जावे 2	सबसे थोड़ा जावे 1	12	10	8
चमरेन्द्र 1 समय में	सबसे थोड़ा जावे 1	संख्यात भाग अधिक जावे 2	संख्यात भाग अधिक जावे 3	8	16	24

मार्गणा	**ऊँचा जाने की**	**नीचा जाने की**
(1) शकेन्द्रजी	थोड़ा काल	संख्यात गुणाकाल
(2) वज्र	थोड़ा काल	विशेषाधिक काल
(3) चमरेन्द्रजी	संख्यात गुणाकाल	थोड़ा काल

(1) शकेन्द्रजी ऊँचा चमरेन्द्रजी नीचा	तुल्य काल	सबसे थोड़ा
(2) शक्रेन्द्रजी नीचा वज्र ऊँचा	तुल्य काल	संख्यात गुणा
(3) चमरेन्द्रजी ऊँचा वज्र नीचा	तुल्य काल	विशेषाधिक

तीसरा उद्देशक-

1. क्रिया पहले होती है तन्निमित्तक वेदना बाद में होती है।

2. श्रमण निर्ग्रन्थों को भी प्रमाद और योग निमित्तक क्रियाएं होती है।

3. जीव जब तक चलता फिरता है, स्पंदन आदि क्रिया करता है, अन्यान्य भावों में परिणमन करता है, तब तक मुक्त नहीं होता है। क्योंकि वे क्रियाएं जब तक है, तब तक आश्रव है, बंध है। अतः जब वे क्रियाएं समाप्त हो जाती है, तब अक्रिय बना हुआ वह जीव मुक्त हो सकता है। अग्नि से जले घास के समान एवं गर्म तवे पर नष्ट हुई पानी की बूंद के समान उसके कर्म संचय नष्ट हो जाते हैं।

जिस प्रकार छिद्रों वाली नाव पानी में डूबी होती है। उसके छिद्रों को बंद कर दिया जाय और पानी बाहर फेंक दिया जाय, त्यो-त्यों वह ऊपर आ जाती है और सम्पूर्ण पानी खाली कर देने पर वह नाव जल से पूर्ण ऊपर आ जाती है। उसी तरह क्रिया व कर्म से रहित बना जीव भी ऊर्ध्व सिद्ध अवस्था में पहुंच जाता है। समिति गुप्ति वंत श्रमण उपयोग पूर्वक संयम जीवन की आराधना करते हुए क्रमशः अक्रिय बन जाता है

4. इस उद्देशक में मंडित पुत्र अणगार (गणधर) के प्रश्नों का संग्रह है।

5. प्रमत्त संयम एक जीव का काल जघन्य एक समय उत्कृष्ट देशोन क्रोड पूर्व होता है। अनेक जीवों की अपेक्षा सदाकाल शाश्वत है।

अप्रमत्त संयत एक जीव का काल जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन क्रोड पूर्व। अनेक जीव की अपेक्षा आठ गुणस्थानों (7 से 14) की अपेक्षा शाश्वत है। संयम प्राप्ति के प्रारम्भ में अप्रमत्त संयम ही प्राप्त होता है अतः इसका जघन्य काल भी एक समय नहीं होकर अंतमुर्हूर्त है।

6. लवण समुद्र के पानी के घटने बढ़ने सम्बन्धी वर्णन जीवाभिगम सूत्र सारांश में देखना चाहिये।

चौथा-पांचवां उद्देशक-

1. भावितात्मा अणगार- देव द्वारा कृत दो या दो से अधिक रूप को या वृक्ष के बीज फल आदि दो पदार्थ में से एक को या दोनों को देख सकता है और दोनों को ही नहीं देखे, यों चारों भंग बन जाते हैं। अवधिज्ञान मतिज्ञान आदि की विचित्रता से ऐसा संभव होता है।

2. वायुकाय- केवल एक तरफ की पताका के रूप ही वैक्रिय से बना सकते हैं अन्य रूप नहीं बनाते। अनेकों योजन जा सकते हैं। वे स्व ऋद्धि से जाते हैं, पर ऋद्धि से नहीं। वे वैक्रिय रूप गिरी हुई ध्वजा के समान भी हो सकते हैं एवं उठी हुई ध्वजा रूप भी।

3. बादल- स्त्री, पुरुष, वाहन आदि विविध रूपों में परिणमन होकर पर प्रयोग से अनेकों योजन जा सकते हैं। उलटे सुलटे किधर भी जा सकते हैं।

4. उत्पन्न होने और मरने आदि में जो लेश्या का कथन है वह भी लेश्या द्रव्यों को लेकर ही कथन है।

5. भावितात्मा का अणगार भी विविध रूप बना सकता है गृहस्थ का, संन्यासी का, पशु का, पक्षी का, एवं अन्य भी रूप बना सकता है। तथा दूर गमन भी कर सकता है। वैसे रूप अनेकों बना सकता है। क्षमता एक जम्बूद्वीप भरने की होती है किन्तु करते नहीं।

6. प्रमादी अणभार विकुर्वणा करते है, विकुर्वणा करने वालों को आगम शब्दों में मायी कहा जाता है, अमायी विकुर्वणा नहीं करते। विकुर्वणा करके आलोचना प्रायश्चित करने वाला भी फिर अमायी कहलाता हैं। आलोचना प्रायश्चित नहीं करने वाले मायी ही कहे जाते हैं, एवं विराधक होते हैं। खूबखाना, खूबनिकालना, खूबपरिणमन कर शरीर को पुष्ट करना ये सब मायी प्रमादी के कर्तव्य हैं, अतः विकुर्वणा आदि प्रमाद प्रवत्तियां भी वह मायी ही करता है। अमायी अल्प रूक्ष खाकर केवल शरीर निर्वाह संयम पालता हैं, उसका शरीर भी अपुष्ट होता है, विक्रिया आदि नहीं होती।

7. बाहर के पुद्‌गल लेकर ही विकुर्वणा करके रूप बनाये जा सकते हैं। बाहर के पुद्‌गल लिये बिना वैक्रिय रूप कोई भी नहीं बना सकता, चाहे देव हो या श्रमण।

8. विकुर्वित रूप, ''रूप'' ही कहा जायेगा। मूल व्यक्ति जो है वही कहा जायेगा। अर्थात् घोड़े का रूप किया अणगार घोड़ा नहीं है अणगार है।

9. जो अणगार विकुर्वण करके आलोचना प्रायश्चित नहीं करते है। वे आभियोगिक देव होते हैं। जो आलोचना प्रायश्चित कर लेते है। वे आभियोगिक के अतिरिक्त देव होते हैं। वे आराधक होते हैं।

छट्ठा उद्देशक–

1. जो मिथ्यादृष्टि जीव वैक्रिय सम्पन्न और अवधि सम्पन्न (विभंग ज्ञान वाला) है, वह इच्छित वैक्रिय कर सकता है एवं विभंग से जान भी सकता है किन्तु अयथार्थ जानता है उल्टा सुल्टा जानता है। वैक्रिय किये को यह स्वभाविक है ऐसा जानता है, स्वाभाविक को वैक्रिय किया हुआ जानता है। जो देखता है वह नहीं जानकर उसे दूसरा जान या मान लेता है। यथा- राजगृही देखे और ''वाराणसी है'' ऐसा मान ले। नया नगर विकुर्वित करे और जाने कि यह भी कोई कोई वास्तविक नगर दीख रहा है मेरा बनाया नहीं दीख रहा है, इत्यादि। जबकि सम्यग् दृष्टि उक्त सभी स्थितियों को यथार्थ रूप में जानता देखता समझता है, उसे ऐसा गलत भ्रम नहीं होता है।

सातवां उद्देशक–

लोकपाल– शक्रेन्द्र के चार लोकपाल है- 1. सोम, 2. यम, 3.वरूण, 4. वेश्रमण। चारों के चार विमान है- 1. संध्याप्रभ, 2. वरशिष्ट, 3. स्वयंज्वल, 4. वल्गु। ये चारों विमान शक्रेन्द्र के सौधर्मावतंसक विमान से असंख्य योजन दूर क्रमशः 1. पूर्व, 2. दक्षिण, 3. पश्चिम, 4. उत्तर में है। साढ़े बारह लाख योजन विस्तार वाले ये विमान है। विमान का वर्णन सौधर्मावतंसक विमान के समान है। इनकी राजधानी इनके विमान के सीध में नीचे तिर्च्छालोक में है। जो जम्बूद्वीप प्रमाण है। कोट वगैरह शक्रेन्द्र की राजधानी से आधे हैं। उपकारिकालयन सोलह हजार योजन विस्तार में हैं। उनमें चार प्रसादों की पंक्तियां हैं शेष वर्णन नहीं है अर्थात् उपपात सभा आदि नहीं है।

सोम लोकपाल– स्वयं के विमान वासी देव एवं विद्युत कुमार अग्निकुमार वायुकुमार जाति के भवनपति देव देवी, चन्द्र सूर्य आदि सर्व ज्योतिषी देव देवी सोम लोक पाल के अधीन होते हैं।

मेरू पर्वत से दक्षिण विभाग में ग्रहों की अनेक प्रकार की स्थितियां अभ्र विकार, गर्जना, बिजली, उल्कापात, गंधर्व नगर, संध्या, दिग्दाह, यक्षोदीप्त, धूंअर, महिका, रजउद्घात, चन्द्र ग्रहण, सूर्य ग्रहण, जलकुंडादि, प्रतिचन्द्र-सूर्य इन्द्र धनुष सभी प्रकार की हवाएं, ग्राम-दाह आदि प्राणक्षय, धनक्षय, कुल क्षय आदि, सोम लोकपाल की जानकारी में होते हैं।

अंगारक (मंगल), विकोलिक, लोहिताक्ष, शनिश्चर, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, बुध बृहस्पति, राहु ये देव सोम लोकपाल के पुत्र स्थानिय माने गये हैं। सोम लोकपाल की स्थिति $1\frac{1}{3}$ पल्योपम की है और पुत्र स्थानीय देवों की एक पल्योपम की स्थिति है।

यम लोकपाल- स्वयं के विमान वासी देव, प्रेतकायिक व्यंतर देव, असुरकुमार जाति के भवनपति देव देवी, परमाधामी देव, कान्दर्पिक, आभियोगिक देव, यम लोकपाल की अधीनता में होते हैं।

मेरू से दक्षिण विभाग में होने वाले छोटे बड़े कलह, युद्ध, संग्राम, विविध रोग, यक्ष भूत आदि के उपद्रव, महामारी आदि एवं उनसे होने वाले कुल क्षय, ग्राम क्षय, धन क्षय आदि यम लोकपाल की जानकारी से होते हैं।

पन्द्रह परमाधामी देव इनके पुत्रस्थानीय माने गये हैं। स्थिति सोम लोकपाल के समान होती है।

वरूणलोकपाल- स्वयं के विमानवासी देव, नागकुमार, उदधिकुमार, स्तनित कुमार जाति के देव देवी, वरूण लोकपाल के अधीन होते हैं।

मेरू से दक्षिण में अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सुवृष्टि, झरना, तालाब आदि और इनसे होने वाले जनक्षय धनक्षय आदि वरूण लोकपाल की जानकारी में होते हैं।

कर्कोटक, कर्दमक, अंजन, शंख, पालक, पुण्ड्र, पलाश मोद,जय, दधिमुख, अयंपुल कातरिक ये इनके पुत्रस्थानीय देव माने गये हैं। वरूण लोकपाल की स्थिति देशोन दो पल्योपम की है, इनमें पुत्रस्थानीय देवों की एक पल्योपम की स्थिति है।

वैश्रमण लोकपाल- स्वयं के विमानवासी देव, सुवर्णकुमार, द्वीपकुमार, दिशाकुमार जाति के देव देवी, वाणव्यंतर देव देवी आदि ये वैश्रमण लोकपाल के अधीन होते हैं।

मेरू से दक्षिण में सोने चांदी आदि अनेक प्रकार की खानें, गड़ा पड़ा धन, मालिक रहित धन, धनवृष्टि, सोनेया आदि की वृष्टि, पुष्पादि की वृष्टि। गंधमाला चूर्ण आदि सुगंधी पदार्थ की वृष्टि, वस्त्र, भोजन (पात्र) एवं क्षीर सुकाल दुष्काल सुभिक्ष दुर्भिक्ष, सस्ताई, महंगाई एवं निधान, श्मसान, पर्वत, गुफा भवन आदि में रखे हुए धन, मणि, रत्न इत्यादि ये वैश्रमण लोकपाल की जानकारी में होते हैं।

पूर्णभद्र, मणिभद्र, शालिभद्र, सुमनभद्र, चक्र, रक्ष, पूर्णरक्ष, सद्धान, सर्वजश, सर्वकाम, समृद्धि, अमोघ, असंग ये इनके पुत्रस्थानीय देव माने गये हैं। वैश्रमण लोकपाल की स्थिति दो पल्योपम की होती है। इनके पुत्रस्थानीय देवों की स्थिति एक पल्योपम की होती है।

आठवां उद्देशक- असुरकुमार आदि10 भवन पति में और वैमानिक के 10 स्थानों में पांच-पांच अधिपति देव हैं। अर्थात् भवनपति में दक्षिण उत्तर के दो इन्द्र और उनके चार-चार लोकपाल यों 10-10 अधिपति देव हैं। वैमानिकों में दस इन्द्रों के दस स्थान है उनमें एक इन्द्र और चार लोकपाल यों पांच अधिपति देव है। लोकपालों के नाम वैमानिक में एक सरीखे हैं- सोम, यम, वरूण और वैश्रमण। असुरकुमार आदि दसों के नाम भिन्न-भिन्न है किन्तु उत्तर दक्षिण में नाम सरीखे है-

असुरकुमार के लोकपाल	-	सोम, यम, वरुण, वैश्रमण।
नागकुमार के	-	कालपाल, कोलपाल, शैलपाल, शंखपाल।
सुवर्णकुमार के	-	चित्र, विचित्र, चित्रपक्ष, विचित्रपक्ष।
विद्युतकुमार के	-	प्रभ, सुप्रभ, प्रभकांत, सुप्रभकांत।
अग्निकुमार के	-	तेजस, तेजससिंह, तेजकांत, तेजप्रभ।
द्वीपकुमार के	-	रूप, रूपांश, रूपकांत और रूपप्रभ।
उदधिकुमार के	-	जल, जलरूप, जलकांय, जलप्रभ।
दिशाकुमार के	-	त्वरित गति, क्षिप्रगति, सिंहगति, सिंहविक्रमगति।
पवनकुमार के	-	काल , महाकाल, अंजन, अरिष्ट।
स्तनितकुमार के	-	आवर्त्त, व्यावर्त्त, नंदिकावर्त्त, महानंदिकावर्त।

पिशाच भूत आदि व्यंतर देवों के उत्तर एवं दक्षिणवर्ती दो-दो इन्द्र ही अधिपति देव होते हैं। ज्योतिषी में सभी द्वीप समुद्रों के ज्योतिषियों के चन्द्र और सूर्य ये दो-दो अधिपति देव होते हैं। सभी एक-एक चन्द्र सूर्य का अपना परिवार स्वतंत्र होता है। व्यंतर ज्योतिषी में लोकपाल नहीं होते हैं।

नवमां दसवां उद्देशक-

1. जीवाभिगम तीसरी प्रतिपति का तीसरा ज्योतिषी उद्देशक का पूरा वर्णन यहां जानना।

2. सभी इन्द्रों की बाह्य आभ्यंतर परिषद वर्णन भी जीवाभिगम की तृतीय प्रति पत्ति के अनुसार यहां भी जानना।

चौथा शतक-

उद्देशक 1 से 8तक-

शक्रेन्द्र के समान ईशानेन्द्र के चार लोकपाल है, उसके तीसरे चौथे लोकपाल के क्रम में व्यत्यय है। इन लोकपालों के विमान ईशानावतंसक विमान से असंख्य योजन दूर क्रमशः पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर में है। विमान, राजधानी, अधीनस्थ देव, कार्य क्षेत्र, पुत्रस्थानीय देव आदि वर्णन शक्रेन्द्र के वर्णन के समान है शक्रेन्द्र का वर्णन दक्षिण दिशा की अपेक्षा रखता है ईशानेन्द्र का वर्णन मेरू से उत्तर दिशावर्त्ती सभी विषयों से अपेक्षा रखता है यह विशेषता समझना चाहिये। अर्थात् उत्तर दक्षिण क्षेत्र के भवनपति व्यंतर ज्योतिषी सभी देव बराबर दो भागों में विभाजित है।

यहां चार उद्देशक चार लोकपालों के हैं और चार उद्देशक उनकी राजधानियों के वर्णन के हैं।

नवमां दसवां उद्देशक-

1. प्रज्ञापना पद का सतरहवां लेश्या पद है, उसके तीसरे एवं चौथे उद्देशक का वर्णन यहां जानना चाहिये।

पांचवां शतक

पहला उद्देशक-

1. जम्बूद्वीप में सूर्य ईशान कोण में उदय होकर अग्निकोण में अस्त होता है। 2. अग्निकोण में उदय होकर नैऋत्यकोण में अस्त होता है। 3. नैऋत्यकोण में उदय होकर वायव्यकोण में अस्त होता है। 4. वायव्यकोण में उदय होकर ईशानकोण में अस्त होता है जहां पूर्व (पहले के) क्षेत्र की अपेक्षा अस्त होता है वहीं अगले क्षेत्र की अपेक्षा उदय होता है। चारों कोणों में कुल मिलाकर एक सूर्य पूर्व क्षेत्रों की अपेक्षा चार बार अस्त होता और आगे-आगे के क्षेत्रों की अपेक्षा उन्हीं चारों कोणों में कुल मिलाकर चार बार उदय होता है। यह पूर्व पश्चात् के क्षेत्रों की अपेक्षा अस्त कहा जाता है। किन्तु वास्तव में सूर्य तो सदा एक साथ उदीयमान ही रहता है।

2. जब जम्बद्वीप के पूर्व पश्चिम विभाग में दिन होता है तब उत्तर दक्षिण विभाग में रात्रि होती है। जब उत्तर दक्षिण विभाग में दिन होता है तो पूर्व पश्चिम विभाग में रात्रि होती है। जब एक विभाग में अठारह मुहूर्त का दिन और 12 मुहूर्त की रात्रि होती है तब अन्य विभागों में भी रात्रि दिनमान उतना ही होता है। रात्रि और दिन के परिमाण का योग 30 मुहूर्त होता है ज्यों -ज्यों अठारह मुहूर्त दिन में समय घटता है त्यों-त्यों 12 मुहूर्त रात्रि में बढ़ जाता है अर्थात् 17 मुहूर्त का दिन होता है तो 13 मुहूर्त की रात्रि होगी। 16मुहूर्त का दिन होता है तो 14 मुहूर्त की रात्रि होती है। अंत में 12 मुहूर्त का दिन होता है जब 18मुहूर्त की रात्रि होती है। उत्तर दक्षिण में दिन या रात साथ-साथ में होती है और पूर्व पश्चिम विभाग में दिनरात साथ में होते हैं। दो विभागों में दिन और दो विभागों में रात ऐसे क्रम चलता रहता है।

एक सूर्य के द्वारा एक मंडल में भ्रमण करने में चारों विभाग में एक एक बार सूर्योदय और सूर्यास्त हो जाता है।

3. पूर्व पश्चिम विभाग में जब वर्ष का प्रारम्भ (प्रथम समय) होता है उसके अनंतर समय में उत्तर दक्षिण विभाग में वर्ष का प्रारम्भ (प्रथम समय) होता है। पूर्व पश्चिम में साथ में ही होता है। अर्थात् पूर्व पश्चिम विभाग के अंतिम किनारे में जब वर्ष का प्रारम्भ होता उसके अनन्तर समय में उत्तर दक्षिण विभाग के प्राथमिक किनारे में वर्ष का प्रारम्भ होता है ऐसा समझना चाहिये। वैसे ही प्रथम समय के समान ही आवलिका दिन पक्ष मास ऋतु आदि सागरोपम तक समझना।

4. पूर्व पश्चिम विभाग में उत्सर्पिणी अवसर्पिणी नहीं होती है।

5. जम्बूद्वीप के समान ही लवण समुद्र के चार विभागों का उक्त वर्णन समझ लेना चाहिये। वहां भी पूर्व पश्चिम विभाग में उत्सर्पिणी अवसर्पिणी नहीं होती है। विशेषता यह है कि यहां मेरू पर्वत नहीं कह कर दिशा के विभाग से ही कथन किया जाता है।

6. धातकी खंड द्वीप का कथन जम्बूद्वीप के समान और कालोदधि समुद्र का यह कथन लवणसमुद्र के समान है। घातकी खंड के समान आभ्यंतर पुष्कर द्वीप का कथन है।

दूसरा उद्देशक-

1. पुरोवात = परवायु, स्निग्धता युक्त वायु। पथ्यवायु = वनस्पति आदि के लिए पथ्यकारी वायु। मन्दवायु= धीरे धीरे चलने वाली। महावायु = प्रचण्ड तूफानी हवा ये चारों प्रकार की हवा सभी दिशा विदिशा में द्वीप में समुद्र में चल सकती है। एक साथ एक समय में दो विरोधी दिशाओं में नहीं चलती है।

ये सभी वायुकाय स्वाभाविक भी हो सकती है, वायुकाय के उत्तर वैक्रिय से भी हो सकती है। एवं वायुकुमार आदि देवकृत भी होती है।

लवण समुद्र में चलने वाली वायु ''वैला'' से बाधित हो जाती है, उसके आगे नहीं जाती वहीं रूक जाती है। चाहे मंद हो या प्रचंड।

लवण समुद्र के बीच में जो 16हजार योजन ऊंचा पानी उठा हुआ है उसे ''वैला'' कहा जाता है।

2. कोई भी सचित्त सजीव वस्तु स्वतः अचित्त हो जाय तो वह उस पूर्व काय जीव का शरीर कहा जाता है। अग्नि से परितापित परिणत होकर अचित्त निर्जीव बनने वाले पदार्थ अग्निकाय के त्यक्त शरीर कहे जाते हैं। पूर्व भाव की विवक्षा में मूल मे जीव की काया (योनी) कही जा सकती है। यथा ''पोदीने के हरे पत्ते'' वनस्पतिकाय है वे स्वाभाविक सूख गये या पीस कर चटनी बना दी गई तो वनस्पति काय के त्यक्त शरीर है, किन्तु अग्नि पर उबालकर अचित बनाये गये तो अग्निकाय के त्यक्त शरीर है। पूर्वाभाव की अपेक्षा से वनस्पति शरीर कहे जा सकते हैं। इसी तरह नमक आदि पदार्थ समझ लेना। खान से निकलने वाले पदार्थ लोहा आदि एवं त्रस जीवों के अवयव-हड्डी आदि अग्नि परिणत हो तो अग्नि शरीर कहे जाते हैं। राख कोयले आदि भी इसी तरह समझना।

तीसरा-चौथा उद्देशक-

1. एक जीव के हजारों आयुष्य एक साथ बंधे नहीं होते हैं। परभव का आयु जीव इस भव में बांधता है। उस आयुबंध योग्य आचरण भी इस भव में ही करता है। एक समय में दो आयुष्य नहीं भोगा जाता है।

2. छद्मस्थ मनुष्य सीमा में रहे हुए और स्पृष्ट शब्दों को सुनता अस्पृष्ट शब्दों को नहीं सुनता है। सर्वज्ञानी सर्वदर्शी होने से केवली सीमावर्ती और सीमा बाहर रहे हुए सभी शब्दों को जानते देखते हैं।

3. छद्मस्थ मनुष्य मोह कर्म के उदय से हंसता है, उत्सुक होता है। किन्तु केवली भगवान मोह के नहीं होने से नहीं हंसते हैं।

हंसने वाले सात या आठ कर्मों का बंध करते हैं। बहुवचन की अपेक्षा जीव एवं एकेन्द्रिय में एक भंग होता है शेष में तीन भंग होते हैं।

4. इसी प्रकार छद्मस्थ निद्रा आदि लेता है। केवली दर्शन मोहनीहय कर्म के नहीं होने से नींद नहीं लेते। नींद में भी 7 या 8कर्म का बंध चलता है।

5. शक्रेन्द्र का दूत स्थानीय हरिणगमेषी देव स्त्री की योनि से गर्भ का संहरण कर सकता है। अन्य स्त्री के गर्भ में रख सकता है। निकालने का कार्य योनि मार्ग से ही करता है। फिर भी वह नख या रोमकूपों से भी उस गर्भ को ऐसी कुशलता से बाहर निकाल सकता है जिसमें कि उस गर्भ के जीव को किंचित भी कष्ट वेदन नहीं करना पड़े।

6. अतिमुक्तक कुमार श्रमण ने वर्षा के पानी में पात्री को तिराया था एवं ''मेरी नाव तिरे, मेरी नाव तिरे'' का अनुभव बचपन वृत्ति से किया था। नवदीक्षित की ऐसी परिस्थिति न होवे यह जिम्मेदारी पूर्व दीक्षित एवं स्थविर श्रमणों की होती है। भगवान ने इस घटना पर स्थविर श्रमणों को सूचन किया कि सावधानी पूर्वक, रूचि पूर्वक, कुमार श्रमण को शिक्षित करो,

इसकी सार संभाल ग्लानि रहित भावों से करो, किन्तु हीलना निंदा न करो। यह कुमार श्रमण इसी भव में मोक्षगामी है। विशेष वर्णन के लिये अंतगड सूत्र देखें।

7. एक बार दो देव भगवान की सेवा में आये मन से वंदन नमस्कार किया, मन से ही प्रश्न पूछा, भगवान ने भी मन से उत्तर दिया। देव संतुष्ट हुए। वंदन नमस्कार कर यथा स्थान बैठ कर पर्यूपासना करने लगे।

गौतमा स्वामी को जिज्ञासा हुई कि ये देव किस देव लोक से आये? गौतम स्वामी उठकर भगवान के समीप गये वंदन करके पूछना चाहते थे कि स्वतः ही भगवान ने स्पष्टीकरण कर दिया कि तुम्हें यह जिज्ञासा हुई है। ये देव ही तुम्हारी जिज्ञासा का समाधान कर देंगे। गौतम स्वामी पुनः भगवान को वंदन नमस्कार किया और देवों के निकट जाने के लिये तत्पर हुए। देवों ने अपनी तरफ आते हुए गौतम स्वामी को देखकर स्वयं प्रसन्न वदन गौतम स्वामी के निकट गये वंदन नमस्कार किया और कहा-

''हम आठवें सहस्त्रार देवलोक के देव हैं। हमने मन से वंदन नमस्कार करके प्रश्न पूछा समाधान भी मन से ही पाया और पर्यूपासना कर रहे हैं। हमारा प्रश्न था भगवान के शासन में भगवान के जीवन काल में कितने जीव मोक्ष जायेंगे। उत्तर मिला कि 700 श्रमण इस भव में मोक्ष जायेंगे।

7. सभी देव असंयत ही होते हैं। संयत या संयतासंयत नहीं होती हैं। किन्तु वचन विवेक की दृष्टि से उन्हें व्यक्तिगत असंयत नहीं कह कर ''नो संयत'' कहा जाता है असंयत कहना निष्ठुर वचन है।

8. देवों की भाषा अर्द्धमागधी है इसी भाषा में वे स्वाभाविक रूप से वार्तालाप आदि करते हैं।

9. ''यह जीव चरम शरीरी है इसी भव में मोक्ष जायेगा'' ऐसा केवली ही जान सकते हैं। छद्मस्थ स्वतः नहीं जान सकता। आगम आदि प्रमाणों से या अनंतर परंपर सर्वज्ञों से सुनकर जान सकते हैं।

10. प्रमाण चार हैं- 1. प्रत्यक्ष, 2. अनुमान, 3. उपमा, 4. आगम। इनका विशेष वर्णन अनुयोग द्वार सूत्र में है। जिसके लिये वहां देखें।

11. चरम निर्जरा पुद्गलों को अर्थात् केवली के मुक्त होने के समय के निर्जरित कर्म पुद्गलों को केवली जानते देखते हैं, छद्मस्थ नहीं जानते।

12. केवली के स्पष्ट प्रकट मन वचन प्रयोग होता है। उसे सम्यग्दृष्टि देव उपयोगवंत होने पर जान सकते हैं।

13. अणुत्तर विमान के देव अपने स्थान पर से ही केवली के साथ आलाप संलाप कर सकते हैं। प्रश्न पूछ कर उत्तर प्राप्त कर सकते हैं। उनको मनोद्रव्य वर्गणा लब्धि होती है जिससे वे केवली के द्वारा मन से दिये गये उत्तर को वहां रहे हुए ही जान लेते हैं।

14. अणुत्तर देवों के मोह कर्म बहुत उपशांत होता है अतः ''उपशांत मोहा'' कहे जाते हैं।

15. आयोणेहिं = सीमा से अथवा इन्द्रिय से। केवली का ज्ञान इन्द्रियजन्य भी नहीं होता है एवं सीमित भी नहीं होता है। निरावरण इन्द्रियातीत सीमातीत ज्ञान केवलियों का होता है।

16. केवली के शरीर की प्रवृत्ति स्ववश या स्थिर योग वाली नहीं होती है। अर्थात् जिन आकाश प्रदेशों पर हाथ रखा हुआ है या शरीर से बैठे या खड़े हैं वहां से हटाकर पुनः उन्हीं आकाश प्रदेशों पर हाथ रखना या शरीर से खड़े होना बैठना संभव नहीं होता है।

17. ''उत्करिका भेद लब्धि'' से सम्पन्न 14 पूर्वधारी एक घट से हजार घट बना सकते हैं। वैसे ही एक एक वस्त्र से, चटाई से, रथ से, छत्र से, दण्ड से, हजार-हजार वस्त्र आदि निकाल सकते हैं।

पांचवां उद्देशक-

1. जिन जीवों के जिन कर्मों का स्थितिघात, रसघात आदि हो जाता है वे अनेवंभूत कर्म वेदते हैं और जिन कर्मों का स्थितिघात आदि नहीं होता वे एवंभूत (बांधे जैसे ही) वेदे जाते हैं।

2. कुलकर, तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि का वर्णन समवायांग सूत्र में देखें।

छट्ठा उद्देशक-

1. हिंसा करके, झूठ बोलकर अर्थात् साधुओं के लिये आरंभ समारंभ करके और झूठ कपट करके अकल्पनीय (अप्रासुक-अनेषणीय) आहार पानी देने से अल्प उम्र (छोटी-कच्ची उम्र) प्राप्त होती है।

2. हिंसा किये बिना, झूठ बोले बिना, शुद्ध निर्दोष आहार पानी श्रमण निर्ग्रन्थों को देने से शुभ दीर्घायु की प्राप्ति होती है एवं उनकी वंदना भक्ति पर्यूपासना करने से मनोज्ञ, प्रीतिकारक आहार पानी देने से भी शुभ दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

3. इसके विपरीत हिंसा झूठ का सेवन करके श्रमणों की हीलना निंदा अपमान आदि करे, अमनोज्ञ अप्रीतिकारक आहार पानी देवे तो अशुभ दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

4. खोई हुई वस्तु की खोज करते हुए व्यक्ति (गृहस्थ) को आरंभिकी आदि चार क्रियाएं लगती है। शेष मिथ्यात्व क्रिया विकल्प से लगती है। खोई वस्तु मिल जाने पर सभी क्रियाएं सूक्ष्म रूप से लगती है।

बेची हुई वस्तु विक्रेता के पास ही पड़ी है तो उसे चार क्रियाएं लगती है, मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया विकल्प से होती है। क्रेता को सूक्ष्म रूप से क्रियाएं लगती है।

बेची हुई वस्तु खरीददार ले गया तो उसे चार क्रिया लगती मिथ्यात्व की क्रिया में विकल्प है। बेचने वाले को सूक्ष्म रूप में वे क्रियाएं लगती है। यदि कीमत नहीं दी तो उस धन से क्रेता को चार क्रिया लगती है, मिथ्यात्व की भजना एवं विक्रेता को सूक्ष्म रूप क्रियाएं लगती है।

कीमत मिल जाने पर विक्रेता को उस धन निमित्तक चारों क्रियाएं लगती है। मिथ्यात्व की क्रिया सर्वत्र विकल्प से लगती है। वस्तु से अब उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता है।

5. अग्नि जलती है तब महाक्रिया लगती है एवं जब बुझने लगती है तब अल्प-अल्प क्रिया लगती है। अंत में सर्वथा बुझ जाने पर क्रिया नहीं लगती है।

6. धनुष, बाण, आदि जिन जीवों के शरीर से बने हैं उन्हें भी हिंसक के जितनी पांच क्रिया लगती है। जब बाण अपने भार से स्वयं नीचे गिरता है तब केवल बाण के पूर्व जीवों को पांच क्रिया शेष सभी को एवं हिसंक को भी चार क्रिया लगती है।

7. चार पांच सौ योजन प्रमाण मनुष्य लोक कहीं भी ठसाठस भरा हुआ नहीं है किन्तु एक स्थान पर नरक क्षेत्र 400-500 योजन तक नैरयिकों से ठसाठस भरा है।

8. आधाकर्म आदि दोषों में कोई पाप नहीं है ऐसा सोच कर, खाकर या बोल कर उसकी आलोचना प्रायश्चित नहीं करने पर विराधना होती है। आलोचना प्रायश्चित कर लेने पर आराधना हो सकती है।

9. आचार्य उपाध्याय गण के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पूर्ण यथार्थ पालन करने पर उसी भव में या दूसरे भव में अथवा तीसरे भव में मुक्ति प्राप्त करते हैं।

जो दूसरों पर झूठा आक्षेप देता है वह वैसे ही कर्मों का उपार्जन करता है अर्थात् पुनः उस पर भी झूठा आक्षेप आने की स्थिति बनती है। चाहे आचार्य हो या साधु अथवा श्रावक कोई भी क्यों न हो वैसा ही भोगना पड़ता है।

सातवां उद्देशक-

1. कंपमान अकंपमान पुद्‌गल के 6भंग होते हैं। 1. संपूर्ण कंपमान, 2. संपूर्ण अकंपमान, 3. एक देश कंपमान, एक देश अकंपमान, 4. एक देश कंपमान अनेक देश अंकपमान, 5. अनेक देश कंपमान एक देश अकंपमान, 6. अनेक देश कंपमान अनेक देश अकंपमान।

पहला दूसरा भंग परमाणु आदि सभी में हो सकता है। तीसरा चौथा भंग द्विप्रदेशी स्कंध आदि में हो सकता है। पांचवां भंग तीन प्रदेशी आदि में हो सकता है। छट्ठा भंग चार प्रदेशी आदि में होता है। कम प्रदेशी स्कंधों में पाये जाने वाले भंग ज्यादा प्रदेश वाले स्कंधों में पाये जा सकते हैं। अतः पांच प्रदेशी तक कंपमान सम्बन्धी छहों भंग पाये जाते हैं।

कंपमान का अर्थ है अवगाहित आकाश प्रदेश का परिवर्तित होना। सम्पूर्ण पुद्‌गल स्कंध के भी अवगाहना स्थान परिवर्तित हो सकता है एवं एक देश अवगाहना बदले और एक देश अवगाहना नहीं बदले, ऐसा भी हो सकता है।

अनंत प्रदेशी स्कंध भी केवल एक, दो या तीन-चार आकाश प्रदेश को अवगाहन करके रह सकता है।

2. परमाणु से लेकर असंख्य प्रदेशी का तलवार आदि शस्त्र से भेदन छेदन नहीं हो सकता। अनंत प्रदेशी का हो सकता है। इसी प्रकार अग्नि में जलना, पानी में भीगना आदि असंख्य प्रदेशी का नहीं होता है।

अनंत प्रदेशी स्कंध भी सूक्ष्म एवं बादर दो प्रकार के हैं।सूक्ष्म अनंत प्रदेशी स्कंध का वर्णन असंख्य प्रदेशी के समान है। अतः उपरोक्त अनंत प्रदेशी में बादर स्कंध ही ग्रहीत है।

3. परमाणु, तीन प्रदेशी, पांच प्रदेशी, सात प्रदेशी आदि में आधा विभाग नहीं होता है किन्तु इसमें मध्य होता है। दो प्रदेशी, चार प्रदेशी, छह प्रदेशी आदि के आधा विभाग होता है। किन्तु मध्य नहीं होता है। संख्यात असंख्यात और अनंत प्रदेशी में समध्य और सार्द्ध दोनों तरह के स्कंध होते हैं।

4. पुद्‌गल स्पर्शना- एक परमाणु दूसरे परमाणु को यावत् अनंत प्रदेशी को स्पर्श कर सकता है। इसी प्रकार द्विप्रदेशी आदि भी सभी पुद्‌गलों को स्पर्श कर सकते हैं। देश स्पर्श सर्व-स्पर्श की अपेक्षा 9 भंग होते हैं।

1. देश से देश, 2. देश से अनेक देश, 3. देश से सर्व, 4. अनेक देश से देश, 5. अनेक देश से अनेक देश, 6. अनेक देश से सर्व, 7. सर्व से देश, 8. सर्व से अनेक देश, 9. सर्व से सर्व।

परमाणु में- 7वां, 8वां, 9वां । द्विप्रदेशी में - 7वां, 8वां, 9वां, पहला। तीन प्रदेशी आदि में 9 ही भंग होते हैं। यथा-

परमाणु	-	परमाणु से	-	9 वां भंग से स्पर्श करता है।
परमाणु	-	द्विप्रदेशी से	-	7वां, 8वां, 9वां भंग स्पर्श करता है।
परमाणु	-	तीनप्रदेशी से	-	7वां, 8वां, 9वां भंग स्पर्श करता है।
द्वि प्रदेशी	-	परमाणु से	-	3रा, और 9 वां भंग से स्पर्श करता है।
द्वि प्रदेशी	-	द्वि प्रदेशी से	-	1, 3, 7, 9 वां भंग से स्पर्श करता है।।
द्वि प्रदेशी	-	तीन प्रदेशी से	-	1, 2, 3, 7, 8, 9 वां भंग से स्पर्श करता है।
तीन प्रदेशी	-	परमाणु से	-	3, 6, 9 वां भंग से स्पर्श करता है।
तीन प्रदेशी	-	द्वि प्रदेशी से	-	1, 3, 4, 6, 7, 9 वां भंग स्पर्श करता है।
तीन प्रदेशी	-	तीन प्रदेशी से	-	सभी (9) भंगों द्वारा स्पर्श करता है।

चार प्रदेशी से अनंत प्रदेशी तक का कथन भी तीन प्रदेश के कथन के समान ही है। परमाणु सर्व ही होता है, द्विप्रदेशी देश और सर्व होता है, अनेक देश नहीं होता। तीन प्रदेशी आदि देश, सर्व, और अनेक देश तीनों होते हैं। इसलिये परमाणु में उत्कृष्ट तीन भंग सर्व के होते हैं। द्वि प्रदेशी में उत्कृष्ट छः भंग होते हैं तीन देश के, तीन सर्व के।

5. परमाणु की कायस्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट असंख्यकाल। अंतर- जघन्य एक समय उत्कृष्ट असंख्यकाल।

द्वि प्रदेशी आदि की कायस्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट असंख्यकाल। अंतर-जघन्य एक समय उत्कृष्ट-अनंत काल।

6. एक प्रदेशावगाढ स्वस्थान पर स्थान सकंपमान की कायस्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग। अंकपमान (स्थिर) की कायस्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट असंख्य काल।

एक प्रदेशावगाढ़ के समान ही असंख्य प्रदेशावगाढ तक है।

जो सकंप की काय स्थिति है, वही अकंप का अंतर है और जो अंकप की कायस्थिति है, वहीं सकंप का अंतर है।

7. एक गुण काला यावत् अनंत गुण काला का काय स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट असंख्यकाल। इसी तरह वर्णादि 20 बोल समझना। काय स्थिति के समान ही इनका अंतर है।

8. सूक्ष्म परिणत पुद्गल और बादर परिणत पुद्गल की कायस्थिति एवं अंतर जघन्य एक समय उत्कृष्ट असंख्य काल है।

9. शब्द परिणत पुद्गल की कायस्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग। अशब्द परिणत की जघन्य एक समय उत्कृष्ट असंख्यकाल। एक की कायस्थिति ही दूसरे का अंतर है।

10. सबसे अल्प काय स्थिति क्षेत्र पुद्गल की, उससे अवगाहन प्रदेश संख्या स्थान में स्थित पुद्गल की उत्कृष्ट काय स्थिति असंख्य गुणी, उससे परमाणु आदि द्रव्य रूप में स्थित पुद्गल की उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्य गुणी, उससे एक गुण वर्णादि की उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यगुणी है।

11. चौबीस दडकों का परिग्रह– नारकी का परिग्रह- शरीर, कर्म, एवं सचित्त अचित्त मिश्र द्रव्य। **देवों का परिग्रह-** शरीर, कर्म, भवन, देव, देवी, मनुष्य, मनुष्यणी, तिर्यंच, तिर्यंचणी,, आसन, शयन, भण्डोपकरण एवं अन्य सचित्त अचित्त मिश्र द्रव्य। **एकेन्द्रिय का परिग्रह –** शरीर, कर्म, एवं सचित अचित मिश्र द्रव्य। विकलेन्द्रिय का परिग्रह- शरीर, कर्म, एवं सचित्त अचित्त मिश्र द्रव्य एवं बाह्य भण्डोपकरण, स्थान आदि। **तिर्यंच पंचेन्द्रिय का परिग्रह–** जलीयस्थान, तालाब, नदी आदि। स्थलीयस्थान, ग्रामादि, पर्वत आदि, वन-उपवन आदि, घर मकान दुकान आदि, खड्डे खाई-कोट आदि, तिराहे-चौराहे-आदि, वाहन-वर्तन आदि, देव, देवी, मनुष्य, मनुष्यणी, तिर्यंच, तिर्यंचणी, आसन शयन भंडोपकरण, शरीर, कर्म अचित्त सचित्त मिश्र द्रव्य। तिर्यंच के समान ही **मनुष्यों का परिग्रह** है। किन्तु धन संपत्ति सोना चांदी आदि खाद्य सामग्री व्यापार-कारखाने आदि सभी विशेष एवं स्पष्ट रूप से हैं।

चौबीस ही दंडक के जीव छः काय के आरंभ से युक्त है। कोई अव्रत की अपेक्षा है कोई साक्षात छः काया की हिंसा करने की अपेक्षा आरंभी है।

12. कई (सम्यग् दृष्टि) छद्मस्थ हेतु को एवं हेतु के द्वारा पदार्थों को समझते हैं और कई (मिथ्या दृष्टि) छद्मस्थ हेतु को एवं हेतु के द्वारा पदार्थों को नहीं समझते हैं।

केवली अहेतु रूप केवल ज्ञान को एवं केवल ज्ञान के द्वारा पदार्थों को जानते हैं। अनुमान आदि हेतु की उन्हें आवश्यकता नहीं होती।

आठवां उद्देशक–

1. सप्रदेश अप्रदेश– द्रव्य की अपेक्षा परमाणु अप्रदेश है, शेष सप्रदेश है। क्षेत्र की अपेक्षा एक प्रदेशावगाढ पुद्गल अप्रदेश है। काल की अपेक्ष एक समय की स्थिति के पुद्गल अप्रदेश हैं, शेष सप्रदेश है। भाव की अपेक्षा एक गुण काला यावत् एक गुण रूक्ष अप्रदेश है, शेष सप्रदेश है।

सप्रदेश अप्रदेश से परस्पर नियमा भजना–

वस्तु	सप्रदेशी				अप्रदेशी			
	द्रव्य	क्षेत्र	काल	भाव	द्रव्य	क्षेत्र	काल	भाव
द्रव्य से	सप्रदेशी	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.	अप्रदेशी	अप्रदेशी	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.
क्षेत्र से	सप्रदेशी	सप्रदेशी	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.	अप्रदेशी	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.
काल से	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.	सप्रदेशी	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.	अप्रदेशी	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.
भाव से	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.	सप्रदेशी	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.	सिय स.प्र. सिय अ.प्र.	अप्रदेशी

अल्प बहुत्व- 1. सबसे थोड़ा भाव अप्रदेश, 2. काल अप्रदेश असंख्यगुणा, 3. द्रव्य अप्रदेश असंख्य गुणा, 4. क्षेत्र अप्रदेश असंख्यगुणा, 5. क्षेत्र सप्रदेश असंख्यगुणा, 6. द्रव्य सप्रदेश विशेषाधिक, 7. काल स्वप्रदेश विशेषाधिक, 8. भाव सप्रदेश विशेषाधिक

यह निर्ग्रन्थी पुत्र अणगार ने नारदपुत्र अणगार को प्रश्न पूछ कर फिर समझाया था।

2. वर्द्धमान-हायमान- चौबीस दंडक के जीव घटते हैं, बढ़ते भी हैं, और अवस्थित भी रहते हैं। सिद्ध बढ़ते हैं और अवस्थित रहते हैं। समुच्चय जीव अवस्थित ही रहते हैं।

चौबीस दंडक में वर्द्धमान एवं हायमान की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट अवलिका के असंख्यातवें भाग। सिद्धों में जघन्य एक समय उत्कृष्ट आठ समय।

अवस्थान काल समुच्चय जीव में सर्वद्धा (सर्वकाल)। सिद्धों में जघन्य एक समय उत्कृष्ट 6महीना शेष सभी में अपने विरह काल से दुगुना है। विरह काल प्रज्ञापना सूत्र के छठे पद में बताया है देखें सारांश।

एकेन्द्रिय में वर्धमान हायमान और अवस्थित तीनों काल उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग है।

3. सोवचय सावचय- इसके चार विकल्प है- 1. सोवचय, 2. सावचय, 3.सोवचय, सावचय, 4. निरुवचय निरवचय।

1. सोवचय = केवल आवे, जन्में ।
2. सावचय = केवल जावे, मरे।
3. सोवचय सावचय = आवे भी, जावे भी, जन्में भी, मरे भी ।
4. निरुवचय निरवचय = न आवे, न जावे, = न जन्में, न मरे।

समुच्चय जीव में चौथा भंग है सिद्धों में पहला और चौथा दो भंग है। एकेन्द्रि में तीसरा भंग। शेष सभी में चारों भंग होते हैं।

समुच्चय जीव में चौथा भंग की स्थिति सर्वद्ध (सर्वकाल) है। एकेन्द्रिय में तीसरा भंग स्थिति सर्वकाल है। सिद्धों में पहले भंग की उत्कृष्ट स्थिति आठ समय है चौथे भंग की 6महिना है। शेष सभी दंडकों में पहले दूसरे तीसरे भंग की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग। चौथे भंग की उत्कृष्ट स्थिति विरह काल के समान है। अथवा उपरोक्त अवस्था काल से आधी है। जघन्य स्थिति सर्वत्र एक समय की है।

नवमा उद्देशक-

1. राजगृह नामक नगर में रहे हुए सभी जीव अजीव सभी सचित्त अचित्त मिश्र द्रव्य मिलकर राजगृह नगर कहलाते हैं।

2. शुभ पुद्‌गलों से एवं शुभ पुद्‌गलों के परिणमन से दिन में प्रकाश होता है एवं अशुभ पुद्‌गलों के परिणमन से रात्रि में अंधकार होता है।

3. नारकी एकेन्द्रिय बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय के अशुभ पुद्‌गल परिणमन होने से अंधकार होता है। चौरेन्द्रिय पंचेन्द्रिय मनुष्य के दोनों प्रकार के पुद्‌गल परिणमन होने से अंधकार प्रकाश दोनों होते हैं। देवों के शुभ पुद्‌गल परिणमन होने से केवल प्रकाश ही होता है।

4. समय आवलिका मुहूर्त्त आदि का ज्ञान मनुष्य को ही होता है। मनुष्य क्षेत्र में ही काल ज्ञान है। शेष सभी दंडकों में काल वर्त्तन है किन्तु ज्ञान नहीं है। देवों को भी मुहूर्त्त दिन महिना वर्ष आदि बीतने का ज्ञान नहीं है। काल व्यतीत अवश्य होता है। तिर्यंचों को रात-दिन की जानकारी तो होती है किन्तु मुहूर्त्त टाइम महिने वर्ष उत्सर्पिणी अवसर्पिणी आदि के हिसाब का ज्ञान उन्हें भी नहीं होता है।

5. तीर्थंकर परीक्षा- एक बार पार्श्वनाथ भगवान के शासन के स्थविर श्रमण, भगवान महावीर स्वामी के पास आये और यथायोग्य स्थान पर खड़े होकर भगवान से पूछने लगे कि भंते ! इस असंख्य लोक में अनंत रात दिन बीते और बीतेंगे?

भगवान ने कहा हे आर्यों ! सम्बोधन पूर्वक पार्श्वनाथ भगवान का निर्देश करते हुए लोक संस्थान का वर्णन किया। उसमें अनंत जीव और अजीव रहे हुए हैं। असंख्य प्रदेशात्मक लोक होने की अपेक्षा लोक का असंख्य विशेषण है। अनंत जीव अजीव द्रव्यों पर काल से वर्त्तता है अतः तीनों काल में अनंत रात दिन बीतना कहा जाता है। इस कारण असंख्य लोक में अनंत रात्रियां बीतना कहा गया है। जीवों एवं अजीवों से यह लोक पहिचाना जाता है इसलिये लोक यह नाम है। अलोक में जीव अजीव नहीं होते हैं इसलिये यह अलोक कहा जाता है। घुमाकर पूछे गये प्रश्न का सीधा व सरल उत्तर पाकर स्थविरों ने भगवान को सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर रूप में पहिचाना एवं स्वीकार किया। वंदन नमस्कार कर क्षमा मांगी एवं शिष्यत्व स्वीकार किया। चतुर्याम धर्म से पंच महाव्रत धर्म अंगीकार किया एवं चौबीसवें भगवान के शासन में विचरने लगे। उनमें से कई स्थविर श्रमण उसी भव में मोक्षगामी हुए और कई देवलोक में गये।

6. लोक नीचे विस्तृत, बीच में संक्षिप्त, ऊपर विशाल है। नीचे पल्यंक संस्थान, बीच में उत्तम व्रजाकार और ऊपर मृदंग के आकार है।

7. देवलोक चार प्रकार के है। और उनके 25 भेद हैं- 1. भवनपति,- दस, 2. व्यंतर-आठ, 3. ज्योतिषी-पांच, 4. वैमानिक- दो भेद हैं। (कल्पोपपन्न, कल्पातीत)

दसवां उद्देशक- प्रथम उद्देशक के सूर्य सम्बन्धी वर्णन के समान यहां चन्द्र सम्बन्धी वर्णन है जो यथा योग्य समझ लेना चाहिये।

छट्ठा शतक

पहला दूसरा उद्देशक-

1. जब कष्ट उपसर्ग आदि जन्य महावेदना होती है, तो निर्जरा भी महान् होती है। महावेदना या अल्प वेदना में श्रेष्ठ वही है, जहां प्रशस्त निर्जरा होती है।

नारकी में महान वेदना के अनुसार निर्जरा होती है, किन्तु वह श्रमण निर्ग्रन्थ की निर्जरा से अल्प ही होती है। क्योंकि नारकी के कर्म गाढ एवं चिकने होते हैं। जबकि श्रमण निर्ग्रन्थ के कर्म शिथिल होते हैं।

एरण पर जोर से चोट करने पर भी उसमें से पुद्गल कम ही निकल पाते हैं वैसे ही नारकी की कर्म निर्जरा है।

अग्नि में घास, तप्त तवे पर जल बिन्दु शीघ्र नष्ट हो जाती है उसी प्रकार श्रमण निर्ग्रन्थ के कर्म तप-उपसर्ग आदि से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

2. मन, वचन, काया और कर्म ये चार कारण है। इन चारों अशुभ कारणों से नारकी जीव अशाता वेदना वेदते हैं। देव शुभ करणों से शाता वेदना वेदते और तिर्यंच मनुष्य शुभ अशुभ कारणों से दोनों वेदना वेदते हैं।

3. वेदना निर्जरा से चार भंग जीवों में होते हैं- 1. कई जीव महावेदना महानिर्जरा वाले होते हैं यथा- पडिमाधारी अणगार। 2. कई जीव महावेदना अल्प निर्जरा वाले होते हैं यथा- नैरयिक। 3. कई जीव अल्प वेदना महानिर्जरा वाले होते हैं यथा- शैलेशी प्रतिपन्न (14 वें गुणस्स्थान वाला) अणगार। 4. कई जीव अल्प वेदना अल्प निर्जरा वाले होते हैं यथा- अणुत्तर देव।

तीसरा उद्देशक- प्रज्ञापना सूत्र के 28वें पदके प्रथम उद्देशक के समान यहाँ आहार संबंधी वर्णन जानना, देखें सारांश।

1. महान क्रिया, महान आश्रय, वालों के कर्मों का संग्रह निरंतर होता रहता है। अल्पक्रिया अल्प आश्रव वालों के कर्म निरंतर क्षीण होते रहते हैं। यथा- नया वस्त्र काम में लेने पर धीरे-धीरे मसौते के रूप में हो जाता है एवं मेला, वस्त्र क्षार आदि में भिगो देने से एवं जल में धोने से धीरे-धीरे मैल निकलता जाता है। वैसे ही कर्मों का संग्रह एवं क्षय हो जाता है।

वस्त्र आदि पदार्थों का पुद्गलोपचय और अपचय प्रयोगसा (प्रयत्न से) एवं विश्रसा (स्वाभाविक) दोनों प्रकार का होता है। जीव के कर्मों का उपचय अपचय एक प्रयोगसा ही होता है। विश्रसा नहीं होता है।

वस्त्र का पुद्गलोपचय सादि सांत होता है। जीव का कर्म बंध तीन प्रकार का है-

1. अनादि अनंत- अभवी का परंपरा से, 2. अनादि सांत- भवी का परंपरा से, 3. सादि सांत इरियावहि बंध। अथवा प्रत्येक कर्म की अपेक्षा सादि सांत बंध होता है। परंपरा की अपेक्षा दो भंग होते हैं। सादि अनंत का भंग कर्म बंध में नहीं होता है।

वस्त्र सादि सांत होता है। जीव भी गति, दंडक आदि की अपेक्षा सादि सांत है। सिद्ध सादि अनंत है। भवसिद्धिक लब्धि की अपेक्षा अनादि सांत है और अभवसिद्धिक संसारी की अपेक्षा अनादि अनंत है।

2. आठों कर्मों की बंध स्थिति अबाधा काल प्रज्ञापना पद 23 में कहा गया है। देखे सारांश।

3. अबाधा काल के समय तक कर्मों की निषेक रचना भी नहीं होती है अर्थात् वहां प्रदेश बंध भी नहीं होता है। स्थिति बंध मात्र ही होता है।

50 बोल में कर्म बंध की भजना नियमा-

ये 15 द्वारों के 50 बोलों पर 8कर्म बंध की नियमा भजना अबंध कहा गया है। 24 दंडक में 50 में से जितने जितने बोल हों उनमें नियम भजना उपरोक्त प्रकार से समझ लेना।

पहली नारकी में = 34 शेष 6 नरक में = 33 भवनपति, व्यंतर में = 35 ज्योतिषी और दो देवलोक में = 34 तीसरे देवलोक से ग्रैवेयक तक = 33 अणुत्तर देवों में = 25 पांच स्थावर में = 23 असन्नी मनुष्य में = 22 बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय में = 27 चौरेन्द्रिय असन्नि तिर्यंच पंचेन्द्रिय में = 28सन्नी तिर्यंच में = 36सन्नी मनुष्य में = 43 जीवों में = 50 सिद्ध में = 16

इन पन्द्रह द्वारों का अल्पबहुत्व प्रज्ञापना सूत्र पद 3 के अनुसार जानना। देखें सारांश।

50 बोल में कर्म बंध की भजना नियमा-

क्र.सं.	50 बोल	भजना	नियमा	अबंध
1-3.	तीन भेद	आयुष	7 कर्म	-
4.	अवेदी	7 कर्म	-	आयुष
5.	संयत	8 कर्म	-	-
6-7.	असंयत, संयतासंयत	आयुष्य	7 कर्म	-
8.	नो संयत	-	-	8 कर्म
9.	सम्यग्दृष्टि	8 कर्म	-	-
10.	मिथ्यादृष्टि	आयुष्य	7 कर्म	-
11.	मिश्रदृष्टि	-	7 कर्म	आयुष्य
12.	संज्ञी	7 कर्म	वेदनीय	-
13.	असंज्ञी	आयुष्य	7 कर्म	-
14.	नो संज्ञी, नो असंज्ञी	वेदनीय	-	7 कर्म
15.	भवी	8 कर्म	-	-
16.	अभवी	आयुष्य	7 कर्म	-
17.	नो भवी, नो अभवी	-	-	8 कर्म
18-20.	तीन दर्शन	7 कर्म	वेदनीय	-
21.	केवल दर्शन	वेदनीय	-	7 कर्म
22.	पर्याप्त	8 कर्म	-	-
23.	अपर्याप्त	आयुष्य	7 कर्म	-
24.	नो पर्याप्त, नो अपर्याप्त	-	-	8 कर्म
25.	भाषक	7 कर्म	वेदनीय	-
26.	अभाषक	8 कर्म	-	-
27.	परित्त	8 कर्म	-	-
28.	अपरित्त	आयुष्य	7 कर्म	-
29.	नो परित्त, नो अपरित्त	-	-	8 कर्म
30-33.	चार ज्ञान	7 कर्म	वेदनीय	-
34.	केवल ज्ञान	वेदनीय	-	7 कर्म
35-37.	तीन अज्ञान	आयुष्य	7 कर्म	-
38-40.	तीन योग	7 कर्म	वेदनीय	-
41.	अयोगी	-	-	8 कर्म
42-43.	उपयोग दोनों	8 कर्म	-	-
44.	आहारक	7 कर्म	वेदनीय	-
45.	अनाहारक	7 कर्म	-	आयुष्य
46.	सूक्ष्म	आयुष्य	7 कर्म	-
47.	बादर	8 कर्म	-	-
48.	नो सूक्ष्म	-	-	8 कर्म
49-50.	चरम अचरम	8 कर्म	-	-

चौथा उद्देशक-

1. कालादेश से सप्रदेशी अप्रदेशी-

24 दंडकों में प्रथम वर्त्ती जीव काल की अपेक्षा अप्रदेशी कहे जाते हैं। शेष सभी समयवर्त्ती सप्रदेशी होते हैं। दंडक में भी जिस बोल का प्रथम समय हो तो वह अप्रदेशी है।

एक वचन में सभी दंडक में सभी बोल सप्रदेशी अप्रदेशी दोनों मे से एक होते हैं अर्थात् कोई सप्रदेशी और कोई अप्रदेशी होता है। बहुवचन में एकेन्द्रिय में अभंग होता है शेष दंडक में तीन भंग और अशाश्वत बोल में 6भंग होते हैं।

बहुवचन की अपेक्षा सप्रदेशी कालादेश के भंग-

क्र.सं.	बोल	देडक	भंग
1.	समुच्चय	जीव	सप्रदेशी नियमा
	समुच्चय	19 दंडक सिद्ध	3 भंग
	समुच्चय	एकेन्द्रिय (पांच दंडक में)	1 भंग
2.	आहारक	19 देडक	3 भंग
	आहारक	जीव एकेन्द्रिय	1 भंग
3.	अनाहारक	19 देडक	6 भंग
	अनाहारक	जीव एकेन्द्रिय	1 भंग
	अनाहारक	सिद्ध	3 भंग
4-5.	भवी-अभवी	प्रथम बोल के समान	
6.	नो भवी०	जीव, सिद्ध	3 भंग
7.	सन्नी	जीव-16 दंडक	3 भंग
8.	असन्नी	जीव एकेन्द्रिय	1 भंग
	असन्नी	नारकी देवता मनुष्य	6 भंग
	असन्नी	शेष तिर्यंञ्च	3 भंग
9.	नो असन्नी०	जीव सिद्ध	3 भंग
10.	सलेशी	प्रथम बोल के सम्मान	
11-13.	कृष्णादि 3 लेश्या	जीव एकेन्द्रिय	1 भंग
	कृष्णादि 3 लेश्या	17 दंडक	3 भंग
14.	तेजो लेश्या	पृथ्वी, पानी, वनस्पति	6 भंग
	तेजो लेश्या	शेष में	3 भंग
15-16.	पद्म शुक्ल लेश्या	जीव, 3 दंडक	3 भंग

क्र.सं.	बोल	देडक	भंग
17.	अलेशी ०	जीव, सिद्ध	3 भंग
	अलेशी	मनुष्य	6 भंग
18.	सम्यग्दृष्टि	विकेलेन्द्रिय	6 भंग
	सम्यग्दृष्टि	शेष सभी में	3 भंग
19.	मिथ्यादृष्टि	जीव, एकेन्द्रिय	1 भंग
	मिथ्यादृष्टि	19 दंडक	3 भंग
20.	मिश्रदृष्टि	जीव, 2 दंडक	6 भंग
21.	संयत	जीव, मनुष्य	3 भंग
22.	असंयत	जीव, एकेन्द्रिय	1 भंग
	असंयत	19 दंडक	3 भंग
23.	संयतासंयत	जीव, 2 दंडक	3 भंग
24.	नो संयत ०	जीव सिद्ध	3 भंग
25.	सकषायी	एकेन्द्रिय	1 भंग
	सकषायी	जीव, 19 दंडक	3 भंग
26.	क्रोधी	जीव, एकेन्द्रिय	1 भंग
	क्रोधी	देव में	6 भंग
	क्रोधी	शेष में	3 भंग
27-28.	मान माया	जीव, एकेन्द्रिय	1 भंग
	मान माया	देव, नरक	6 भंग
	मान माया	शेष में	3 भंग
29.	लोभ	जीव, एकेन्द्रिय	1 भंग
	लोभ	नरक में	6 भंग
	लोभ	शेष में	3 भंग
30.	अकषायी	जीव, मनुष्य, सिद्ध	3 भंग
31-33.	सज्ञानी, दो ज्ञान	विकलेन्द्रिय	6 भंग
	सज्ञानी, दो ज्ञान	शेष में	3 भंग
34-36.	शेष तीन ज्ञान	सभी में	3 भंग
37-39.	अज्ञानी, दो अज्ञान	एकेन्द्रिय	1 भंग
	अज्ञानी, दो ज्ञान	शेष में	3 भंग
40.	विभंग ज्ञान	सभी में	3 भंग
41.	सयोगी	प्रथम बोल के समान	

क्र.सं.	बोल	देडक	भंग
42.	काय योग	एकेन्द्रिय	1 भंग
	काय योग	शेष में	3 भंग
43-44.	मन, वचन, योग	सभी	3 भंग
45.	अयोगी	जीव, सिद्ध	3 भंग
	अयोगी	मनुष्य में	6 भंग
46-47.	दोनों उपयोग	जीव एकेन्द्रिय	1 भंग
	दोनों उपयोग	19 दंडक सिद्ध	3 भंग
48.	सवेदक	सकषायी के समान है	
49.	नपुसंक वेद	एकेन्द्रिय	1 भंग
	नपुसंक वेद	शेष में	3 भंग
50-51.	स्त्री-पुरुष वेद	सभी	3 भंग
52.	अवेदक	जीव, मनुष्य, सिद्ध	3 भंग
53.	सशरीरी	प्रथम बोल के समान	
54-55.	दो शरीर	जीव एकेन्द्रिय	1 भंग
	दो शरीर	शेष में	3 भंग
56.	आहारक	जीव मनुष्य	6 भंग
57-58.	तेजस कार्मण	प्रथम बोल के समान	
59.	अशरीर	जीव सिद्ध	3 भंग
60-63.	4 पर्याप्ति	जीव एकेन्द्रिय	1 भंग
	4 पर्याप्ति	शेष में	3 भंग
64.	भाषा मन प्राप्ति	जीव 16 दंडक	3 भंग
65.	आहार अपर्याप्ति	अणाहारक के समान	
66-68.	तीन अपर्याप्ति	जीव, एकेन्द्रिय	1 भंग
	तीन अपर्याप्ति	नरक देव मनुष्य	6 भंग
	तीन अपर्याप्ति	शेष में	3 भंग
69.	भाषा मन अपर्याप्ति	नरक देव मनुष्य	6 भंग
	भाषा मन अपर्याप्ति	शेष में तीन	3 भंग

नोट– जिस बोल में जितने दंडक होवे उतने ही समझना।

(एक भंग) अभंग = सप्रदेशी बहुत, अप्रदेशी भी बहुत।

तीन भंग = 1. सभी सप्रदेशी 2. सप्रदेशी अनेक अप्रदेशी एक 3. सप्रदेशी अनेक अप्रदेशी अनेक

छः भंग = 1. सभी सप्रदेशी , 2. सभी अप्रदेशी , 3. सप्रदेशी एक अप्रदेशी एक, 4. सप्रदेशी एक अप्रदेशी अनेक, 5. सप्रदेशी अनेक अप्रदेशी एक, 6. सप्रदेशी अनेक अप्रदेशी अनेक।

जो बोल स्वयं अशाश्वत हो तो 6भंग होते हैं। जिस बोल में सप्रदेशी शाश्वत हो एवं अप्रदेशी अशाश्वत होते हो तो 3 भंग होते हैं। जिस बोल में दोनों शाश्वत हो तो अभंग (एक भंग) होता है।

2. सभी पंचेन्द्रिय प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान को जान सकते हैं। तिर्यंच पंचेन्द्रिय प्रत्याख्याना प्रत्याख्यानी = देश प्रत्याख्यानी हो सकता है। मनुष्य देश प्रत्याख्यानी और सर्व प्रत्याख्यानी दोनों ही हो सकता है। 24 ही दंडक में अप्रत्याख्यानी होते हैं।

23 दंडक अप्रत्याख्यान निवर्तित आयुष्य वाले हैं। वैमानिक देव प्रत्याख्यान आदि तीनों से निष्पादित आयुष्य वाले होते हैं।

(1)	जीव-	24 दंडक, समुच्चय जीव, सिद्ध	26
(2)	आहारक-	आहारक, अनाहारक	2
(3)	भवी-	भवी, अभवी, नोभवी नो अभवी	3
(4)	सन्नी-	सन्नी, असन्नी, नोसन्नी नोअसन्नी	3
(5)	लेश्या-	छलेश्या, अलेशी, सलेशी	8
(6)	दृष्टि-	सम, मिथ्या, मिश्र	3
(7)	संयत-	संयत, असंयत, संयता संयत, नोसंयत नोअसंयत	4
(8)	कषाय-	चार कषाय, सकषायी, अकषायी	6
(9)	ज्ञान-	5 ज्ञान, 3 ज्ञान, सज्ञानी, अज्ञानी	10
(10)	योग-	3 योग, सयोगी, अयोगी	5
(11)	उपयोग-	साकारोपयोग, अनाकारोपयोग	2
(12)	वेद-	3 वेद, सवेदी, अवेदी	5
(13)	शरीर-	5 शरीर, अशरीरी, सशरीरी	7
(14)	पर्याप्ति-	6 अपर्याप्ति, 6 पर्याप्ति	12
		14 द्वारों पर कुल बोल	96

पांचवां उद्देशक-

तमस्काय-

असंख्यातवां अरुणोदय समुद्र है उसमें आभ्यंतर वेदिका से 42000 योजन समुद्र में जाने पर वहां लवण शिखा के समान एक सम भित्ति रूप तमस्काय उठी हुई जो संख्याता योजन की जोड़ी है। अरूणोदक समुद्र चूड़ी आकार है अतः यह तमस्काय भी वलयाकार में उठी हुई है। 1721 योजन सीधी ऊंची गई है। उसके बाद तिरछी विस्तृत होती हुई ऊंची गई है। पांचवें देव लोक के तीसरे रिष्ट प्रस्तट (प्रतर) तक गई है। यह सम्पूर्ण तमस्काय उलटे रखे मिट्टी के घड़े के सदृश है। इसे ही कुकुड पंजर आकार कहा गया है।

पानी के अनेक परिणाम होते हैं- धूंअर, ओस, बादल, लवणशिखा आदि। वैसे ही यह तमस्काय भी पानी का एक विशेष परिणाम है जो लवण शिखा के समान शाश्वत स्थाई रहने वाली है लवणशिखा का तो 16000 योजन के बाद अंत है किन्तु तमस्काय का पांचवें देवलोक में अंत हैं।

1721 योजन तक संख्यात योजन जाडी है आगे असंख्य योजन की जाड़ाई में है। इसमें अंधकार धूंअर से भी अत्यंत प्रगाढ होता है अर्थात् यह सघन अंधकार का समूह रूप है। अतः इसका नाम भी जल की प्रमुखता से न होकर अंधकार की प्रमुखता से ''तमस्काय'' कहा गया है। जिस तरह लवणशिखा लवण समुद्र का ही विभाग है उसी तरह यह तमस्काय भी अरूणोदय समुद्र का विभाग रूप ही है।

अरुणवर समुद्र से उछलता तमस्काय

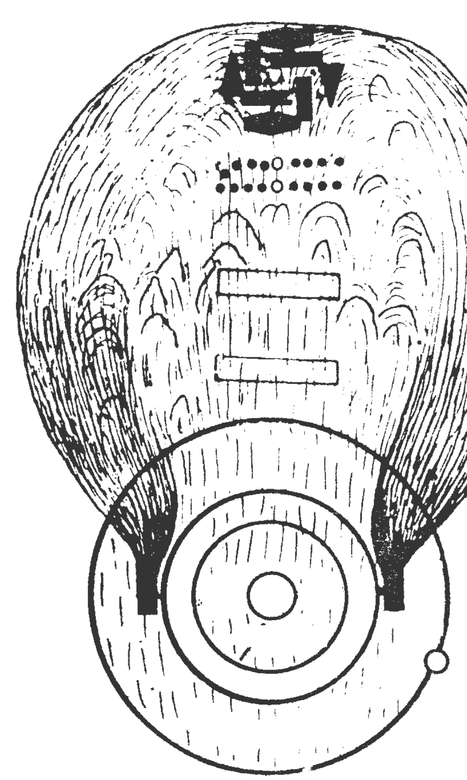

तमस्काय में से होकर देवों को मार्ग पार करने के लिये जाना आना आवश्यक हो जाता है जब इसे पार करते हैं। वे देव भी इसमें से भयभीत संभ्रात होकर शीघ्र निकलते हैं। कोई देव इसमें बादल गर्जन बिजली वर्षा भी कर सकते हैं। इसमें ज्योतिषी देव नहीं होते किनारे पर हो सकते हैं। उनकी कुछ प्रभा इसमें जा सकती है। किन्तु वह निष्प्रभ हो जाती है। इसमें बादर पृथ्वीकाय एवं अग्निकाय नहीं होती है। अतः देवकृत विद्युत अचित्त होती है। अप्काय वायुकाय वनस्पतिकाय एवं त्रसकाय के जीव इसमें हो सकते हैं।

संसार के सभी जीव तमस्काय में उत्पन्न हो चुके हैं। तमस्काय के गुण निष्पन्न 13 नाम है-

1. तम, 2. तमस्काय, 3. अंधकार, 4. महा अंधकार, 5. लोक अंधकार, 6. लोक तमिश्र, 7. देव अंधकार, 8. देव तमिश्र, 9. देव अरण्य, 10. देव व्यूह, 11. देव परिघ, 12. देव प्रतिक्षोभ, 13. अरूणोदक समुद्र।

कृष्ण राजी–

पांचवें देवलोक के रिष्ट नामक प्रस्तर में आठ कृष्ण राजियां हैं। वे ठोस पृथ्वी शिलामय है। चारों दिशाओं में चार कृष्ण राजियें है। फिर उन चारों के बाहर चारों दिशाओं में घिरी हुई चार कृष्ण राजियें और है। अर्थात् एक-एक दिशा में दो-दो एक के बाद एक हैं। भीतरी चारों समचतुष्कोण आयत है। बाहर की दो उत्तर दक्षिण में त्रिकोण है और पूर्व पश्चिम मे षटकोण है।

ये आठों कृष्ण राजियां संख्याता योजन की चौड़ी और असंख्य योजन की लम्बी '' रेखा'' जैसी आकार वाली है। एक दिशा की आभ्यंतर कृष्ण राजी, आगे के दिशा की बाह्य कृष्ण राजी को स्पर्श करती है, अर्थात दक्षिण की अभ्यांतर कृष्ण राजी की बाह्य को, पश्चिम की आभ्यंतर- उत्तर की बाह्य को, उत्तर की आभ्यंतर- पूर्व की बाह्य को और पूर्व की आभ्यंतर- दक्षिण की बाह्य कृष्ण राजी को स्पर्श करते हुए है।

इन आठों के घेरे से बीच का क्षेत्र इन कृष्ण राजियों का गिना जाता है उस बीच के क्षेत्र की अपेक्षा देवों का बादल गर्जन

आठ कृष्ण राजियां

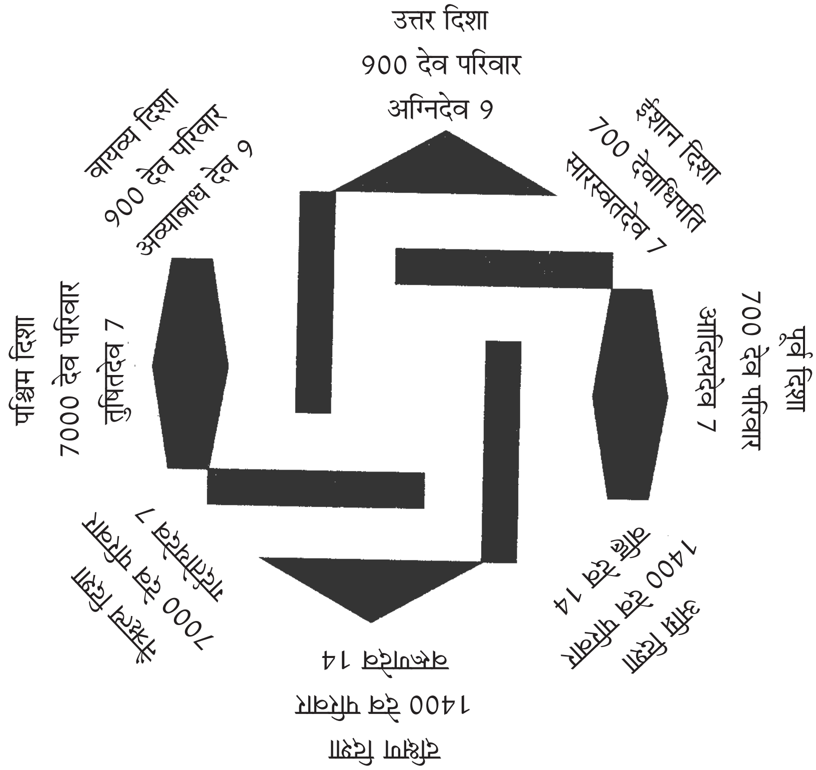

बिजली आदि करना कहा गया है।

ये कृष्ण राजियां भी पृथ्वीकाय के काले पुद्गल मय है। अतः आठों घोर काले वर्ण की है। इनके बीच का क्षेत्र भी कृष्ण आभा वाला डरावना होता है। इसमें भी सभी जीव उत्पन्न हो चुके हैं। सूक्ष्म पांच स्थावरपने एवं बादर पृथ्वीपने उत्पन्न हुए हैं। आठों के बीच के मैंदान रूप क्षेत्र की अपेक्षा वायुपने भी उत्पन्न हुए हैं।

लोकांतिक– आठ कृष्ण राजियों के किनारे लम्बाई के बीच में आठ लोकांतिक देवों के विमान है। आठों के घेरे के बीच जो मैदान है उसके बीचों बीच में भी एक विमान है। यों कुल 9 लोकांतिक देवों के विमान है। **यथा–** 1. अर्ची, 2. अर्चीमाली, 3. वैरोचन, 4. प्रभंकर, 5. चन्द्राभ, 6. सूर्याभ, 7. शुक्राभ, 8. सुप्रतिष्टाभ, 9. रिष्टाभ।

पहला विमान ईशान कोण में दूसरा पूर्व में यों क्रमशः आठ दिशाओं में आठ विमान है। इनमें क्रमशः आठ लोकांतिक देव है- 1. ईशान कोण वाले अर्चि विमान में, 1. सारस्वत फिर क्रमशः 2. आदित्य, 3.वह्नि, 4. वरूण, 5. गर्दतोदय, 6. तुषित, 7. अव्याबाध, 8. मरुत (आग्नेय) बीच में नौंवे विमान में रिष्ट देव हैं।

पहले दूसरे लोकांतिक के सात मुख्य देव 700 परिवार के देव हैं। तीसरे चौथे लोकांतिक के 14 मुख्य देव 14 हजार परिवार के देव हैं। पांचवें छट्ठे के सात मुख्य देव 7000 परिवार के देव हैं। सातवें आठवें नौवें लोकांतिक के 9 मुख्य देव 900 परिवार के देव है।

	दिशा	विमान	लोकान्तिक देव	परिवार	कृष्णराजि के पास
1	ईशानकोण	अर्चि	सारस्वत	7 देव 700 देवों का परिवार	8 और 1 के स्पर्श का खुणा
2	पूर्व	अर्चिमाली	आदित्य	7 देव 700 देवों का परिवार	2 का मध्य
3	अग्निकोण	वैरोचन	वन्हि	14 देव स्वामी 14000 देव परिवार	2 और 3 के स्पर्श खुणा
4	दक्षिण	प्रभंकर	वरूण	14 देव स्वामी 14000 देव परिवार	4 का मध्य
5	नैऋत्यकोण	चंद्राभ	गर्दतोय	7 देव स्वामी 7000 देव परिवार	4 और 5 के स्पर्श का खुणा
6	पश्चिम	सूर्याभ	तुषित	7 देव स्वामी 7000 देव परिवार	6 का मध्य
7	वायव्यकोण	शुक्राभ	अव्याबाध	9 देव स्वामी 900 देव परिवार	6 और 7 के स्पर्श का खुणा
8	उत्तर	सुप्रतिष्टाभ	मरूत (आग्नेय)	9 देव स्वामी 900 देव परिवार	8 का मध्य
9	बीच में	रिष्टाभ	रिष्ट	9 देव स्वामी 900 देव परिवार	बीच मैदान में

लोकांतिक विमान वायु प्रतिष्ठित है अर्थात् वायु के आधार पर रहे हैं। लोकांतिक देवों की उम्र आठ सागरोपम की कही गई है। इन विमानों से लोकांत असंख्य योजन दूर है।

छट्ठा उद्देशक- 1. चौबीस दंडक में कई जीव मृत्यु समय में मारणांतिक समुद्घात करते हें, कई समुद्घात नहीं करते है। समुद्घात करने वाले दूसरी बार उस स्थान में पहुंच कर फिर आहारादि करते हैं। समुद्घात नहीं करने वाले पहली बार में उस स्थान पर पहुंच कर आहारादि करते हैं।

पांच स्थावर छहों दिशाओं में उत्कृष्ट लोकांत तक जाते हैं। जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग तक जाते हैं।

''एक प्रदेशी श्रेणी छोड़कर'' लोकांत वर्त्ती एक प्रदेश छोड़कर लोकांत तक समझना। अथवा एक सीधी पंक्ति से जाते हैं बीच में आत्म प्रदेशों की चौड़ाई में घट वध नहीं होती है अर्थात एक सरीखी चौड़ाई की श्रेणी से छहों दिशाओं में लोंकात तक एकेन्द्रिय जीव जाते हैं।

सातवां उद्देशक-

1. शाली, गेहूं, जौ, जवार आदि धान्य किसी स्थान में बर्तन में सुरक्षित बंद करके रखा हुआ है, उसकी उम्र जघन्य अंतर्मुहूर्त की होती है उत्कृष्ट तीन वर्ष की होती है उसके बाद उन धान्य की सचित्त योनि नष्ट हो जाती है वे सभी अचित्त हो जाते हैं।

चना, मसूर, तिल, मूंग, उडद, कुलत्थ आदि की पांच वर्ष की उत्कृष्ट उम्र होती है। अलसी, कुसंब, सण, सरसों, मूलग आदि बीजों की उत्कृष्ट उम्र सात वर्ष की होती है।

2. स्वस्थ व्यक्ति के 3773 श्वासोश्वास का एक मुहूर्त होता है। संख्याता आवलिका का एक श्वासोश्वास होता है। शेष संख्याता काल की गणना और संख्याता असंख्याता काल की उपमा गणना अनुयोग द्वार सूत्र के समान समझना। देखें सारांश पुष्प 23। संख्याता की गणना शीर्ष प्रहेलिका तक है जिसमें 194 अंक की संख्या होती है। यथा- 7582632530730 10241157973569975696406218966848080183296 ये 54 अंक हैं इन पर 140 बिंदियें हैं।

दस क्रोड़ा क्रोड़ा पल्योपम का एक सागरोपम होता है। 10 क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम का एक उत्सर्पिणी और एक अवसर्पिणी काल होता है। दोनों मिलकर 20 क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम का एक काल-चक्र होता है। 6आरों का विस्तृत वर्णन जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र सारांश में देखें।

आठवां उद्देशक-

1. नागकुमार आदि दूसरी नरक तक जा सकते हैं, बीच में बादल बिजली गर्जन कर सकते हैं। असुरकुमार तीसरी नरक तक और वैमानिक देव सातवीं तक जा सकते हैं।

नरक में अग्निकाय एवं सूर्य आदि नहीं है। अचित्त उष्ण पुद्गल एवं उष्मा होती है।

पहले दूसरे देवलोक तक असुरकुमार और वैमानिक देव कृत बादल आदि हो सकते हैं, आगे केवल वैमानिक कृत ही होते हैं। देवलोकों मे अग्निकाय नहीं होती है। अचित्त प्रकाशमान पुद्गल होते हैं।

जहां तक तमस्काय है या जिन देवलोकों के नीचे घनोदधि है वहां पृथ्वी, अग्नि का निषेध है और तमस्काय घनोदधि के अभाव में अप्काय वनस्पति काय का भी निषेध है यथा कृष्ण राजियों में और पांचवें देवलोक से ऊपर अप्काय वनस्पतिकाय का भी निषेध है घनोदधि और जल स्थानों को छोड़कर।

2. छः प्रकार का आयुबंध है। उनका निधत होना विशिष्ट बंध को कहते हैं और आयुष्य के साथ भी होते हैं। इसी प्रकार गौत्र के साथ भी होते हैं। इस तरह कुल आठ प्रकार होते हैं। लिपि दोष आदि किसी कारण से 12 भी कहे जाते हैं।

निधतनिकाचित =2, ये दो स्वतंत्र और दो आयुष्य के साथ = यों 4 हुए। ये चारों गौत्र के साथ = 8 प्रकार हुए। यथा- निद्धत नाम, निद्धत नाम आयु, निद्धत नाम गौत्र, निद्धत नाम आयु गौत्र।

3. लवण समुद्र का जल ऊंचा उठा हुआ (उन्नत) जल वाला है। क्षुब्ध जल वाला भी है। शेष सभी समुद्र समतल जल वाले हैं एवं अक्षुभित जल वाले हैं।

विशेष- यहां अरुणोदक समुद्र की तमस्काय को उन्नत ऊंचे उठे हुए जल रूप में नहीं गिना गया है अतः वह तमस्काय लवण समुद्र के जल के समान न होकर प्रगाढ़ धूंअर के समान है ऐसा समझना चाहिये।

4. लोक में जितने भी शुभ नाम वर्ण गंध रस स्पर्श है उतने नाम के द्वीप समुद्र है।

नौवा उद्देशक-

1. कर्म बंध का वर्णन प्रज्ञापना पद 24 के अनुसार जावे। देखें सारांश।

2. वैक्रिय शक्ति से देव बाहर के पुद्गल ग्रहण करके एक रूप में अनेक रूप में एक अनेक गंध रस स्पर्श में परिणमन कर सकता है। एक वर्णादि को दूसरे वर्णादि में या विरोधी स्पर्श आदि में परिणमित कर सकता है।

3. अविशुद्ध लेशी देव- विभंग ज्ञानी देव। असम्मोहत = अनुपयोगवंत। विशुद्ध लेशी देव उपयोगवंत हो तो देव देवी को जाने देखे। कुछ उपयोगवंत एवं कुछ अनुपयोगवंत ऐसी अवस्था हो तो भी अवधिज्ञानी जान लेता है। विभंगज्ञानी सही रूप में नहीं जानता है।

दसवां उद्देशक–

1. जीव के सुख दुख को कोई निकाल कर नहीं बता सकता है। जिस तरह नाक में गये गंध के पुद्‌गलों को कोई निकाल कर नहीं बता सकता।

2. जीव और चेतना आपस में नियमतः होते हैं। जीव और प्राण में आपस में भजना है सिद्धों में द्रव्य प्राण नहीं है। नैरयिक आदि के जीव होना नियमा है जीव का नैरयिक आदि का होना भजना है। भव सिद्धिक में नैरयिक होने की भजना और नैरयिक में भवसिद्धिक होने की भजना है।

3. नैरयिक एकांत दुखःरूप वेदना वेदते हैं। देव एकांत सुख रूप वेदना वेदते हैं। तिर्यंच मनुष्य विमात्रा से दोनों वेदना वेदते हैं।

4. सभी जीव आत्मावगाढ़ पुद्‌गलों का आहार करते हैं। अनंतरावगाढ और परंपरावागाढ पुद्‌गलों का नहीं करते। अपेक्षा से अवगाढ में अनंतरावगाढ का आहार करते हैं।

5. केवली को अपरिमित ज्ञान होता है और वे इन्द्रियों से नहीं जानते इन्द्रियातीत केवल ज्ञान से समस्त पदार्थों को जानते हैं।

सातवां शतक

पहला उद्देशक–

1. परभव में जाते हुए जीव तीन समय तक आहारक या अणाहारक होता है उसके बाद आहारक होता है। अर्थात् एकेन्द्रिय में तीन समय और शेष दण्डक में दो समय ही आहारक या अनाहारक होता है तीसरे समय से सभी आहारक होते हैं।

2. आहार के पहले समय जीव सर्व अल्पाहारी होता है और मृत्यु के चरम समय भी जीव सर्व अल्पाहारी होता है।

3. तीन सिकोरे पहला उल्टे, दूसरा सीधा ऊपर वाला, तीसरा उल्टे रखने पर जो आकार होता है वह लोक का स्थूल रूप से आकार है।

4. श्रमण के उपाश्रय में सामायिक में रहे श्रावक को इरियावहि-क्रिया नहीं होती किन्तु सांपरायिक क्रिया होती है। क्योंकि कषाय पूर्णतः क्षीण नहीं होते हैं जब तक सांपरायिकी क्रिया लगती है। अकषायी (कषायरहित) होने पर इरयावहि क्रिया लगती है।

5. श्रावक के हिंसा त्याग संकल्पजा होती है। अतः बिना संकल्प के पृथ्वी खोदते हुए वनस्पति या त्रस की हिंसा हो जाय तो उसके वनस्पति या त्रस की हिंसा सम्बन्धी त्याग भंग नहीं होता है।

6. श्रमण निर्ग्रन्थ को दान देने से उनके संयम में समाधि होती है और समाधिकारक को भी उसी समाधि की उपलब्धि होती है। वह अपने जीवन के आधार रूप पदार्थ का त्याग करता है, दुष्कर कार्य करता है और दुर्लभ लाभ प्राप्त करता है। अंत में बोधि प्राप्त कर मुक्त हो जाता है।

7. कर्म रहित जीव की भी गति होती है।- 1. निस्संगता से, 2. बंधन छेदन से, 3. निरंधण से, 4. पूर्व प्रयोग से। दृष्टांत क्रमशः1. सलेप तुम्बा और जल संयोग। 2. अनेक प्रकार की फलियां, 3. धूएं की उर्ध्व गति, 4. धनुष से छोड़े गये बाण की गति।

8. सकर्मक जीव ही कर्मों का स्पर्श, ग्रहण, उदीरणा, उदय, निर्जरा करता है, आकर्मक जीव के ये कुछ भी नहीं होते।

9. बिना उपयोग के गमना गमन, ग्रहण-निक्षेप आदि क्रिया करने वाला श्रमण सांपरायिक क्रिया से स्पष्ट होता है। क्योंकि उसके कषाय का अभाव नहीं है। एवं वह जिनाज्ञानुसार भी नहीं करता है।

10. ऐषणीय आहार प्राप्त कर उसमें जो अणगार आसक्ति भाव रखते हुए खाता है तो वह '' इंगाल'' दोष है। उस आहार की हीलना निंदा या महान अप्रीति करें, क्रोध से क्लांत होवे तो, ''धूम'' दोष है। स्वाद वृद्धि के उद्देश्य से कोई भी पदार्थ को मिश्रण करे तो '' संजोयणा'' दोष है। ऐसा न करे तो निर्दोष आहार किया जाता है।

चवदह रज्जुलोक का यथार्थ चित्र

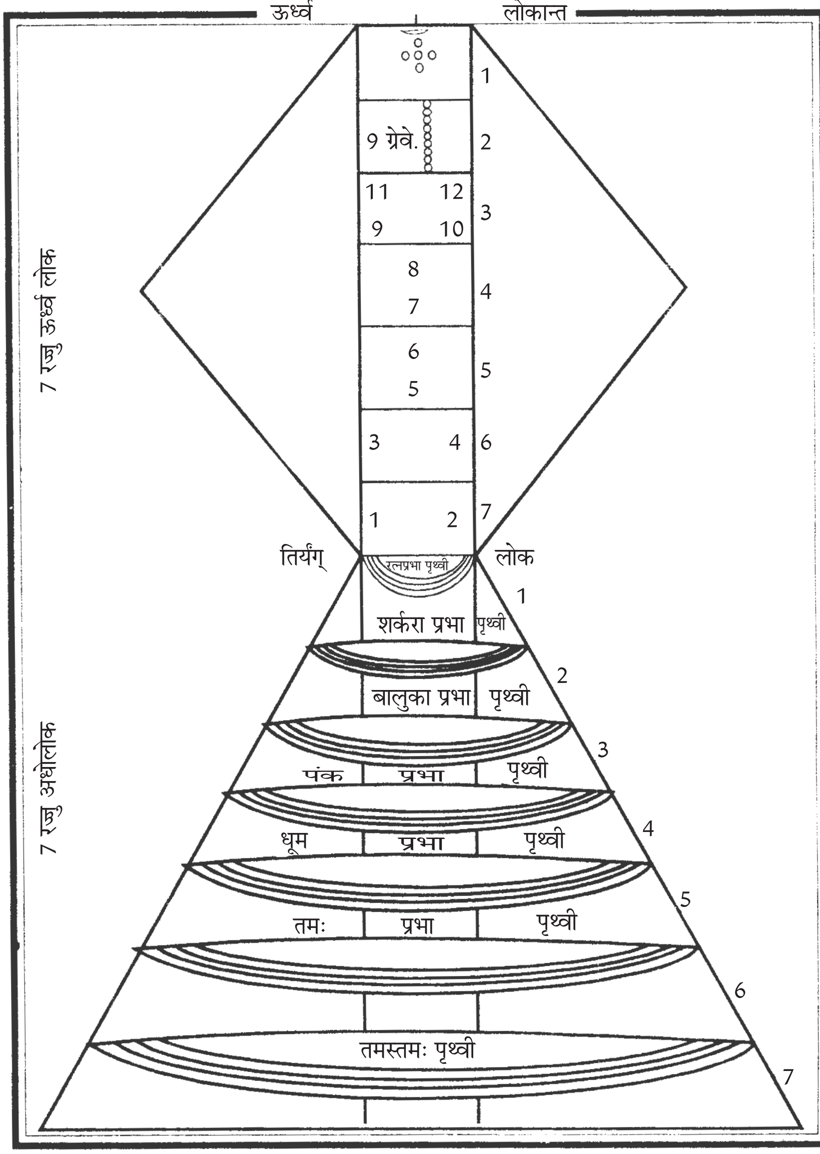

11. प्रथम प्रहर का ग्रहण किया आहारादि चतुर्थ प्रहार में करना '' कालातिक्रांत'' दोष है। दो कोश उपरांत ले जाकर आहारादि करना '' मार्गातिक्रांत'' दोष है। रात्रि में ग्रहण करके दिन में आहार या दिन में ग्रहण कर रात्रि में आहार करें तो '' क्षेत्रातिक्रांत '' दोष है। मर्यादा से (32 कवल से) अधिक आहार करे तो ''प्रमाणतिक्रांत'' दोष है।

12. सावध प्रवृत्तियों के पूर्ण त्यागी, संस्कार श्रृंगार से रहित, श्रमण निर्ग्रन्थ अचित्त एवं त्रस जीव रहित, 42 दोष रहित आहार करे, खुद आरंभ करे- करावे नहीं, संकल्प करें नहीं, निमंत्रित-क्रीत- उद्दिष्ट- आहार ग्रहण न करे, नव कोटि शुद्ध आहार संयम यात्रा निर्वाह के लिये करे। सुड-सुड, चव-चव आवाज न करते हुए, नीचे न गिराते हुए, अल्प मात्रा में भी स्वाद न लेते हुए आहार करे। मांडला के 5 दोष न लगावे। जल्दी जल्दी या अत्यंत धीरे-धीरे आहार न करे। विवेक युक्त समपरिणामों से आहार करे, तो यह शन्नतीत निर्वद्य आहार करना कहा जाता है।

दूसरा उद्देशक-

1. जिसने जीव-अजीव, त्रस-स्थावर प्राणियों को भली भांति जान लिया है उसका पच्चक्खाण सुपच्चक्खाण है और स्वयं को प्रत्याख्यानी कहना भी उसका सत्य होता है। वही पंडित और संवृत्त होता है।

2. पांच महाव्रत, पांच अणुव्रत, रात्रि भोजन त्याग ये मूल गुण पच्चक्खाण है। अन्य तप अभिग्रह नियम आदि एवं स्वाध्यायादि, श्रावक के दिशिव्रत आदि, मारणांतिक संलेखना, ये सभी उत्तरगुण पच्चक्खाण है।

3. दस पच्चक्खाण- 1. सकारण समय से पहले करना, 2. समय से बाद में करना। 3. निरंतर करना, 4. नियत समय पर करना, 5. समय पर आगार का उपयोग करना, 6. आगार सेवन नहीं करना, 7. दत्ती परिमाण करना, 8. संपूर्ण आहार त्याग करना, 9. संकेत- गंठी, मुट्टि आदि पच्चक्खाण करना, 10. पोरिषि आदि अद्धा पच्चक्खाण करना।

22 दंडक के जीव अपच्चक्खाणी होते हैं। तिर्यंच पंचेन्द्रिय देश प्रत्याख्यानी होते हैं, मनुष्य सर्व प्रत्याख्यानी एवं देश प्रत्याख्यानी दोनों हो सकते हैं। उनमें भी मूल गुण प्रत्याख्यानी अल्प होते हैं और उत्तरगुण प्रत्याख्यानी अधिक होते हैं।

4. जीव द्रव्य से शाश्वत है, भाव से-पर्याय से अशाश्वत है।

तीसरा-चौथा-पांचवां उद्देशक-

1. वर्षा ऋतु में वनस्पति जीव बहु आहारी होते हैं। शीत और ग्रीष्म ऋतु में क्रमशः अल्पाहारी होते हैं।

गर्मी में कई वनस्पतियां पुष्पित पल्लवित होती है, फूलती फलती है, उस समय वहां उष्ण योनिक जीव अधिक उत्पन्न होते हैं।

2. मूल कंद यावत बीज आदि में मूल कंद का यावत बीज का जीव रहता है फिर भी मूल का जीव पृथ्वी से संलग्न होता है। कंद का जीव मूल से संलग्न होता है एवं क्रमशः बीज का जीव फल के जीव से प्रतिबद्ध होता है उसी से आहार ग्रहण परंपरा से होता रहता है।

3. वेदन कर्म का होता है। निर्जरा अकर्म की होती है, क्योंकि वेदन के बाद कर्म स्थिति समाप्त हो जाती है। इसलिये उसे अकर्म कहा गया है। वेदन का समय पहले होता है, उसके अनंतर समय में निर्जरा होती है।

4. चारों गतियां शाश्वत है एक जीव की अपेक्षा या पर्याय की अपेक्षा अशाश्वत है। सभी जीवों की अपेक्षा एवं द्रव्य की अपेक्षा शाश्वत है।

5. जीवाभिगम सूत्र के तीसरी प्रतिपत्ति के दूसरे तिर्यंच उद्देशक की यहां भलावण है एवं प्रज्ञापना के संयत पद की भलावन है। जिसके लिये वहां देखना चाहिये।

छट्ठा उद्देशक-

1. जीव इस भव में रहा हुआ पर भव का आयुष्य नहीं वेदता है। परभव में जाते हुए मार्ग में पर भव का आयुष्य वेदता है।

नरक में जाने वाले जीव के यहां पर महावेदना भी हो सकता है, अल्पवेदना वाला भी हो सकता है। मार्ग में भी दोनों हो सकते हैं। नरक में पहुंचने के बाद महान अशाता वेदना वाला होता है कदाचित सुख रूप वेदना वाला होता है।

देव में जाने वाले वहां पहुंचने के बाद एकांत सुखरूप वेदना वाला होता है कदाचित दुःखरूप वेदना वाला होता है।

तिर्यंच मनुष्य में जाने वाले में वहां पहुंचने पर विमात्रा से सुख-दुःख रूप वेदना होती है।

2. जीवों के जानते हुए आयुष्य कर्म का बंध नहीं होता है। अर्थात् मेरा आयुष्य कर्म बंध गया या बंध रहा है ऐसा मालूम नहीं पड़ता है।

3. हिंसा झूठ आदि पापों के सेवन करने से जीव दुःख रूप कर्म का बंध करता है। हिंसा आदि का त्याग करने से सुख रूप कर्मों का बंध होता है।

प्राणियों को दुख देने से परिताप पहुंचाने से दुःख मिलता है एवं उनकी अनुकंपा करने से, रक्षा करने से दुःख नहीं देने से सुख मिलता है।

4. छट्ठा आरा- दुःषम दुषमाकालः इस पंचम आरे के बाद छट्ठा आरा आएगा। वह काल मनुष्य पशु पक्षियों के लिये दुःख जनित हाहाकार शब्द से व्याप्त होगा। इस आरे के प्रारम्भ में धूलि युक्त भयंकर आंधी चलेगी, फिर सांवर्तक हवा चलेगी, अरस विरस अग्नि बिजली मिश्रित वर्षा होगी। जीव जन्तु वनस्पतियां मनुष्य पशु पक्षी पर्वत पर नदी सभी नष्ट भ्रष्ट हो जायेंगे। केवल गंगा सिंधु नदी वैताढ्य पर्वत रहेंगे। उस वैताढ्य पवर्त में गुफा रूप में 72 बिल दोनों नदियों के किनारे हैं उनमें कुछ मनुष्य तिर्यंच रहेंगे।

दोनों नदियों का पाट रथ के पहियों जितना होगा एवं रथ की धुरी प्रमाण पानी ऊंचा (गहरा) होगा जिसमें बहुत मच्छ कच्छ होंगे। उस समय मनुष्य दीन हीन काले करूपे होंगे। उत्कृष्ट एक हाथ का शरीर प्रमाण होगा एवं अधिकतम 20 वर्ष की उम्र होगी। उस समय वर्ण गंध रस स्पर्श संहनन संस्थान सभी अशुभ होंगे।

वे मनुष्य बहुत रोगी, क्रोधी, मानी, मायी, लोभी होंगे। सुबह शाम बिलों में से बाहर निकलेंगे और मच्छ कच्छ को पकड़ कर जमीन में गाड़ देंगे। सुबह गाड़े हुए को शाम को निकालकर खायेंगे और शाम को गाड़े हुए को सुबह निकाल कर खायेंगे। सूर्य बहुत तपेगा एवं चन्द्रमा अत्यंत शीतल होगा। जिससे गाड़े हुए मच्छ कच्छ आदि पक जायेंगे। उस समय अग्नि नहीं होगी।

व्रत पच्चक्खाण से रहित वे मनुष्य मांसाहारी संक्लिष्ट परिणामी होंगे और मरकर प्रायः नरक तिर्यंच गति में जायेंगे।

यह आरा 21 हजार वर्ष का होगा।

मनुष्य का बचा हुआ आहार हड्डी मांस चर्म आदि पशु पक्षी खाकर रहेंगे वे भी प्रायः नरक तिर्यंच में जायेंगे।

सातवां उद्देशक-

1. संवृत्त अणगार- प्रत्येक प्रवृत्तिएं चलना आदि यतना से करने वाला अणगार एवं पूर्ण रूप से भगवदाज्ञा अनुसार संयम आराधन करने वाला अणगार क्रोध मान माया लोभ का विच्छेद कर देता है, उसे ईर्यापथिकी क्रिया लगती है, सांपरायिकी क्रिया नहीं लगती है।

2. काम = विकार भाव, भोग = विषय, कामभोग- विषय विकार, ये प्रचलित अर्थ है। आगम में कान और आंख के विषय शब्द और रूप को ''काम'' कहा गया है। नाक जिव्हा और शरीर के विषय - गंध, रस, स्पर्श को भोग कहा गया है।

काम से केवल इच्छा- मन की तृप्ति होती है। भोग से शरीर की भी तृप्ति होती है। काम-भोग के पदार्थ सचित्त अचित्त दोनों तरह के होते हैं। किन्तु काम-भोग जीवों के ही होते हैं अजीवों के नहीं होते।

चौरेन्द्रिय पंचेन्द्रिय कामी भोगी दोनों होते हैं। एकेन्द्रिय बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय केवल भोगी ही होते हैं। अतः कामी भोगी सबसे अल्प है, नो कामी नो भोगी अनंतगुणा है, उससे भोगी अनंत गुणा है।

3. शक्ति होते हुए इन काम भोगों का त्याग करने से महानिर्जरा होती है या कर्मों का अंत होता है। जिससे जीव देवलोक में या मोक्ष में जाता है।

4. असन्नी जीव इच्छा एवं ज्ञान के अभाव में वेदना वेदते हैं और सन्नी इच्छा एवं ज्ञान के होते भी साधनों की अनुपलब्धि से अनिच्छापूर्वक अकाम वेदना वेदते हैं, इच्छित सुख नहीं भोग सकते।

आठवां उद्देशक-

1. कीड़ी और हाथी में आत्मा समान होती है। विस्तृत जानकारी राजप्रश्नीय सूत्र पुष्प 20 में देखें।

2. किये हुए पाप कर्म सभी जीवों के लिए दुःखदाई हैं। उनके क्षय होने पर ही उस दुख का अंत और सुख की प्राप्ति होती है।

3. नरक में दस प्रकार की वेदना होती है- 1. ठंडी, 2. गर्मी, 3. भूख, 4. प्यास,, 5. खुजली, 6. पराधीनता, 7. ज्वर, 8. दाह, 9. भय, 10. शोक।

4. हाथी और कंथुए को अव्रत की क्रिया समान लगती है।

नवमा उद्देशक-

1. महाशिला कंटक- रथमूसल संग्राम- कोणिक और चेड़ा राजा के युद्ध का वर्णन निरया-वलिका सूत्र में है। सारांश देखें। विशेष वर्णन यह है-

कोणिक राजा के 10 भाई युद्ध में मारे गये। तब कोणिक ने अपने पूर्व भव के दो मित्र जो कि वर्तमान में चमरेन्द्र और शक्रेन्द्र है उन्हें तेले की आराधना कर स्मरण किया। दोनों देवेन्द्र उपस्थित हुए। तीन दिन युद्ध स्थगित रखा गया था।

फिर शक्रेन्द्र की सहायता से महाशिलाकंटक संग्राम हुआ जिसमें कोणिक का सैनिक तृण, पत्र, काष्ठ, कंकर कुछ भी फेंके उसे चेडा राजा की सेना महाशिला पडने का अनुभव करे। चेड़ा राजा का बाण कोणिक को न लगे इसके लिये स्वयं शक्रेन्द्र वज्रमय कवच से रक्षा कर रहा था। इस युद्ध में चौरासी लाख का जन संहार हुआ। चेड़ा राजा की पराजय हुई।

दूसरे दिन पुनः युद्ध हुआ उसका नाम रथमूसल संग्राम था। उसमें एक रथ बिना घोड़े सारथी का अर्थात् यांत्रिक रथ चलता है। जिसके आगे एक मूसल घूमता है, वही जन संहार करता चला जाता है। इस युद्ध में चमरेन्द्र और शक्रेन्द्र दोनों की उपस्थिति रही अर्थात् दोनों की सहायता रही। इसमें भी चेड़ा राजा की पराजय हुई। इस युद्ध में 96लाख का जन संहार हुआ।

दोनों युद्ध में कुल एक करोड़ अस्सी लाख का जन संहार हुआ। युद्ध में मारे गये प्रायः सभी जीव नरक तिर्यंच में गये। एक जीव देवलोक में और एक मनुष्य में उत्पन्न हुआ। दस हजार जीव एक साथ एक मच्छली के कुक्षि में उत्पन्न हुए।

चमरेन्द्र कोणिक का तापस पर्याय का साथी था एवं शक्रेन्द्र पूर्व भव का मित्र था। इसलिये सहायक बने। होनहार भी ऐसा ही निश्चित था। तीनों भगवान महावीर स्वामी के भक्त थे और प्रतिपक्षी चेड़ा आदि अनेकों राजा भी भगवान महावीर स्वामी के व्रतधारी श्रमणोपासक थे।

युद्ध में मरने वाले देवगति में जाते हैं यह किंवंदति सत्य नहीं है। प्रायः दुर्गतिगामी ही होते हैं। कोई जीव देवगति में जाता है। इस उक्त संग्राम में ''वरुण नाग नतुआ'' श्रावक भी आया था। वह निरंतर बेले-बेले पारणा करता था। उस दिन उसने बेले से तेला का पच्चक्खाण किया था। युद्ध में उसे सीने में बाण लगा। मृत्यु समय निकट जानकर रथ मोड़ा और एकांत में जाकर आजीवन संथारा पच्चक्ख कर बाण निकाला। निकालने पर घोर वेदना के साथ आयुष्य समाप्त हो गया। वह देवलोक में उत्पन्न हुआ। उसके इस पंडित मरण पर देवों ने पुष्प वृष्टि आदि की एवं दिव्य गीत ध्वनि की। इसे देखकर बहुत से लोग ऐसा कहने लगे कि युद्ध में मरने वालों की सद्‌गति होती है। ऐसे कथन का लोक प्रचलन भी हो जाता है।

वरूण नाग नतुआ श्रमणोपासक पहले देवलोक में चार पल्योपम की उम्र वाला देव बना है। वहां से एक मनुष्य का भव करके महाविदेह क्षेत्र से मोक्ष में जायेगा।

इसी श्रमणोपासक का एक मित्र भी युद्ध में आया था। धर्म तत्वों को उसने अच्छी तरह समझने का कभी प्रयत्न नहीं किया था। युद्ध में बाण लगने पर वह भी एकांत में गया और मित्र श्रमणोपासक के धर्म क्रिया की श्रद्धा करते हुए उसने संक्षिप्त में पच्चक्खाण किया कि मेरे मित्र श्रावक ने जो पच्चक्खाण किया वही मैं भी धारण करता हूं। इस प्रकार की श्रद्धा सरलता के आचरण से वह मर कर मनुष्य गति में उत्पन्न हुआ।

विशेष- कोणिक राजा के जीत जाने के बाद हार, हाथी एवं विहल्ल कुमार तथा चेड़ा राजा और उसके राज्य सम्बन्धी वर्णन सूत्र में नहीं है। वह वर्णन कथा ग्रन्थों में है। विहल्लकुमार का वर्णन अणुत्तरोपपातिक सूत्र में दीक्षा लेकर अणुत्तर विमान में जाने का है।

दसवां उद्देशक-

1. कालोदाई की प्रवज्या-

राजगृही नगरी में गुणशील उद्यान के निकट अन्यतीर्थिकों का आश्रम था। वहां कालोदायी आदि अनेक संन्यासी रहते थे। एक बार उनमें आपस में चर्चा चली कि ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर पंचास्तिकाय बताते हैं जिसमें चार अरूपी एवं एक रूपी कहते हैं। चार अजीव और एक जीव है, ऐसा कहते हैं। यह उनका कथन किस प्रकार माना जा सकता है?

संयोगवश गौतम स्वामी का पारणा लेकर उधर से आने का प्रसंग बन गया। मार्ग में चलते गौतम स्वामी के निकट आकर उन्होंने अपना प्रश्न रख दिया। गौतम स्वामी ने कहा हम- अस्तिभाव को ही अस्तिभाव कहते हैं। नास्तिभाव को ही नास्तिभाव कहते हैं इससे विपरीत हम नहीं कहते हैं। अतः आप लोग स्वयं अपने ज्ञान से विचार करें।

कालोदायी नामक संन्यासी, स्कंधक संन्यासी के समान ही स्वयं, भगवान के पास आया। भगवान ने उसके संदेह को प्रकट किया और रूपी अरूपी, जीव अजीव अस्तिकाय का स्पष्टीकरण किया।

फिर उसके प्रतिपश्न के उत्तर में भगवान ने कहा कि धर्मास्तिकाय आदि चार पर कोई बैठने सोने आदि की क्रिया नहीं कर सकता। केवल पुद्गलास्तिकाय पर ये सब क्रियाएं की जा सकती है। क्योंकि वह रूपी है।

हिंसा रूप पाप कर्म जीव को जीव से होता है। अजीव से नहीं।

कालोदायी बोध प्राप्त करता है एवं वहीं संयम स्वीकार कर लेता है। उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। शेष सयंम आराधना का वर्णन कालस्यवेसिक पुत्र अणगार के समान है।

पाप कर्म करते समय सुखकर लगते हैं परिणाम में दुःखकर एवं अशुभ रूप होते हैं। धर्माचरण करते समय कष्ट प्रद होता है किन्तु परिणाम उसका सुन्दर और सुखद होता है।

अग्नि जलाने में पृथ्वीकाय आदि पांचों का अधिक आरंभ होता है अग्निकाय का अल्प आरंभ होता है। अग्निकाय को बुझाने में अग्नि काय का अधिक आरंभ होता है और शेष काय का अल्प आरंभ होता है।

तेजोलेश्या से छोड़े गये पुद्गल अचित्त होते हैं एवं वे प्रकाशित भी होते हैं।

आठवां शतक

तीन प्रकार के पुद्गल होते हैं- 1. प्रयोग परिणत- जीव के प्रयत्न से परिणमन को प्राप्त, 2. मिश्र परिणत- भूत कालीन जीव का प्रयोग भी रहे एवं अन्य परिणमन भी हो यथा मृत कलेवर आदि, 3. विश्रसा परिणमन- जीव का प्रयोग न हो किन्तु स्वाभाविक पुद्गल परिणमन हो।

प्रयोग परिणत- 1. जीव के जितने भी भेद प्रभेद होते हैं उतने प्रयोग परिणत पुद्गल होते हैं। 2. उन सभी भेदों के पर्याप्त अपर्याप्त, 3. उन भेदों वाले जीवों के शरीर, 4. उन जीवों के इन्द्रियां, 5. शरीर के इंद्रिया 25 बोल, 6. जीवों के भेदों में वर्णादि 25 बोल, 7. जीवों के शरीरों में वर्णादि 25 बोल, 8. जीवों के इन्द्रियों में वर्णादि, 9. शरीरों के इन्द्रियों में वर्णादि। इन सभी में यावत् वर्णादि में भी प्रयोग परिणत पुद्गल है।

मिश्र परिणत- जीव के द्वारा छोड़े हुए पुद्गल जब तक विश्रसा परिणाम को प्राप्त न हो जाय, तब तक मिश्र परिणत है। अतः जितने प्रकार प्रयोग परिणत के हैं, उतने ही मिश्र परिणत के हैं।

विश्रसा परिणत- जीव के प्रयोग के बिना स्वाभाविक परिणत स्कंध विश्रसा परिणत कहे जाते हैं। वर्णादि के भेद से इनके 25 भेद हैं। एवं विस्तृत भेद 530 हैं।

पुद्गल	मन	वचन	काया	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श	संस्थान	कुल
प्रयोगसा	24	24	426	–	–	–	–	–	474
मिश्रसा	24	24	426	–	–	–	–	–	474
विश्रसा	–	–	–	100	46	100	184	100	530

पंद्रह योग और उनके सरंभ समारंभ आरंभ, असरंभ, असमारंभ अनारंभ की अपेक्षा भी प्रयोग परिणत और मिश्र परिणत के भेद होते हैं।

दो द्रव्य, तीन द्रव्य, चार द्रव्य के परिणाम की विवक्षा में असंयोगी द्विसंयोगी आदि भंग बनते हैं चार से अनंत द्रव्यों तक के संयोगी भंग भी यथाविधि समझ लेने चाहिये।

सबसे अल्प प्रयोग परिणत पुद्‌गल। मिश्र परिणत पुद्‌गल अनंत गुणा। उससे विश्रसा परिणत पुद्‌गल अनंत गुणा।

द्रव्य	विकल्प	असंयोगी	2 संयोगी	3 संयोगी	4 संयोगी	5 संयोगी	6 संयोगी	7 संयोगी	8 संयोगी	9 संयोगी	10 संयोगी
1 द्रव्य	1	1									
2 द्रव्य	2	1	1								
3 द्रव्य	4	1	2	1							
4 द्रव्य	8	1	3	3	1						
5 द्रव्य	16	1	4	6	4	1					
6 द्रव्य	32	1	5	10	10	5	1				
7 द्रव्य	64	1	6	15	20	15	6	1			
8 द्रव्य	128	1	7	21	35	35	21	7	1		
9 द्रव्य	256	1	8	28	56	70	56	28	8	1	
10 द्रव्य	512	1	9	36	84	126	126	84	36	9	1
सं. द्रव्य	10–10 बढ़ाना	1	11	21	31	41	51	61	71	81	91
असं. द्रव्य	11–11 बढ़ाना	1	12	23	34	45	56	67	78	89	100
अनंता द्रव्य	12–12 बढ़ाना	1	13	25	37	49	61	73	85	97	109

ठिकाना	पद	असंयोगी	2 संयोगी	3 संयोगी	4 संयोगी	5 संयोगी	6 संयोगी	7 संयोगी
1 ठिकाना	1	1						
2 ठिकाना	3	1	2					
3 ठिकाना	7	3	3	1				
4 ठिकाना	15	4	6	4	1			
5 ठिकाना	31	5	10	10	5	1		
6 ठिकाना	63	6	15	20	15	6	1	
7 ठिकाना	127	7	21	35	35	21	7	1

3 ठिकाने द्रव्य जावे	भांगे	असंयोगी	2 संयोगी	3 संयोगी	(तीन ठिकाने प्रयोगसा मिश्रसा विश्रसा) पद 7 असंयोगी 3, दो संयोगी 3, तीन संयोगी 1,
1 द्रव्य जाने के	3	3			
2 द्रव्य जाने के	6	3	3		
3 द्रव्य जाने के	10	3	6	1	
4 द्रव्य जाने के	15	3	9	3	
5 द्रव्य जाने के	21	3	12	6	
6 द्रव्य जाने के	28	3	15	10	
7 द्रव्य जाने के	36	3	18	15	
8 द्रव्य जाने के	45	3	21	21	
9 द्रव्य जाने के	55	3	24	28	
10 द्रव्य जाने के	66	3	27	36	
संख्याता द्रव्य जाने के	57	3	33	21	
असंख्याता द्रव्य जाने के	62	3	36	23	
अनन्ता द्रव्य जाने के	67	3	39	25	

चार ठिकाने–सत्यमन, असत्यमन, मिश्रमन, व्यवहारमन। 4 ठिकाने के 15 पद असंयोगी 4, दो संयोगी 6, तीन संयोगी 4, चार संयोगी 1–

4 ठिकाने द्रव्य जावे	भांगे	असंयोगी	दो संयोगी	तीन संयोगी	चार संयोगी
4 ठि. 1 द्रव्य जावे	4	4			
4 ठि. 2 द्रव्य जावे	10	4	6		
4 ठि. 3 द्रव्य जावे	20	4	12	4	
4 ठि. 4 द्रव्य जावे	35	4	18	12	1
4 ठि. 5 द्रव्य जावे	56	4	24	24	4
4 ठि. 6 द्रव्य जावे	84	4	30	40	10
4 ठि. 7 द्रव्य जावे	120	4	36	60	20
4 ठि. 8 द्रव्य जावे	165	4	42	84	35
4 ठि. 9 द्रव्य जावे	220	4	48	112	56
4 ठि. 10 द्रव्य जावे	286	4	54	144	84
4 ठि. संख्याता द्रव्य जावे	185	4	66	84	31
4 ठि. असंख्याता द्रव्य जावे	202	4	72	92	34
4 ठि. अनन्ता द्रव्य जावे	219	4	78	100	37

5 ठिकानों के पद 31–पाँच ठिकाणे जावे एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। 5 ठिकानों के पद 31–असंयोगी 5, द्विसंयोगी 10, तीन संयोगी 10, चार संयोगी 5, पाँच संयोगी 1–

पाँच ठिकाने-द्रव्य जावे	भांगा	असंयोगी	दो संयोगी	तीन संयोगी	चार संयोगी	पाँच संयोगी
पाँच ठिकाने 1 द्रव्य जावे	5	5				
पाँच ठिकाने 2 द्रव्य जावे	15	5	10			
पाँच ठिकाने 3 द्रव्य जावे	35	5	20	10		
पाँच ठिकाने 4 द्रव्य जावे	70	5	30	30	5	
पाँच ठिकाने 5 द्रव्य जावे	126	5	40	60	20	1
पाँच ठिकाने 6 द्रव्य जावे	210	5	50	100	50	5
पाँच ठिकाने 7 द्रव्य जावे	330	5	60	150	100	15
पाँच ठिकाने 8 द्रव्य जावे	495	5	70	210	175	35
पाँच ठिकाने 9 द्रव्य जावे	715	5	80	280	280	70
पाँच ठिकाने 10 द्रव्य जावे	1001	5	90	360	420	126
पाँच ठिकाने संख्याता द्रव्य जावे	521	5	110	210	155	41
पाँच ठिकाने असंख्याता द्रव्य जावे	570	5	120	230	170	45
पाँच ठिकाने अनन्ता द्रव्य जावे	619	5	130	250	185	49

छ ठिकाने जावे-1 आरंभ, 2 अनारंभ, 3 सारंभ, 4 असारंभ, 5 समारंभ, 6 असमारंभ। ठिकाने 6 के पद 63 असंयोगी 6, दो संयोगी 15, तीन संयोगी 20, चार संयोगी 15, पाँच संयोगी 6, छह संयोगी 1=63 पद हुए-

छ ठिकाने-द्रव्य जावे	भांगा	असंयोगी	दो संयोगी	तीन संयोगी	4 संयोगी	5 संयोगी	6 संयोगी
छ ठिकाने 1 द्रव्य जावे	6	6					
छ ठिकाने 2 द्रव्य जावे	21	6	15				
छ ठिकाने 3 द्रव्य जावे	56	6	30	20			
छ ठिकाने 4 द्रव्य जावे	126	6	45	60	15		
छ ठिकाने 5 द्रव्य जावे	252	6	60	120	60	6	
छ ठिकाने 6 द्रव्य जावे	462	6	75	200	150	30	1
छ ठिकाने 7 द्रव्य जावे	792	6	90	300	300	90	6
छ ठिकाने 8 द्रव्य जावे	1287	6	105	420	525	210	21
छ ठिकाने 9 द्रव्य जावे	2002	6	120	560	840	420	56
छ ठिकाने 10 द्रव्य जावे	3003	6	135	720	1260	756	126
छ ठिकाने संख्याता द्रव्य जावे	1353	6	165	420	465	246	51
छ ठिकाने असंख्याता द्रव्य जावे	1482	6	180	460	510	270	56
छ ठिकाने अनन्ता द्रव्य जावे	1611	6	195	500	555	294	61

सात ठिकाने जावे (1) औदारिक (2) औदारिक मिश्र (3) वैक्रिय (4) वैक्रिय मिश्र (5) आहारक (6) आहारक मिश्र (7) कार्मण योग। सात ठिकाने के पद 127-असंयोगी 7, दो संयोगी 21, तीन संयोगी 35, चार संयोगी 35, पाँच संयोगी

21, छह संयोगी 7, सात संयोगी 1=127 पद हुए। निम्न प्रकार से-चार्ट से-

सात ठिकाने-द्रव्य जावे	भांगे	असंयोगी	2संयोगी	3 संयोगी	4 संयोगी	5संयोगी	6 संयोगी	7 संयोगी
सात ठिकाने 1 द्रव्य जावे	7	7						
सात ठिकाने 2 द्रव्य जावे	28	7	21					
सात ठिकाने 3 द्रव्य जावे	84	7	42	35				
सात ठिकाने 4 द्रव्य जावे	210	7	63	105	35			
सात ठिकाने 5 द्रव्य जावे	462	7	84	210	140	21		
सात ठिकाने 6 द्रव्य जावे	924	7	105	350	350	105	7	
सात ठिकाने 7 द्रव्य जावे	1716	7	126	525	700	315	42	1
सात ठिकाने 8 द्रव्य जावे	3003	7	147	735	1225	735	147	7
सात ठिकाने 9 द्रव्य जावे	5005	7	168	980	1960	1470	392	28
सात ठिकाने 10 द्रव्य जावे	8008	7	189	1260	2940	2646	882	84
सात ठिकाने संख्याता द्रव्य जावे	3337	7	231	735	1085	861	357	61
सात ठिकाने असंख्याता द्रव्य जावे	3658	7	252	805	1190	954	392	67
सात ठिकाने अनन्ता द्रव्य जावे	3979	7	273	875	1295	1029	427	73

एक से लेकर 13 द्रव्यों के भांगे-

द्रव्य संख्या	ठिकाणा 3	ठिकाणा 4	ठिकाणा 5	ठिकाणा 6	ठिकाणा 7
	प्रयोगसा	सत्यमन	एकेन्द्रिय	पृथ्वीकाय	औदारिक
	मिश्रसा	असत्यमन	बेइन्द्रिय	अप्काय	औदारिक मिश्र
	विश्रसा	मिश्रमन	तेइन्द्रिय	तेउकाय	वैक्रिय
		व्यवहारमन	चौइन्द्रिय	वायुकाय	वैक्रिय मिश्र
			पंचेन्द्रिय	वनस्पतिकाय	आहारक
				त्रसकाय	आहारक मिश्र
					कार्मण योग
द्रव्य संख्या	भांगा	भांगा	भांगा	भांगा	भांगा
1	3	4	5	6	7
2	6	10	15	21	28
3	10	20	35	56	84
4	15	35	70	126	210
5	21	56	126	252	462
6	28	84	210	462	924
7	36	120	330	792	1716
8	45	165	495	1287	3003
9	55	220	715	2002	5005
10	66	286	1001	3003	8008
11	78	364	1365	4368	12376
12	91	455	1820	6188	18564
13	105	560	2380	8568	27132

दूसरा उद्देशक-

1. आशीविष दो प्रकार का है- 1. जाति आशीविष और कर्म आशीविष। जाति आशीविष के 4 प्रकार है- 1. बिच्छु, 2. मेंढ़क, 3. सर्प, 4. मनुष्य। यह विष इनके दाढ़ा में (दांतों) में होता है।

कर्म- आशीविषः मनुष्य तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पर्याप्त में लब्धि की अपेक्षा होता है। ये लब्धि वाले आठवें देवलोक तक जा सकते हैं। अतः आठवें देवलोक तक के अपर्याप्त में कर्म आशीविष पाया जाता है। अन्य देवों में, नारकी में एवं पंचेन्द्रिय के अतिरिक्त त्रस स्थावर तिर्यंच में कर्म आशीविष नहीं होता है।

बिच्छु के विष का सामर्थ्य अर्द्ध भरत प्रमाण है। मेंढ़क का पूर्ण भरत प्रमाण है। सर्प का जम्बूद्वीप प्रमाण एवं मनुष्य का ढाई द्वीप प्रमाण विष होता है। अर्थात् इतने विशाल पुद्गल स्कंध को प्रभावित करने का उत्कृष्टतम सामर्थ्य होता है।

2. छद्मस्थ निम्न 10 स्थानों को पूर्ण रूप से जान देख नहीं सकता- 1. धर्मास्तिकाय, 2. अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, 4. शरीर रहित जीव, 5. परमाणु, 6. शब्द, 7. गंध, 8. वायु, 9. यह केवली बनेगा, 10. यह मुक्त होगा। इन्हें केवली भगवान पूर्ण रूप से जान देख सकते हैं।

ज्ञान अज्ञान वर्णन (ज्ञान लब्धि)-

पांच ज्ञान, तीन अज्ञान वर्णन नंदी सूत्र के अनुसार है। जिसके लिये सारांश में देखें।

विभंग ज्ञान विभिन्न आकार वाला होता है यथा- ग्राम, नगर, वृक्ष, पर्वत, क्षेत्र, स्तूप, हाथी, घोड़ा, मनुष्य, बैल, पशु, पक्षी, देवता, वानर, आदि किसी भी आकार का हो सकता है। कोई भी क्षेत्र, घर, घर का अंश, अन्य वस्तु का अंश मात्र हो सकता है।

जीवों में 2, 3, 4 और एक ज्ञान हो सकता है एवं दो अथवा तीन अज्ञान हो सकता है।

जघन्य मति श्रुत ज्ञान या मति श्रुत अज्ञान दो अवश्य होते हैं। अवधि मनः पर्यव एवं विभंग ज्ञान विकल्प से होते हैं तब 3 अथवा 4 ज्ञान एवं 3 अज्ञान होते हैं और जब केवल ज्ञान होता है तब अन्य 4 ज्ञान नहीं रहते है। अतः एक ज्ञान ही होता है।

संख्या	1-बोल जाति द्वार के	भजना		नियमा	
		ज्ञान	अज्ञान	ज्ञान	अज्ञान
1	समुच्चय जीव में	5	3		
2 से 20	पहली नरक, भवनपति, वाणव्यंतर देवता		3	3	
21 से 52	6 नरक, ज्योतिषी से नव ग्रैवेयक			3	3
53 से 57	पाँच अणुत्तर विमान			3	
58 से 63	पाँच स्थावर असंज्ञी मनुष्य				2
64 से 67	तीन विकलेन्द्रिय असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय			2	2
68	संज्ञी तिर्यंच	3	3		
69	मनुष्य	5	3		
70	सिद्ध भगवान			1	

द्वार का नाम	संख्या	बोल	भजना		नियमा	
			ज्ञान	अज्ञान	ज्ञान	अज्ञान
2. गति द्वार		नरकगतिक, देवगतिक	–	3	3	–
		तिर्यंच गति में	–	–	2	2
		मनुष्य गतिक में	3	–	–	2
		सिद्ध गतिक में	–	–	1	–
3. इन्द्रिय द्वार 7	1–2	सइन्द्रिय पंचेन्द्रिय में	4	3	–	–
	3	एकेन्द्रिय में	–	–	–	2
	4 से 6	विकलेन्द्रिय में	–	–	2	2
	7	अनिन्द्रिय में	–	–	1	–
4. काय द्वार 8	8–9	सकाय–त्रसकाय में	5	3	–	–
	10 से 14	पृथ्वीकाय आदि पाँच स्थावर में	–	–	–	2
	15	अकाय में	–	–	1	–
5. सूक्ष्म बादर द्वार 3	16	सूक्ष्म में	–	–	–	2
	17	बादर में	5	3	–	–
	18	नो सूक्ष्म नो बादर में	–	–	1	–
6. पर्याप्ति द्वार 2	19	पर्याप्त में समुच्चय, मनुष्य	5	3	–	–
		पहली नरक से 9 ग्रैवेयक में	–	–	3	3
		पांच अणुत्तर में	–	–	3	–
		5 स्थावर, 3 विकले., अ. तिर्यंच	–	2	–	–
		सन्नी तिर्यंच	3	3	–	–
	20	अपर्याप्त में समुच्चय	3	3	–	–
		पहली नरक, भवन., वाण व्यंतर	–	3	3	–
		2 से 6 नरक, ज्यो. से नव ग्रै. तक	–	–	3	3
		सातवीं नरक	–	–	–	3
		5 अणुत्तर	–	–	3	–
		5 स्थावर, अ. मनुष्य	–	–	–	2
		3 विक., अ.ति., स. ति.	–	–	2	2
		सन्नी मनुष्य	3	–	–	2
		नो पर्या. नो अपर्या.	–	–	1	–

7. भवस्थ द्वार	21	भवस्थ में मनुष्य	5	3	–	–
8.भवसिद्धिक द्वार2	22	भवी में	5	3	–	–
	23	अभवी में नो भवी नो अभवी	–	3	–	–
9. संज्ञी द्वार 3	24	सन्नी में	4	3	–	–
	25	असन्नी में	–	–	2	2
	26	नो सन्नी नो असन्नी में	–	–	1	–
12. योग द्वार 5	27 से 30	संयोगी, तीन योग में	5	3	–	–
	31	अयोगी में	–	–	1	–
13. लेश्या द्वार 8	32–33	सलेशी–शुक्ललेशी में	5	3	–	–
	34 से 38	पाँच लेश्या में	4	3	–	–
	39	अलेशी में	–	–	1	–
14. कषाय द्वार 6	40 से 44	सकषायी, चार कषायी में	4	3	–	–
	45	अकषायी में	5	–	–	–
15. वेद द्वार 5	46 से 49	सवेदी, तीन वेद में	4	3	–	–
	50	अवेदी में	5	–	–	–
16. आहार द्वार 2	51	आहारक में	5	3	–	–
	52	अनाहारक में	4	3	–	–
11. उपयोग द्वार 2	53–54	साकार–अनाकार दोनों उपयोग में	5	3	–	–
	55 से 58	चार ज्ञान में	4	–	–	–
	59	केवल ज्ञान में	–	–	1	–
	60–61	दो अज्ञान में, समु. अज्ञान	–	3	–	–
	62	विभंग ज्ञान में	–	–	–	3
	63–64	चक्षु–अचक्षु दर्शन में	4	3	–	–
	65	अवधि दर्शन में, मतिश्रुत में	4	–	–	3
	66	केवल दर्शन में	–	–	1	–

10. लब्धि द्वार 68 भेद	67–68	मति श्रुतज्ञान के अभाव में	–	3	1	–
	69	अवधि ज्ञान के अभाव में	4	3	–	–
	70	मन: पयर्व ज्ञान के अभाव में	4	3	–	–
	71	केवल ज्ञान के अभाव में	4	3	–	–
	72–73	समु. अज्ञान मति श्रुत अज्ञान के अभाव में	5	–	–	–
	74	विभंग ज्ञान के अभाव में	5	–	–	2
	75	समुच्चय दर्शन में	5	3	–	–
	76	समुच्चय दर्शन के अभाव में	–	–	–	–
	77	सम्यग् दर्शन में, समुच्चय ज्ञान	5	–	–	–
	78	सम्यग् दर्शन के समु. ज्ञान अभाव में	–	3	–	–
	79	मिथ्या दर्शन में, मिश्र दर्शन	–	3	–	–
	80	मिश्र दर्शन मिथ्या दर्शन के अभाव में	5	3	–	–
	81	चारित्रा चारित्र में	–	3	–	–
	82	चारित्रा चारित्र के अभाव में	5	3	–	–
	83	समुच्चय चारित्र में	5	–	–	–
	84	चारित्र के अभाव में	4	3	–	–
	85 से 88	सामायिक आदि 4 में	4	–	–	–
	89 से 92	सामायिक आदि 4 के अभाव में	5	3	–	–
	93	यथा ख्यात में	5	–	–	–
	94	यथा ख्यात के अभाव में	5	3	–	–
	95 से 99	दानादि 5 लब्धि में	5	3	–	–
	100 से 104	दानादि 5 लब्धि के अभाव में	–	–	1	–
	105	बालवीर्य में	3	3	–	–
	106	बालवीर्य के अभाव में	5	–	–	–
	107	बाल पंडित वीर्य में	3	–	–	–
	108	बाल पंडित वीर्य के अभाव में	5	3	–	–
	109	पंडित वीर्य में	5	–	–	–
	110	पंडित वीर्य के अभाव में	4	3	–	–
	111–112	सइन्द्रिय, स्पर्शेइन्द्रिय में	4	3	–	–
	113–114	सइन्द्रिय स्पर्शेन्द्रिय के अभाव में	–	–	1	–
	115	रसनेइन्द्रिय में	4	3	–	–
	116	रसनेन्द्रिय के अभाव में	–	–	1	2
	117–119	त्रण इन्द्रिय में (श्रो.च.घ्रा.)	4	3	–	–
	120–122	त्रण इन्द्रिय के अभाव में	–	–	2+1	2

ज्ञान की कायस्थिति, अंतर, अल्पबहुत्व का वर्णन जीवाभिगम सूत्र में हैं।

पर्यव की अपेक्षा अल्पबहुत्व- 1. सबसे अल्प मनः पर्यवज्ञान के, 2. अवधि ज्ञान के अनंत गुणे, 3. श्रुतज्ञान के अनंत गुणे, 41. मतिज्ञान के अनंत गुणे, 5. केवल ज्ञान के अनंत गुणे।

1. सबसे अल्प पर्यव विभंग ज्ञान के, 2. श्रुतअज्ञान के अनंतगुणे, 3. मतिअज्ञान के अनंत गुणे।

1. जीव द्वार- पहली नारकी भवनपति व्यंतर में किसी में 2 अज्ञान होते हैं किसी में 3 अज्ञान होते हैं, अतः 3 अज्ञान की भजना 3 ज्ञान की नियमा। शेष सभी नारकी देवता में 3 ज्ञान 3 अज्ञान की नियमा। पांच अणुत्तर विमान में अज्ञान नहीं है, अतः तीन ज्ञान की नियमा। पांच स्थावर में 2 अज्ञान की नियमा, तीन विकलेन्द्रिय में 2ज्ञान 2 अज्ञान की नियमा। तिर्यंच पंचेन्द्रिय में 3 ज्ञान 3 अज्ञान की भजना, मनुष्य में 5 ज्ञान, 3 अज्ञान की भजना है।

2. वाटे वहता- (मार्ग में) नरकगति देवगतिक में 3 अज्ञान की भजना 3 ज्ञान की नियमा तिर्यंच में 2 ज्ञान 2 अज्ञान की नियमा, मनुष्य में 3 ज्ञान की भजना और 2 अज्ञान की नियमा।

इसी तरह निम्न द्वारों में भी ज्ञान की भजना- नियमा होती है।

1. इन्द्रिय (जाति), 2. काया, 3. सूक्ष्म, 4. पर्याप्ति, 5. भवस्थ, 6. भवी, 7. संज्ञी-असंज्ञी, 8. योग, 9. लेश्या, 10. कषाय, 11. वेद, 12. आहार, 13. उपयोग, 14. लब्धि।

122 बोलों में ज्ञान अज्ञान की नियमा भजनाः

ज्ञान की स्थिति

सादि सांत | **सादि अनंत**

मतिश्रुत	अवधि	मनःपर्यव	केवलज्ञान
मति श्रुत	अवधि	मनःपर्यव	
ज. अंत.	ज. एक समय	ज. एक समय	
उत्कृष्ट 66 सागर	उत्कृष्ट 66 सागर	उत्कृष्ट पूर्व कोटि कुछ न्यून	

ज्ञान	द्रव्य से	क्षेत्र से	काल से	भाव से
(1) मतिज्ञान	आदेश से-सर्व द्रव्यों को जानता है, देखता (नहीं)	आदेश से सभी क्षेत्रों को जानता है, देखता (नहीं)	आदेश से समस्त कालों को जानते है देखते (नहीं)	आदेश से सभी भावों को जानते है, देखते (नहीं)
(2) श्रुतज्ञान	उपयोग से-सर्वद्रव्यों को जानते है, देखते है। प्रत्यक्ष देख रहे हों, इस प्रकार देखते है।	उपयोग से-सभी क्षेत्रों को जानते है, देखते है।	उपयोग से समस्त कालों को जानते है, देखते है	सभी पर्यायों को जानते है, देखते है।
(3) अवधिज्ञान	**जघन्य**-अनन्तरूपी द्रव्यों को जानते देखते हैं। उत्कृष्ट-सभी रूपी द्रव्यों को जानते देखते हैं।	**जघन्य**-अंगुल का असंख्या तवाँ भाग जानते देखते है।	**जघन्य**-आवलिका का असंख्यातवाँ भाग जानते देखते हैं।	**जघन्य**-अनन्त भावों को जानते देखे हैं। उत्कृष्ट-अनंत भावों को जानते देखते हैं।

		उत्कृष्ट-संपूर्ण लोक देखते है, अलोक में लोक जितने असंख्य खंड क्षेत्र जानते देखते है।	**उत्कृष्ट**-असंख्य उत्सर्पिणियाँ और अवसर्पिणियाँ बीती हुई, बीतने वाली जानते देखते हैं।	
(4) मन:पर्यव-ज्ञान-ऋजुमति	ऋजुमति **जघन्य** उत्कृष्ट अनन्तानन्त प्रदेशी स्कंध को जानता देखता है	ऋजुमति **जघन्य** अंगुल के असंख्यातवें भाग **उत्कृष्ट-अधोदिशा** में रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के और नीचे के क्षुल्लक (छोटे)प्रतरों को देखता है। **ऊँची दिशा में**-ज्योतिषी के ऊपरी तल तक तिरछी-अढ़ाई अंगुल कम अढ़ाई द्वीप में (2 समुद्र, 15 कर्म, 30 अकर्म, 56 अन्तर्द्वीपा) रहे संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के मनोगत भावों को जानता देखता है।	ऋजुमति **जघन्य** उत्कृष्ट पल के संख्यातवें भाग गया काल (बीता हुआ) और आगामी काल संबंधी जानता देखता है।	ऋजुमति **जघन्य उत्कृष्ट**-अनन्त भावों को जानते देखते हैं, सब भावों के अनन्तवें भाग को जानते, देखते हैं।
विपुलमति	ऋजुमति जितना जानते है, उससे अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर, निर्मल, अधिक स्पष्ट जानते देखते हैं।	**विपुलमति**-संपूर्ण अढ़ाई द्वीप को जानता देखता है।	विपुलमति उसी को अधिक तर, विपुलतर, विशुद्धतर, निर्मल अधिक स्पष्ट जानता देखता है।	विपुलमति-उसी को अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर, निर्मल, अधिक स्पष्ट जानता देखता है।
(5) केवलज्ञान (भवस्थ और सिद्ध केवलज्ञान)	सभी द्रव्यों को जानते देखते हैं।	सभी क्षेत्रों को (लोक-अलोक को) देखते जानते हैं।	सभी कालों को (लोक-अलोक को) जानते देखते हैं।	सभी भावों को (औदायिक आदि को) जानते देखते हैं।
(1)मति अज्ञान	ग्रहण किये पुद्‌गलों को जानता देखता है।	ग्रहण किये पुद्‌गलों को जानता देखता है।	ग्रहण किये पुद्‌गलों को जानता देखता है।	ग्रहण किये पुद्‌गलों को जानता देखता है।
(2)श्रुत अज्ञान	ग्रहण किये पुद्‌गलों को कहता है, बतलाता है, प्ररूपणा करता है।	ग्रहण किये पुद्‌गलों को कहता है, बतलाता है, प्ररूपणा करता है।	ग्रहण किये पुद्‌गलों को कहता है, बतलाता है, प्ररूपणा करता है।	ग्रहण किये पुद्‌गलों को कहता है, बतलाता है, प्ररूपणा करता है।
(3)विभंग ज्ञानी	ग्रहण किये पुद्‌गलों को जानता देखता है।	ग्रहण किये पुद्‌गलों को जानता देखता है।	ग्रहण किये पुद्‌गलों को जानता देखता है।	ग्रहण किये पुद्‌गलों को जानता देखता है।

ज्ञानादि	भांगा स्थिति	जघन्य काल	उत्कृष्ट काल स्थिति
समुच्चय ज्ञान	दो भांगा सादि सपर्यवसित,	अन्तर्मुहूर्त	66 सागर झाझेरी
	सादि अपर्यवसित	स्थिति नहीं	स्थिति नहीं
मतिज्ञान श्रुतज्ञान		अन्तर्मुहूर्त	66 सागर झाझेरी
अवधि ज्ञान		1 समय	66 सागरोपम झाझेरी
मन:पर्यव ज्ञान		1 समय	देशोन करोड़ पूर्व (कुछ कम)
केवलज्ञान	सादि अपर्यवसित	स्थिति नहीं	स्थिति नहीं कभी नष्ट नहीं होता
समुच्चय अज्ञान	तीन भांगा अनादि अनंत (अभवी) अनादि सांत (भवी में) सादि सांत (पड़िवाई भवी)		
समु. अज्ञान मति श्रुत अज्ञान	तीसरा भांगा सादिसांत	अन्तर्मुहूर्त	देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्तन
विभंग ज्ञान		1 समय	33 सागर देशोन क्रोड़पूर्व अधिक

विशेष- 1. ज्ञान= केवलज्ञान 2. ज्ञान = मति, श्रुत 3. ज्ञान = मति, श्रुत, अवधि 4. ज्ञान = अवधि, मनः पर्यव अथवा केवल ज्ञान इन तीनों में से किसी एक के बिना शेष चार 5. ज्ञान = पांचों 2. अज्ञान = मति, श्रुत 3. अज्ञान = तीनों।

तीसरा चौथा उद्देशक-

1. ताल वृक्ष नारियल वृक्ष आदि संख्यात जीवी होते हैं। एक बीज वाले नीम, आम, जामुन आदि और बहुबीज वाले बड़, पीपल, उंबर आदि वृक्ष असंख्य जीवी होते हैं। आलू मूला आदि अनंत जीवी है। यहां वृक्ष को संख्यात जीवी आदि उसके किसी अवस्था या फल की अपेक्षा समझना चाहिये। अन्यथा कोपल अवस्था में फलों की मंजरी आदि कच्ची अवस्था में असंख्य जीव भी हो सकते हैं एवं अनंतकाय के लक्षणों की अवस्था में अनंत जीव भी पाये जाना संभव होता है। विस्तृत वर्णन प्रज्ञापना सूत्र पद पहले में देखें।

2. मनुष्य या पशु आदि किसी भी प्राणी के शरीर का कोई अवयव कट कर दूर गिर जाय तो भी कुछ समय तक दोनों विभागों के बीच में आत्म प्रदेश संलग्न रहते हैं उन बीच के प्रदेशों में शस्त्र अग्नि या किसी के चलने से कोई बाधा पीड़ा नहीं होती है और वे टूटते भी नहीं है।

3. आठ पृथ्वी आदि के चरम अचरम सम्बन्धी वर्णन प्रज्ञापना पद के 10 के समान है। देखें सारांश।

4. क्रिया सम्बन्धी वर्णन प्रज्ञापना पद 22 के समान है। देखें सारांश।

पांचवा उद्देशक-

1. सामायिक करते हुए श्रमणोपासक के धन स्त्री परिवार घर के उपकरण का त्याग होता है उसके ऐसे परिणाम होते हैं कि ये पदार्थ स्त्री धन आदि मेरे नहीं है ऐसे परिणामों से वह सामायिक के उस मुहूर्त भर समय तक लीन रहता है। किन्तु पूर्णतया आजीवन त्याग न होने से उसका पूर्ण ममत्व उन पदार्थों से व्यवच्छिन्न नहीं होता है, सम्बन्ध टूटता नहीं है। अतः उन पदार्थों का कोई अन्य व्यक्ति स्वामी नहीं बन सकता है। यदि कोई उसके धन को चुरावे या उसकी स्त्री को अपनी बनावे तो वह सामायिक के बाद उन वस्तुओं की खोज करता हुआ, प्राप्त करने का प्रयत्न करता हुआ, अपनी वस्तुओं के लिये ही प्रयत्न करने वाला कहा जायेगा।

2. हिंसा आदि का त्याग तीन करण तीन योग से होता है। तीन करण- 1. करना, 2. कराना, 3. अनुमोदन करना। तीन योग- 1. मन, 2. वचन, 3. काया। इनमें से किसी भी करण या किसी भी योग से प्रत्याख्यान होता है कम से कम एक करण और एक योग से होता है, अधिकतम तीन करण तीन योग से होता है।

श्रमणोपासक के अणुव्रतों में हिंसादि का त्याग करण और योग के इन 49 भंगों से किया जा सकता है। वह भंग संख्या इस प्रकार हैः-

1. दो संयोगी (एक करण-एक योग)	=	9 भंग
2. तीन संयोगी (1 + 2 एवं 2 + 1)	=	18भंग
3. चार संयोगी (2 + 2, 1 + 3, 3 + 1)	=	15 भंग
4. पांच संयोगी (2 + 3, 3 + 2)	=	6भंग
5. छः संयोगी (3 + 3)	=	1 भंग
योग	**=**	**49 भंग**

दो संयोगी 9 भंग (1 + 1)- 1. करना नहीं मन से, 2. करना नहीं वचन से, 3. करना नहीं काया से, 4. कराना नहीं मन से, 5. कराना नहीं वचन से, 6. कराना नहीं काया से, 7. अनुमोदन करना नहीं मन से, 8. अनुमोदन करना नहीं वचन से, 9. अनुमोदन करना नहीं काया से।

तीन संयोगी 18 भंग (1 + 2 एवं 2 + 1)- 1. करना नहीं मन से, वचन से, 2. करना नहीं मन से काया से, 3. करना नहीं वचन से काया से, 4. कराना नहीं मन से वचन से, 5. कराना नहीं मन से काया से, 6. कराना नहीं वचन से काया से, 7.अनुमोदन करना नहीं मन से वचन से, 8. अनुमोदन करना नहीं मन से काया से, 9. अनुमोदन करना नहीं वचन से काया से।

1. करना नहीं कराना नहीं मन से, 2. करना नहीं कराना नहीं वचन से, 3. करना नहीं कराना नहीं काया से, 4.करना नहीं अनुमोदन करना नहीं मन से, 5. करना नहीं अनुमोदन करना नहीं वचन से, 6. करना नहीं अनुमोदन करना नहीं काया से, 7. कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं मन से, 8. कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं वचन से, 9. कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं काया से।

चार संयोगी के 15 भंग (2 + 2, 1 + 3, 3 + 1)– 1. करना नहीं कराना नहीं मन से वचन से, 2. करना नहीं कराना नहीं मन से काया से, 3. करना नहीं कराना नहीं वचन से काया से। 4. करना नहीं अनुमोदन करना नहीं वचन से काया से, 5. करना नहीं अनुमोदन करना नहीं मन से काया से, 6. करना नहीं अनुमोदन करना नहीं वचन से काया से, 7. कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं मन से वचन से, 8. कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं मन से काया से, 9. कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं वचन से काया से।

1. करना नहीं मन से वचन से काया से, 2. कराना नही मन से वचन से काया से, 3. अनुमोदन करना नहीं से वचन से काया से।

1. करना नहीं कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं मन से, 2. करना नहीं कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं मन वचन से, 3. करना नहीं कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं काया से।

पांच संयोगी 6भंग (2 + 3 एवं 3 + 2)– 1. करना नहीं कराना नहीं, मन से वचन से काया से, 2. करना नहीं, अनुमोदन करना नहीं, मन से वचन से काया से, 3. कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं मन से वचन से काया से।

1. करना नहीं कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं, मन से वचन से, 2. करना नहीं कराना नहीं अनुमोदना करना नहीं मन से काया से, 3. करना नहीं कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं, वचन से काया से।

छः संयोगी 1 भंग (3 + 3)– 1. करना नहीं कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं, मन से वचन से काया से।

3. श्रमणोपासक व्रत धारण करता हुआ पूर्व कृत पाप की निंदा करता है, उससे निवृत्त होता है और भविष्य के लिये उस पाप का प्रत्याख्यान करता है।

4. गौशालक के 12 प्रमुख श्रावक– 1. ताल, 2.ताल प्रलंब, 3. उद्विघ, 4. संविध, 5. अवधि, 6. उदय. नामोदय, 8. नर्मोदय, 9. अनुपालक, 10. शंखपालक, 11. अयम्पुल, 12. कातर।

ये आजीविकोपासक कहे जाते हैं– 1. उम्बर फल, 2. बड़ के फल, 3. बोर, 4. शहतूत, 5. पीपल के फल ये पांच फल नहीं खाते। प्याज लहसुन कंदमूल के त्यागी होते हैं। बैलों को नपुंसक नहीं बनाते और नाक नहीं बांधते किन्तु ऐसे ही रखते हैं एवं त्रस प्राणियों की हिंसा रहित व्यापार से आजीविका करते हैं।

5. श्रमणोपासकों को भी 15 कर्मादान के व्यापार स्वयं करना दूसरों से कराना या अनुमोदन करना नहीं कल्पता है।

छट्ठा उद्देशक–

1. श्रमण निर्ग्रन्थ को कल्पनीय आहारादि देने से निर्जरा होती है। अकल्पनीय आहारादि देने से निर्जरा के साथ अल्प पाप बंध भी होता है। असंयत अविरत किसी भी लिंग धारी को देने से पाप बंध होता है निर्जरा नहीं होती है। इन तीनों प्रकार के दान में पुण्य बंध तो सर्वत्र होता ही है क्योंकि भावना में उदारता एवं अनुकम्पा होती है दान लेने वाले को सुख पहुंचता है। अध्यवसाय शुभ होते हैं। सूत्र में पाप एवं निर्जरा की अपेक्षा होने से एकांत निर्जरा या एकांत पाप शब्द का प्रयोग किया गया है। पुण्य निषेध का आशय नहीं है। ऐसा समझना चाहिये।

2. भिक्षा में गये हुए श्रमण को दाता किसी श्रमण तपस्वी स्थविर के नाम से व्यक्तिगत खाद्य पदार्थ देवे तो उसी श्रमण तक पहुंचाना आवश्यक होता है। कदाचित वह श्रमण न मिले तो उस खाद्य पदार्थ को खाना या अन्य किसी को देना नहीं कल्पता है। योग्य स्थंडिल भूमि में परठ देना चाहिये। इसी प्रकार पात्र आदि उपकरण के विषय में भी समझ लेना चाहिये।

3. श्रमण ने कहीं कोई अकृत्य स्थान का, दोष का सेवन किया फिर उसकी आलोचना प्रतिक्रमण करने का दृढ़ संकल्प किया। आलोचना सुनने वाले के पास पहुंचने का भी संकल्प किया। किन्तु किसी भी प्रकार की अंतराय के कारण आलोचना न कर सके तो भी वह आराधक होता है। अर्थात् किसी का भी आयु पूर्ण हो जाय अथवा वाचा (बोलना) बंध हो जाय तो भी संकल्प, तत्परता एवं प्रयत्न प्रारंभ आदि से उसके आलोचना का फल हो जाता है। जिस तरह अग्नि में डाला तंतु ''जला'' एवं रंग में डाला तंतु रंगा कहा जाता है। इसी प्रकार वह आराधक कहा जाता है।

4. औदारिक शरीर वालों से सभी जीवों को 3 या 4 अथवा 5 क्रिया लगती है। वैक्रिय शरीर वालों से 3 या 4 क्रिया लगती है, पांचवी प्राणातिपातिकी क्रिया नहीं लगती है। समुच्चय जीव और मनुष्य कदाचित अक्रिय भी होते हैं। आहारक तैजस कार्मण शरीर की अपेक्षा क्रिया वैक्रिय के समान है। अर्थात् 3 या 4 क्रिया लगती है। पांचवी नहीं लगती है।

सातवां उद्देशक-

1. गृहस्थ द्वारा दी गई भिक्षा पात्र में पड़ने के पहले भी साधु की होती है '' देते हुए दी गई'' इस सिद्धान्त से यह स्पष्ट है। अतः बीच में ही कोई ले ले तो वह साधु का ही लिया गया गिना जाता है गृहस्थ का नहीं।

पृथ्वी आदि पर प्रयोजन होने पर ही श्रमण यतना पूर्वक चलते हैं। अतः वे विराधक नहीं होते हैं। अयतना से अथवा निष्प्रयोजन चलने वाले विराधक एवं असंयत कहे जाते हैं।

राजगृही के लिये गमन करने वाला भी राजगृह गया कहा जायेगा। ''नहीं गया'' ऐसा मानने पर कभी भी नहीं पहुंचेगा।

गति प्रपात- प्रयोग गति आदि वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के 16वें प्रयोग पद में हैं। देखें सारांश।

आठवां उद्देशक-

1. प्रत्यनीक = विरोधी कई प्रकार के होते हैं- 1. आचार्य उपाध्याय स्थविर आदि की उपेक्षा ''गुरुप्रत्यनीक'' होता है। 2. इस लोक परलोक की अपेक्ष 'गति-प्रत्यनीक' होता है। 3. कुल गण संघ की अपेक्षा ' समूह-प्रत्यनीक' होता है। 4. तपस्वी ग्लान नवदीक्षित की अपेक्षा 'अनुकंपा-प्रत्यनीक' होता है अर्थात् ये तीनों अनुकंपा सेवा के योग्य होते हैं। 5. सूत्र अर्थ की अपेक्षा 'श्रुत-प्रत्यनीक' होता है 6. ज्ञान दर्शन चारित्र की अपेक्षा 'भाव-प्रत्यनीक' होता है।

2. आगम श्रुत आदि 5 प्रकार का व्यवहार यथाक्रम से रागद्वेष रहित होकर किया जाता है तभी आराधना होती है। विशेष वर्णन के लिये देखें व्यवहार सूत्र सारांश।

3. ईर्यावहि बंधः गुणस्थान 11, 12, 13 में इर्यावहि बंध होता है। यह सादि सपर्यसित (2 समय का) होता है। मनुष्य मनुष्यणी बांधते हैं, वे भी अवेदी बांधते हैं, सवेदी नहीं। पूर्व वेद की अपेक्षा तीनों लिंग वाले बांधते हैं।

इर्यावहि बंध के प्रथम समवर्ती अर्थात् ग्यारहवें बारहवें गुणस्थान वाले अशाश्वत है और अनेक समयवर्ती अर्थात् तेरहवे गुणस्थान वाले शाश्वत है।

अशाश्वत होने से मनुष्य मनुष्यणी के असंयोगी चार और द्विसंयोगी चार कुल आठ भंग होते हैं।

पूर्व भाव की अपेक्षा पच्छाकड तीन वेद से असंयोगी 6, द्विसंयोगी 12, तीन संयोगी 8यों कुल 26भंग होते हैं।

तीन काल की अपेक्षा करके तीन संयोगी बंधी के आठ भंग बनते हैं जिसमें से सात भंग इर्यावहि बंध में ग्रहणाकर्ष की अपेक्षा भंग पाये जाते हैं। वे भंग इस प्रकार है-

1. बांध्यो बांधे बांधसी	=	तेरहवें गुणस्थान के द्विचरम समय तक
2. बांध्यो, बांधे, नहीं बांधसी	=	तेरहवें गुणस्थान के चरम समय में
3. बांध्यो, नहीं बांधे बांधसी	=	ग्यारहवें गुणस्थान से गिरे हुए में
4. बांध्यों, नहीं बांधे, नहीं बांधसी	=	14 वें गुणस्थान में
5. नहीं बाध्यों, बांधे, बांधसी	=	11 वें 12वें गुणस्थान के प्रारंम्भ में
6. नहीं बांध्यो, बांधसे नहीं बांधसी	=	शून्य है। भवाकर्ष की अपेक्षा होता है।
7. नहीं बांध्यों, नहीं बांधे, बांधसी	=	दसवे गुणस्थान के चरम समय में
8. नहीं बांध्यों, नहीं बांधे, नहीं बांधसी	=	अभवी में

भावकर्म की अपेक्षा ये आठ भंग पूर्व भव वर्तमान भव और मोक्ष अथवा आगामी भव की अपेक्षा घटित कर लेना चाहिये।

ईयावहि बंध भी सर्व से सर्व बंध होता है। देश से नहीं होता है।

4. संपराय बंधः संभी सांसारिक जीव बांधते हैं। प्रथम गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक बांधते हैं। यह बंध चारों गति में सभी बोलों में शाश्वत है।

तीनों वेदों में भी शाश्वत है। अवेदी में यह बंध होता है। वह अवेदी का बोल 9 वें 10 वें गुणस्थान की अपेक्षा अशाश्वत है। अतः पूर्व कालीन तीन वेद की अपेक्षा पच्छाकड के 26भंग होते हैं वे भंग इर्यावहि बंध के समान ही है।

सांपरायिक बंध– 1. अनादि अनंत, 2. अनादि सांत और 3. सादि सांत होता है। सादि अनंत नहीं होता है।

तीन काल के तीन संयोगी भंग संपराय बंध में चार होते हैं वे इस प्रकार है-

1. बांध्यो, बांधे, बांधसी	=	अभवी की अपेक्षा
2. बांध्यो, बांधे नहीं बांधसी	=	भवी की अपेक्षा
3. बांध्यों, नहीं बांधे बांधसी	=	उपशम श्रेणी की अपेक्षा
4. बांध्यो, नहीं बांधे, नहीं बांधसी	=	क्षपक श्रेणी की अपेक्षा

यह बंध भी सर्व से सर्व होता है। देश बंध नहीं होता।

5. परीषह– परीषह 22 है इनका विस्तार उत्तराध्ययन सूत्र सारांश में देखें। ये परीषह चार कर्म के उदय से होते है। वह इस प्रकार है-

1. ज्ञानावरणीय– प्रज्ञा परीषह (मति-श्रुत के आवरण कर्म की अपेक्षा) अज्ञान परीषह (शेष तीन के आवरण कर्म की अपेक्षा)।

2. वेदनीय– 1. भूख, 2. प्यास, 3. गर्मी, 4. सर्दी, 5. मच्छर, 6.चर्या, 7. शय्या, 8. वध, 9. रोग, 10. तृण स्पर्श, 11. जल्ल मेल। ये सभी अशाता वेदनीय की अपेक्षा है।

3. मोहनीय– 1 अचेल, 2. अरति, 3. स्त्री, 4. निषद्या, 5. आक्रोश, 6. याचना, 7. सत्कार पुरस्कार, 8. दर्शन परीषह (यह दर्शन मोहनीय से) सात परीषह चारित्र मोहनीय की अपेक्षा है। अचेल = जुगुप्सा मोहनीय से। अरति = अरति मोह से। स्त्री = वेद मोह से। निषद्या = भय मोह से। शेष दो मान मोहनीय के उदय से क्षयोपशम से। आक्रोश- मान या शोक से। सत्कार पुरस्कार = मान मोह से।

4. अंतराय– अलाभ परीषह– पहले से सातवें गुणस्थान तक 22 परीषह। आठवें में 21, नौवें में 18, दसवें में 14, ग्यारहवें से 14 गुणस्थान तक 11-11 परीषह है। इनमें से छद्मस्थों के शीत-उष्ण परीषह एक साथ नहीं होते एवं चर्या-निषद्या परिषह एक साथ नहीं होते अतः एक साथ में दो-दो परीषह कम होते हैं। वीतराग गुणस्थानों में शीत-उष्ण और चर्या-शय्या परीषह एक साथ नहीं होते।

छद्मस्थ मनुष्य चर्या एवं शय्या दोनों परीषह संकल्प विकल्पों की अपेक्षा एक साथ वेद सकते हैं। वीतराग इन दानों में से एक साथ एक ही वेदते हैं। क्योंकि उनके सकल्प विकल्प नहीं होते हैं।

सात कर्म बंधक एवं आठ कर्म बंधक के 22 परीषह है। षडविध बंधक एक विध बंधक छद्मस्थ के 14 परीषह है। एक विध बंधक केवली के 11 परीषह है। अबंधक के 14 वे गुणस्थान में भी 11 परीषह है।

6. लेश्या (तेज) के प्रतिपात होने से शाम सूर्य दूर होते हुए भी निकट दिखता है मध्यान्ह में निकट होते हुए भी अभिताप के कारण दूर दिखता है। ऊंचाई की अपेक्षा तो सदाकाल समान ही दूरी में होता है।

ज्योतिषी सम्बन्धी वर्णन जीवाभिगम सूत्र के समान है।

नवमां उद्देशक–

1. विश्रसा बंध– अनादि विश्रसा बंध धर्मास्तिकाय आदि है। सादि विश्रसा बंध के तीन प्रकार है- 1. परमाणु आदि पुद्गलों का बंध ''बंधन प्रत्ययिक'' विश्रसा बंध है। 2. गुड़ अनाज आदि पदार्थों का किसी बर्तन में जो पिंड होता है वह ''भाजन प्रत्ययिक बंध होता है। 3. बादलों का बंध ''परिणाम प्रत्ययिक'' विश्रसा बंध है।

1. बंधन प्रत्ययिक की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट असंख्य काल की होती है,। 2. भाजन प्रत्ययिक की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट संख्याता काल की होती है। 3. परिणाम प्रत्ययिक की स्थिति जघन्य एक समय की उत्कृष्ट 6महीने की होती है।

2. प्रयोग बंध– जीव के आठ रुचक्र प्रदेशों में तीन-तीन का बंध अनादि अनंत है। सिद्धों के सादि अनंत बंध सभी आत्म प्रदेशों का है।

सादि सांत प्रयोग बंध के चार प्रकार है- 1. घास लकड़ी आदि का भारा बांधना ''अलावण बंध'' है। 2. मिट्टी चूना लाख आदि का 'श्लेषणा बंध' किसी चीज को ढेर करना 'उच्चय बंध', कुआ बावड़ी मकान आदि बंधवाना ''समुच्चय बंध'' रथ घोड़ा आदि का बनाना देश सहंनन बंध और दूध पानी का एक होना 'सर्व सहंनन बंध', यो चार प्रकार का यह दूसरा 'अलियावण' प्रयोग बंध है। 3. समुद्घात गत बाहर निकले आत्म प्रदेशों के तैजस कार्मण का बंध 'शरीर बंध' है। 4, पांच प्रकार के शरीर का जो बंध होता है वह- ''शरीर प्रयोग बंध'' है।

3. देशबंध सर्वबंध-

पांच शरीरों का प्रथम समयवर्ती बंध ''सर्वबंध'' कहा जाता है शेष सभी समयों का बंध देशबंध कहा जाता है। वैक्रिय या आहारक लब्धि वाले जब शरीर बनाते हैं, तब भी प्रथम समय में सर्व बंध होता है। जीव जहां उत्पन्न होता है, वहां प्रथम समय जो आहार लेता है, वह सर्व बंध है। शेष पूरे जीवन में वैक्रिय आदि लब्धि प्रयोग के प्रथम समय को छोड़कर देश बंध होता है। वाटे बहेता के दो समय की अणाहारक अवस्था में तीन शरीर की अपेक्षा देशबंध, सर्वबंध दोनों नहीं होते हैं।

बंध के प्रकार				
प्रयोग बंध			विश्रसा बंध	
अनादिअनंत	सादिअनंत	सादिसांत	अनादि विश्रसा	सादि विश्रसा
जीव के आठ प्रदेश	सिद्ध के प्रदेश		(1) धर्मास्तिकाय वि.बं. (2) अधर्मास्तिकाय वि.बं. (3) आकाशास्तिकाय वि.बं.	(1) बंधन प्रत्ययिक (2) भाजन प्रत्ययिक (3) पारिणामिक प्रत्ययिक

आलापन	अलियावण	शरीरबंध	शरीर प्रयोग बंध
गठ्ठादि बांधना	(1) श्लेषणा	(1) पूर्व प्रयोग	(1) औदारिक
	(2) उच्चय	(2) वर्तमान प्रयोग	(2) वैक्रिय
	(3) समुच्चय	(केवली)	(3) आहारक
	(4) संहनन		(4) तैजस
			(5) कार्मण

(3-4) सर्वबंध की स्थिति देशबंध बोल	जघन्य उत्कृष्ट 1 समय है जघन्य स्थिति	देशबंध की स्थिति इस प्रकार है- उत्कृष्ट स्थिति
1 से 3 जीव, तिर्यंच, मनुष्य	1 समय	तीन पल्योपम में एक समय कम
4-5 एकेन्द्रिय, वायुकाय	1 समय	अपनी-अपनी स्थिति से एक समय कम
6 से 12-चार स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय	3 समय कम एक क्षुल्लक भव व	अपनी-अपनी स्थिति से 1 समय कम

औदारिक शरीर के देश बंध सर्व बंध की स्थिति-

सर्व बंध की स्थिति नियमतः एक समय की ही होती है। देश बंध की स्थिति इस प्रकार है-

अंतर- समुच्चय जीव के सर्व बंध का अंतर जघन्य एक क्षुल्लक (छोटा) भव में तीन समय कम, उत्कृष्ट 33 सागर में एक समय अधिक। (वाटे बहेता के दो समय जुड़ जाने से)

समुच्चय जीव के देश बंध का अंतर जघन्य एक समय उत्कृष्ट 33 सागर से तीन समय अधिक (वैक्रिय शरीर एवं वाटे बहेता की अपेक्षा)

शेष ग्यारह बोल (10 दंडक और समुच्चय एकेन्द्रिय) में स्वकाय और परकाय की अपेक्षा यों दो प्रकार का अंतर होता है।

स्वकाय अंतर- सर्वबंध का अंतर 11 बोलों में जघन्य- क्षुल्लक भव में तीन समय कम। उत्कृष्ट- अपनी स्थिति से एक समय अधिक।

देशबंध का अंतर 4 बोलों में एकेन्द्रिय, वायु, तिर्यंच, मनुष्य में जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त शेष 7 बोलों में जघन्य एक समय उत्कृष्ट तीन समय।

परकाय अंतर- ग्यारह बोलों में सर्व बंध का जघन्य अंतर तीन समय कम दो क्षुल्लक भव है। देशबंध का जघन्य एक समय अधिक एक क्षुल्लक भव है।

उत्कृष्ट दोनों बन्धों का- ऐकेन्द्रिय में 2000 सागर साधिक। वनस्पति में- पृथ्वीकाल और शेष नौ में वनस्पतिकाल है।

वैक्रिय शरीर का देश बंध सर्व बंध- यह समुच्चय जीव, नरक, देव, वायु, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य इन 6में होता है।

स्थिति- सर्व बंध की सर्वत्र एक समय होती है। समुच्चय जीव में दो समय भी होती है।

देश बंध की स्थिति इस प्रकार है-

वैदिकशरीर के देशबंध सर्वबंध का अंतर-

सर्वबंध/देशबंध	बोल	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति
सर्वबंध का	समुच्चय एकेन्द्रिय	2 क्षुल्लक भव में तीन समय कम	2000 सागरोपम झाझेरा
	वनस्पतिकाय	2 क्षुल्लक भव में तीन समय कम	पृथ्वीकाल
	शेष 9 बोलों का	2 क्षुल्लक भव में तीन समय कम	अनन्त वनस्पति काल
देशबंध का	समुच्चय एकेन्द्रिय	1 समय अधिक 1 क्षुल्लक भव	2000 सागर झाझेरा
	वनस्पतिकाय	1 समय अधिक 1 क्षुल्लक भव	पृथ्वीकाल
	शेष 9 बोलों का	1 समय अधिक 1 क्षुल्लक भव	वनस्पति काल अनन्त काल

(12) देशबंध (वैक्रिय शरीर) स्थिति	जघन्य	उत्कृष्ट
(1) समुच्चय जीव	एक समय	33 सागर में 1 समय कम
(2) वायुकाय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
(3) नारकी, देवता	10000 वर्ष में तीन समय कम	33 सागर में 1 समय कम

बोल	सर्वबंध		देशबंध	
	जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
समुच्चय जीव	एक समय	वनस्पति काल	सर्वबंध के समान	सर्वबंध के समान
वायुकाय स्वकाय	अन्तर्मुहूर्त	असंख्यात काल (क्षेत्र पल का असंख्यांश)	सर्वबंध के समान	सर्वबंध के समान
वायकाय परकाय	अन्तर्मुहूर्त	वनस्पति काल	सर्वबंध के समान	सर्वबंध के समान
ति.पं. मनुष्य स्वकाय	अन्तर्मुहूर्त	प्रत्येक करोड़ पूर्व	सर्वबंध के समान	सर्वबंध के समान
ति.पं. मनुष्य परकाय	अन्तर्मुहूर्त	वनस्पति काल	सर्वबंध के समान	सर्वबंध के समान
नारकी देवता स्वकाय	अन्तर नहीं	वनस्पति काल	सर्वबंध के समान	सर्वबंध के समान
नारकी से 8वें देव परकाय	अपनी-अपनी स्थिति से अन्तर्मुहूर्त अधिक	वनस्पति काल (साधिक एक भव)	अन्तर्मुहूर्त	वनस्पति काल
9 देव से नवग्रैवेयक परकाय का	अपनी-अपनी स्थिति से प्रत्येक वर्ष अधिक	वनस्पति काल (साधिक एक भव)	प्रत्येक वर्ष	वनस्पति काल
चार अणुत्तर विमान	अपनी-अपनी स्थिति से प्रत्येक वर्ष अधिक	संख्याता सागरोपम	प्रत्येक वर्ष	संख्याता सागरोपम (साधिक 1 भव)
सर्वार्थ सिद्ध	अन्तर नहीं	अन्तर नहीं	अन्तर नहीं	अन्तर नहीं

विशेष- औदारिक दंडकों में और समुच्चय जीव में देश बंध सर्व बंध का अंतर समान है इसलिये अलग अलग नहीं बताया गया है।

आहारक शरीर देशबंध सर्वबंध- स्थिति सर्व बंध की एक समय और देश बंध की अंतर्मुहूर्त है। अंतर दोनों को जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्तन।

तैजस कार्मण शरीर अनादि से सभी दंडक में है। सर्व बंध नहीं है। केवल देश बंध होता है।

आठ बोलों के संयोग से शरीर बंध-1.द्रव्य (पुद्गल), 2. वीर्य (ग्रहण करना), 3. संयोग (मन के परिणाम), 4. योग (काया की प्रवृत्ति), 5. कर्म (शुभाशुभ), 6. आयुष्य (लम्बा), 7. भव (औदारिक के लिये तिर्यंच मनुष्य का इत्यादि), 8. काल-आरों के समय के अनुसार और शरीर की अवगाहना। वैक्रिय एवं आहारक शरीर में नौवां बोल लब्धि का है।

अल्प बहुत्व- सर्व बंधक अल्प होते हैं, देश बंधक उससे असंख्य गुणे होते हैं। आहारक शरीर में संख्यात गुणे होते हैं।

औदारिक में अबंधक से देश बंधक असंख्य गुणे है, वैक्रिय आहरक में बंधक से, अबंधक अनंतगुणा है, तैजस कार्मण में अबंधक से बंधक अनंत गुणा है।

पांच शरीर बंधक अबंधक की अल्पबहुत्व- 1.सबसे कम आहारक के सर्व बंधक, 2. इसी के देश बंधक संख्यात गुणा, 3. वैक्रिय सर्वबंधक असंख्यकगुणा, 4. इसी के देश बंधक असंख्यगुणा, 5. तैजस कार्मण के अबंधक अनंतगुणा,

6. औदारिक के सर्वबंधक अनंतगुणा, 7. इसी के अबंधक विशेषाधिक, 8. इसी के देश बंधक असंख्यगुणा, 9. तैजस कार्मण के देशबंधक विशेषाधिक, 10. वैक्रिय के अबंधक विशेषाधिक, 11. आहारक के अबंधक विशेषाधिक।

1. श्रुत सम्पन्न हो आचार सम्पन्न न हो वह देश विराधक है। श्रुत सम्पन्न नहीं हो आचार सम्पन्न हो वह देश आराधक है। दोनों से सम्पन्न है वह सर्व आराधक है और दोनों से रहित है वह सर्व विराधक कहा गया है।

2. ज्ञान आराधना जघन्य मध्यम उत्कृष्ट तीन प्रकार की होती है इसी प्रकार दर्शन और चारित्र आराधना भी तीन-तीन प्रकार की है।

विशेष– ये सभी आराधना वाले मनुष्य और वैमानिक देव के भव करते हैं। उत्कृष्ट चारित्राराधना वाले अणुत्तर देव और मनुष्य का भव करते हैं।

3. पुद्गल परिणाम वर्णादि 25 प्रकार का है।

4. लोकाकाश और एक जीव के आत्म प्रदेश समान होते हैं।

5. पुद्गल के द्रव्य और देश से आठ भंग होते हैं- 1. द्रव्य, 2. द्रव्य देश, 3. अनेक द्रव्य, 4. अनेक देश, 5. द्रव्य एक देश एक, 6. द्रव्य एक देश अनेक, 7. अनेक द्रव्य एक देश, 8. द्रव्य अनेक देश अनेक।

परमाणु में दो– पहला दूसरा। द्विप्रदेशी में 5 (क्रम से)। तीन प्रदेशी में सात भंग आठवां छोड़कर। चार प्रदेशी से दस प्रदेशी तक एवं संख्यात असंख्यात और अनंत प्रदेशी में आठों ही भंग होते हैं।

6. कर्म प्रकृत्तियों में अनंत परमाणु पुद्गल लगे हुए होते हैं। प्रत्येक आत्म प्रदेश पर अनंत अनंत कर्म वर्गणा आवृत्त होती है। 24 ही दंडक में आठों ही कर्म आवृत होते हैं। मनुष्य में 8, 7, या 4 कर्म आवृत्त होते हैं।

कर्म की भजना नियमा–

विशेष– भजना नियमा में मिलाकर कुल सात कर्म होते हैं एक कर्म पृच्छा का कम हो जाता है।

कर्म का नाम	ज्ञानावरण		दर्शनावरण		वेदनीय		मोहनीय		आयु		नाम		गौत्र		अन्तराय	
	नि.	भ.	नि.	भ.	नि.	भ.	नि.	भ.	नि.	भ.	नि.	भ.	नि.	भ.	नि.	भ.
1 ज्ञानावरण	–	–	+	0	+	0	+	0	+	0	+	0	+	0	+	0
2 दर्शनावरण	+	0	–	–	+	0	+	0	+	0	+	0	+	0	+	0
3 वेदनीय	0	+	0	+	–	–	0	+	+	0	+	0	+	0	0	+
4 मोहनीय	+	0	+	0	+	0	–	–	+	0	+	0	+	0	+	0
5 आयु	0	+	0	+	+	0	0	+	–	–	+	0	+	0	0	+
6 नाम	0	+	0	+	+	0	0	+	+	0	–	–	+	0	0	+
7 गौत्र	0	+	0	+	+	0	0	+	+	0	+	0	–	–	0	+
8 अन्तराय	+	0	+	0	+	0	0	+	+	0	+	0	+	0	–	–

7. जीव पुद्गलों को ग्रहण किये होने से पुद्गली है। जीव द्रव्य की अपेक्षा ''पुद्गल'' है ''पुद्गल'' भी जीव का पर्यायवाची शब्द है।